"ऋत् धर्म देशना"

भाग-३

फेसबुक के "आर्यमित्र" नामक पेज के लिए सम्यक शास्ता, परम आर्यवर, आप्त पुरुष, सद्गुरु श्री जगदीश्वरम् जी महाराज द्वारा वर्ष 2020 के दौरान लिखी गई सम्यक धर्म सम्बन्धी देशनाओं का संकलन

इन देशनाओं के लेखक परम पूज्य सदगुरुदेव

01 September 2020

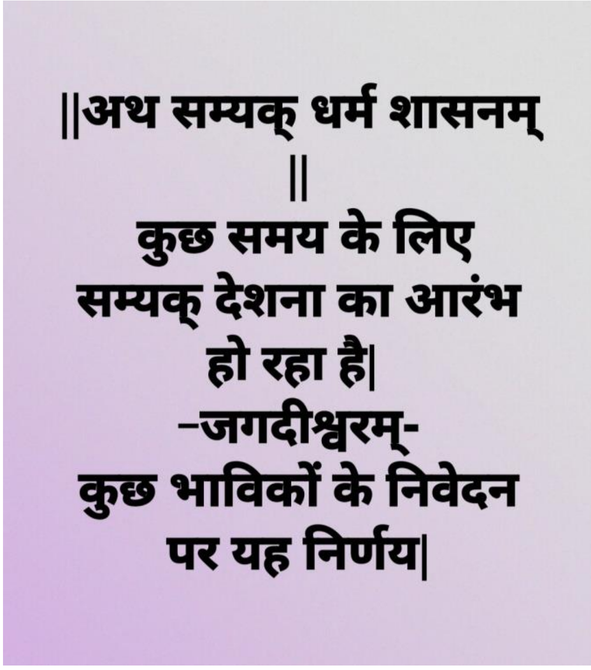

01 September 2020

तुलन को ही साधना है,
घुटनों के बल चलने वाला एक नन्हा सा बालक एकदम से खड़े होकर चलना आरंभ नही कर देता,
जब तक खड़े होकर चलने के लिए भलीभाँति संतुलन नही सध जाता,
तब तक बालक भलीभाँति खड़ा होकर चल नही सकता, गिरने की संभावना बनी ही रहती है...
पर एक बार भी अगर भलीभाँति संतुलन सध गया, तब फिर बालक भलीभाँति खड़ा भी हो सकता है, और आगे भलीभाँति चल भी सकता है,
सम्यक् अर्थ में ध्यान के संदर्भ में भी एक तरह से संतुलन को ही साधना है ...
यहाँ ध्यान का तात्पर्य किसी परम्परागत् दृष्टिकोण के अनुसार नही है...
यहाँ पर ध्यान का सीधा सा तात्पर्य स्मृति के सम्यक् अर्थ में, सम्यक् दिशा में भली-भाँति पूर्णतः स्थिर होने से है... व्यवहारतः प्रायोगिक संदर्भ में ध्यान का सीधा सा तात्पर्य दृष्टि का ज्ञान की ठीक सीध में भलीभाँति स्थिर होने से है...
दृष्टि (निगरानी) व जिस दिशा में दृष्टि (निगरानी) है, उसके मध्य भलीभाँति संतुलन का सधना बहुत ही आवश्यक है,
ध्यान रहे,
संकेतार्थ >> नासाग्र की ठीक सीध में होने पर ही भलीभाँति संतुलन सध सकता है...
संकेतार्थ >> नासाग्र की ठीक सीध में भली-भाँति स्थिरता पूर्वक ठीक सीध का सध जाना संतुलन के निमित्त है...
जैसे बचपन में एक बार भी घुटनों के बल चलने वाले बालक के उठने व उठकर चलने के लिए अगर
भली-भाँति संतुलन सध गया,
तो फिर भली-भाँति सधा हुआ वह संतुलन ^ व्यवहारतः उसके पूरे जीवन भर के लिए ही होता है..
ध्यान के संदर्भ में भी अगर एक बार भी भली-भाँति संतुलन सध गया,
तो वह भी फिर पूरे जीवन पर्यंत के लिए ही है..
बिना संतुलन के उठने, बैठने, चलने इत्यादि व्यवहार में स्थिति नही बन सकती, स्थिति का आधार संतुलन है,
और संतुलन का आधार नैमित्तिक योग है,(नैमित्तिक योग का अभिप्राय लोक प्रचलित कृत्रिम् योग पद्धति से नही है,)
प्रतिदिन तुम्हारा उठने, बैठने, चलने इत्यादि में व्यवहार में संतुलन कैसे बन रहा है, इसका यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः यथा सजग रहते हुए, भलीभाँति अवलोकन करो,
यह कि किन नैमित्तिक संयोगों से किस तरह से कैसे संतुलन बन रहा है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रसित मनुष्य द्वारा प्रदत्त पुस्तक में वह बात नही हो सकती, जो प्रकृतितः दैनिक व्यावहारिक संकेतों में है,
पर यह दुर्भाग्य की बात है, कि सामान्यतः तुम्हारी दृष्टि में उसका वह महत्व नही है, जो होना चाहिए,
प्राकृतिक संकेतों के प्रति संवेदनशील रहो,
किसी न किसी कोण विशेष में हर एक का संतुलन सधा हुआ है, एक भैंस भी अगर खड़ी है, तो उसका भी किसी कोण विशेष में संतुलन सधा हुआ है,

तभी वह खड़ी है, अन्यथा बिना संतुलन के वह खड़ी ही नही हो सकती,
ऐसा कोई भी नही जिसका किसी न किसी कोण विशेष में संतुलन न सधा हो, पर कमी है, तो बस बोधपूर्ण होने की, देर है, तो बस पूर्ण केन्द्रीय संतुलन के सधने में,
किसी कोण विशेष में संतुलन का होना पर्याप्त नही है, इससे तो बस जीवन जीने की औपचारिकता ही पूरी होती है,
तुम्हारा मूर्छा में होना, यंत्रवत् तल्लीनता में होना, औपचारिक संतुलन से आगे नही बढ़ने देता,
किसी कोण विशेष के संतुलन के प्रति बोधपूर्ण होने पर उस कोण विशेष की संकीर्णता से मुक्ति हो जाती है,
पूर्ण केन्द्रीय संतुलन सधने पर ही अविचल स्थिर स्थिति लाभ है,
किसी भी कोण विशेष के संतुलन में
उस कोण विशेष में ही स्थिति होती है,
एक सीमा के बाद फिर वहाँ से गिरना होता है,
किसी भी कोण विशेष का संतुलन पूर्ण केन्द्रीय संतुलन नही है,
पूर्ण केन्द्रीय संतुलन में पूर्ण केन्द्रीय अविचल - स्थिर स्थिति होती है,
पूर्ण केन्द्रीय संतुलन से गिरना नही होता,
पूर्ण केन्द्रीय संतुलन ही पूर्णतः स्थिर सम्यक् मोक्ष स्थिति का आधार है|
ध्यान के संदर्भ में स्मृति का सम्यक् होना >> स्मृति का सम्यक् अर्थ में, सम्यक् दिशा में भली-भाँति स्थिर व परिशुद्घ होना बहुत ही आवश्यक है...
(दृष्टि का सम्यक् होना >> दृष्टि का सम्यक् अर्थ में, सम्यक् दिशा में भली-भाँति परिशुद्घ व स्थिर होना बहुत ही आवश्यक है,)
और तभी ज्ञान के संदर्भ में, दर्शन के
संदर्भ में सम्यक् दिशा में, सम्यक् अर्थ में भली-भाँति स्थिरता व परिशुद्धि है...
क्रमशः

02 September 2020

हे पृथ्वी ग्रह के वासियो|
सामान्य दृष्टि में सब ओर से
अंतहीन से अंतहीन फैलाव में प्रतीत होने वाले वृहत्तर -अंतर - ब्रह्माण्ड मंडल में खरबों-खरबों से अधिक ऐसी जगहें हैं,
जो पृथ्वी ग्रह से खरबों-खरबों प्रकाश वर्ष से भी अधिक की दूरी पर हैं, जहाँ के लिए प्रकाश की गति से भी अगर यात्रा की जाए, तो वहाँ पहुँचने में खरबों-खरबों वर्षों से भी अत्यधिक का समय लग जाएगा,
इस गणित (हिसाब) से तो प्रकाश की गति भी बहुत ही अधिक मंद है,
इस पृथ्वी ग्रह के सम्यक् सद्धर्म से हीन, श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों से गिरे हुए, सदाचरण से हीन, आरोपित वक्र दृष्टिकोण से ग्रसित हुए, अल्पज्ञ वैज्ञानिकों की
सीमित खोज में प्रकाश की गति ही अंतिम गति का
(सबसे अधिक गति का) विकल्प है,
सामान्य स्थूल दृष्टि के सापेक्षिक व्यवहार में में यह सत्य भासित भी है,
कि किसी भी भौतिक पदार्थ की गति प्रकाश की गति के बराबर नही हो सकती,
(सामान्य सापेक्षिक व्यवहार की एक सीमा तक यह उपर्युक्त भी है,)
वृहत्तर -अंतर- ब्रहमांड मंडल की दृष्टि में यह पृथ्वी ग्रह एक बहुत ही अत्यधिक छोटा सा एक ऐसा पिंड है,
इतना अत्यधिक छोटे से छोटा पिंड कि वृहत्तर ब्रह्मांड की दृष्टि में सामान्यतः इसका कोई अस्तित्व दिखता ही नही,
फिर उसमें रहने वालों
का स्तर ही क्या है, (उनकी औकात ही क्या है,)
उनके स्तर के आधार पर उनका दृष्टिकोण, उनका मापदंड इतना संकुचित व संकीर्णता में होना स्वाभाविक है, जिसमें उनकी दृष्टि में प्रकाश की गति को पार करना असंभव है,
पर ऐसा बाहरी स्थूल दृष्टिकोण में ही है,
उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते दृष्टि > दर्शन में ऐसा नही है,
सूक्ष्मतर होते दृष्टि > दर्शन में प्रकाश की गति से खरबों गुना से भी अधिक गति संभव है, इतना ही नही, अंततः गति का अंत होना भी संभव है,
जिस अनुपात में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई दृष्टि खुलती है, उसी अनुपात में दूसरी तरफ सहज ही स्थूल से स्थूलतर होती दृष्टि भी खुलती है,
इसलिए एक तरफ जहाँ जितनी सूक्ष्मता का अतिक्रमण होता है, उतने ही अनुपात में वहीं दूसरी तरफ स्थूलता का भी अतिक्रमण हो जाता है,
इसलिए कहीं भी किसी भी तरफ से चूकने के लिए कुछ है ही नही,

खोने को कुछ है ही नही, हर तरफ से सार्थक से सार्थक, सार से सार को पाना ही पाना है, और साथ ही साथ व्यर्थता के बोझ से मुक्ति भी है|
मनुष्य का स्वरूप अद्भुत है, शुभ आशिर्वाद से युक्त है,
मनुष्य का स्वरूप सीधे व सही मार्ग के लिए दिशा है,
आँखों का नासाग्र की सीध की दिशा में सीधे सामने होना,
यह सीधे व सही मार्ग के लिए संकेत है,
जन साधारण का यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है,
कि इतना सहज, स्वाभाविक, सीधा व सरल संकेत उन्हें नही दिखाई देता,
दिखाई भी कैसे देगा, क्योंकि अज्ञ मनुष्यों द्वारा > अपेक्षित दृष्टिकोण द्वारा स्थापित कृत्रिम् धर्मों की < अध्यारोपित शास्त्रों की अंधी पट्टी जो उनके आँखों में बँधी पड़ी है |
सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही होने के कारण व सम्यक् धर्म अनुशासन ग्रहण न करने के कारण पृथ्वी ग्रह की वैज्ञानिक विकास की गति बहुत ही मंद है,
इस मंद गति से तो उसका वैज्ञानिक विकास कभी भी पूर्णता को नही पहुँच सकता,
इस तरह से तो साइंसदान कभी भी इस पूरे कायनात के किसी भी गैब का पर्दाफाश कभी भी नही कर सकते,
यद्यपि यह बात बाहरी दृष्टि में अवलंबित होने वाले साधारण जनों के लिए ही है,
उत्तरोत्तर स्पष्ट होती हुई अंतर्दृष्टि वालों के लिए नही,
भले ही वाह्य दृष्टि पर अवलंबित पदार्थ वादी विज्ञान एक सीमा के बाद असफल है, पर अनुत्तर सम्यक् सद्धर्म किसी भी सीमा तक असफल नही है,
जो विज्ञान से असंभव है, जो विज्ञान की सीमा में नही है, विज्ञान की सीमा से परे है, वह सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में संभव है|
जहाँ बाहरी दृष्टि से वृहत्तर अंतर ब्रह्माण्ड (greater inter multiverse) का यह जो अंतहीन फैलाव प्रतीत होता है, बाहर से देखने पर इसका कहीं भी कोई ओर-छोर नजर नही आता,
कहीं भी असंख्यों प्रकाश वर्ष की दूरी तक भी इसका अंत नही दिखता,
पर आश्चर्य की बात,
कि वहीँ अंतरतम् र्दृष्टि में ^ दर्शन मात्र के निमित्त < < नासाग्र की ठीक सीध की पूर्णता में इसका अंत दिख जाता है,
(अंतरतम् दृष्टि में ^ दर्शन मात्र के निमित्त होने पर आरोपित वक्र दृष्टिकोण में भासित समय,आकाश, दूरी आदि सापेक्षिक आभास का अंत है,)
भवाग्र की ठीक सीध में सापेक्षिक दबाव द्वारा अनवरत् चलित इस दुःखद भव चक्र की सारी पोल पट्टी पूरी तरह से खुल जाती है,
इसकी पूर्णतः सच्चाई स्पष्टतः प्रकट हो जाती है,
सूक्ष्मतम् अंतर्दृष्टि में कोई भी सापेक्षिक आभास नही,
विशुद्धतः ज्ञान मात्र ही शेष पूर्णतः स्पष्ट है |
(खरबों वर्ष में भी विज्ञान वहाँ नही पहुँच सकता, जहाँ सप्ताह भर में सम्यक् धर्म अनुशासन में पूरी व्यावहारिक सत्यता से, पूरी ईमानदारी, पूरी लगन, पूरी मेहनत से, अनवत् श्रमपूर्वक तत्पर रहता हुआ 'निमित्त साधक' जो यथा सहजतापूर्वक बाहर से आँख बंद कर भीतर से नाक के अग्रभाग
(आगे के भाग का) का जो आभास हो रहा है, उसकी ठीक सीध में श्वास के अग्रभाग का जो आभास हो रहा है, उसकी ठीक सीध में अंतःदृष्टि < (मानसिक दृष्टि)
को भलीभाँति पूर्णतः स्थिर रख पहुँच सकता है.....
इससे भी आगे आभास मात्र के बीतने व उत्पन्न होने के अग्रभाग की ठीक सीध में दर्शन मात्र के निमित्त मन से भी सूक्ष्म (मानसिक दृष्टि से भी सूक्ष्म) और सूक्ष्म अंतःदृष्टि के भलीभाँति स्थिर होने पर
मनुष्य मात्र के मूल सहज स्वभाव के धर्म का स्पष्ट है, जो अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है, सनातन है, विशुद्धतः ज्ञान मात्र का परिस्पष्ट होना > (परम् पूर्णतम् परिस्पष्टता के निमित्त होना) है, तभी आरोपित वक्र दृष्टिकोण का अंत है, अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण का अंत है, दिग्भ्रम का अंत है, दुःख द अज्ञान चक्र का अंत है,
(मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म लोकदृष्टि में प्रचलित, लोकधर्म > हिन्दू, इस्लाम, जैन,बौद्ध, सिक्ख आदि अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित कृत्रिम् धर्म नही हैं,
बल्कि संकेत अर्थ में >> सहज ज्ञान मात्र के सहज निमित्त होना है।।।।
फिर भी सभी स्थापित कृत्रिम् धर्मों का मूल अपौरुषेय अकृत्रिम् सनातन धर्म ही है|)
भला सम्यक् यथार्थ दिशा में, सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त पूर्णतः समर्पित हो, सम्यक् अभ्यास के निमित्त क्या नही संभव है!)
इसलिए हे पृथ्वी ग्रह के वासियो|
तुम बाहरी दृष्टि से बहुत बड़े भ्रम में हो,
नासाग्र की ठीक सीध में भलीभाँति संयम को पूरा कर,

अंतर्दृष्टि खोलो,
सहज स्वाभाविक ठीक सीध में भलीभाँति पूर्ण स्थिरता का
निमित्त पूरा करो, तब निश्चय ही यथावत् सत्यता स्पष्ट है,
द्रव्यमान संबंधित व्यावहारिक सापेक्षता का सिद्धांत हो, या अन्य कोई प्रयोग सिद्ध वैज्ञानिक सिद्धांत हो, यह सब आरोपित वक्र दृष्टि में ही सत्य भासित है, यथार्थ में नही,
क्योंकि प्रचलित वैज्ञानिकों की खोज का आधार ही आरोपित वक्र दृष्टि है, वैसे तो यह सम्पूर्ण लोक व्यवहार ही आरोपित वक्र दृष्टिकोण पर अवलंबित है,
लोक दृष्टि का आधार ही आरोपित वक्र दृष्टि है,
सही में वही सौभाग्यवान है, जिसे लोकोत्तर > अनुत्तर सम्यक् मार्ग स्पष्ट है, उसी के पास उत्तरोत्तर कम से कम समय में संभलकर निकट से निकट वर्तमान में उपस्थित होने का सम्यक् मार्ग है,
जहाँ एक इलेक्ट्रो सेकेंड के खरबवें भाग से भी कम समय में संभलकर उपस्थित होना संभव है,
(एक सेकेंड में खरबों बार से भी अधिक बार संभलकर उपस्थित होना संभव है,)
उत्तरोत्तर जितना ही कम से कम समय में संभलकर निकट से निकट वर्तमान में उपस्थिति होगी,
उसी अनुपात में उत्तरोत्तर और सजगता बढ़ेगी,
और होश बढ़ेगा, और स्फूर्ति बढ़ेगी, और ताजगी बढ़ेगी, और नया पन बढ़ेगा, और स्पष्टता बढ़ेगी, और पारदर्शिता बढ़ेगी, और गतिशीलता बढ़ेगी, और यथावतता बढ़ेगी,
यहाँ तक कि अपरिमित स्तर सम्पूर्ण सार्थक से सार्थक, सार से सार सकारात्मकता बढ़ती ही जाएगी,
भले ही आम लोगों को यह बात हजम न हो, क्योंकि जन साधारण के लिए तो आरंभिक अभ्यास काल अर्थात् जितना समय श्वास के जाने-आने के मध्य लगता है, उतने समय में लगातार ४५ मिनट तक भी श्वास के जाने-आने के ज्ञान की समयावधि में उपस्थित होना ही कठिन है,
एक सेकेंड के खरबवें हिस्से मे संभलकर उपस्थित होना तो बहुत ही दूर की बात है,
पर हतोत्साहित नही होना है,
उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास के निमित्त क्या नही संभव है,
अगर पृथ्वी ग्रह के वैज्ञानिक विकास की गति को अपरिमित स्तर तक बढ़ाना है, तो उपरोक्त सम्यक् अभ्यास (उत्तरोत्तर कम से कम समय में संभलकर निकट से निकट वर्तमान में उपस्थित होने) के निमित्त हो, आरोपित वक्र दृष्टिकोण से मुक्त होना अनिवार्य है,
उत्तरोत्तर कम से कम समय में संभलकर अभी से अभी के निकट से निकट के वर्तमान में उपस्थिति का क्रम
पूरा होने पर
अंततः जब सबसे कम समय में संभलकर, सबसे अभी के सबसे निकट के वर्तमान में उपस्थिति पूर्ण होगी,
तभी सब अंतों के आर-पार का दर्शन > (ज्ञान) स्पष्ट है,
कुछ भी छिपा हुआ नही, कुछ भी अदृष्ट नही, कुछ भी अज्ञेय नही, हर गैब की हकीकत खुली हुई है,
परिपूर्ण सर्वज्ञता, परिपूर्ण सर्वदर्शिता, परिपूर्ण परिपूर्णता।।।।
जगदीश्वरम् द्वारा इस संदर्भ में अभ्यास संबंधित समुचित मार्ग दर्शन किया गया है, उससे अभिप्रेरित हो, सम्यक् अर्थ में लाभान्वित हों|

03 September 2020

पूर्व कल्प के अनुसार ही < वर्तमान कल्प के आरंभ में अंतरहित सही ओर से जो जगत का निमित्त कारण है, जिसे लोकदृष्टि में परम् प्रधान परमेश्वर कहा जाता है, < की ओर से
ऋत् अभिप्रेरित, ऋत् अभिमुख
उन प्रथम ऋषियों को अपौरुषेय, अकृत्रिम् सनातन ऋत् नियम का उपदेश हुआ,
<<सनातन ऋत् विद्या का उपदेश हुआ,
सम्यक् समर्पण का उपदेश हुआ,
सम्यक् उपासना का उपदेश हुआ,
सत्यनिष्ठ प्रथम ऋषियों ने अपौरुषेय ऋत् विद्या में
अपनी तरफ से कुछ भी नही मिलाया,
शब्द +अर्थ > छंदबद्ध मंत्रों के अध्यारोप से मुक्त
ऋत् नियम के संकेतार्थ >> ऋत् 'वेद' की संज्ञा में जो सम्यक् अर्थ में वेद है, वही बस उस समय एकमात्र वेद प्रमाण था,
उस समय न कोई श्रुति प्रमाण था, न कोई शब्द प्रमाण, ऋत् नियम >> सही संकेतार्थ >>ऋत् वेद ही बस प्रमाण था,
कालांतर में वेद के नाम पर श्रुति परंपरा में स्थापित हुई,
वेद के नाम पर श्रुति प्रमाण

लोकदृष्टि में ग्रहण हुआ,
(समय की धूल से साफ, स्वच्छ दर्पण भी धूल धूसरित हो ही जाता है,)
लोकदृष्टि में श्रुति परंपरा की स्थापना होने से कालान्तर में शब्द+अर्थ >छंदबद्ध मंत्रों का अध्यारोप होना स्वाभाविक था, वहीं से वेद के नाम पर शब्द प्रमाण परंपरा का आरंभ हुआ,
तब ऋत् नियम का सम्यक् संकेतार्थ स्पष्टतः सीधा सा तात्पर्य नही रह गया,
सापेक्षिक बुद्धि का अर्थ ग्रहण होने लगा,
आरंभ में ऋत् वेद की संज्ञा में एक ही वेद था,
कालान्तर में फल की कामना में मतभेद स्वरूप वेद के नाम पर छंदबद्ध मंत्रों के विधान से आबद्ध तीन वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद लोकदृष्टि में प्रचलित हुए,
वेद तब उस समय काल में अपौरुषेय नही रह गया, अकृत्रिम् नही रह गया,
ऋत् नियम नही रह गया, सम्यक् संकेतार्थ दिशा-निर्देश नही रह गया,
फिर कालान्तर में अथर्ववेद के नाम से एक और वेद को प्रचलित तीन वेदों के साथ जोड़ दिया,
अब वर्तमान काल में वेद के शुद्ध भाग को छोड़कर अपेक्षित दृष्टिकोण पर आधारित < तृष्णा के वशीभूत, फल की कामना में छंदबद्ध सापेक्षिक मंत्रों के अध्यारोप स्वरूप चार वेद प्रचलित हैं,
भले ही लोकदृष्टि में कल्प के आरंभ वाला अपौरुषेय सम्यक् ऋत् 'वेद' स्पष्ट नही है,
पर लोकोत्तर दृष्टि में > दर्शन मात्र के निमित्त अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् 'वेद' स्पष्ट है,
अपौरुषेय सनातन ऋत् नियम स्पष्ट है,
इसका कदापि लोप नही,
जिसके पास परिशुद्घ, स्पष्ट, पारदर्शी नग्न आँख है, उसे दिखाई देता है, पर जिनकी आँखों में अध्यारोपित शास्त्र प्रमाण की अंधी पट्टी बँधी हुई है,
उसे भला कैसे दिखाई देगा,
अपेक्षित दृष्टिकोण के सम्मोहन में दिग्भ्रमित हो,भ्रम, सूशय, संदेह, दुःखद अज्ञान अंधकार में भटक रहा है,
भले ही लोकदृष्टि में ऋत् नियम सम्यक् संकेतार्थ दिशा-निर्देश वाला ऋत् वेद स्पष्ट नही है,
पर अभी लोकदृष्टि में जो वेद प्रचलित हैं,
उसमें सही वेद (ऋत् वेद) का स्पंदन प्रभाव अवश्य है, इसलिए उसमें अभी भी शुद्ध भाग है, जो बहुत ही अव्यवस्थित रूप में व अल्प मात्रा में है, (क्योंकि अध्यारोप करने वालों ने अपने अध्यारोप से शुद्ध भाग में भी अर्थ का अनर्थ किया है,)
जो अपौरुषेय ऋत् नियम की ओर संकेत करता है,
इसलिए लोकदृष्टि में लोक प्रचलित लोकधर्म में
प्रचलित वेद ही अनिवार्य शब्द प्रमाण है, जो लोक में सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व करता है,
१००डिग्री सेल्सियस में पानी भाप बन जाता है, यह एक भौतिईईक नियम है,
यह कोई छंदबद्ध मंत्र नही है, कोई प्रार्थना नही है, फिर अपौरुषेय, अकृत्रिम् सनातन ऋत् नियम तो इस भौतिक नियम सहित सभी तरह के सभी आयामों के सभी नियमों का आधार है, उसका तो पूर्णतः अध्यारोप रहित
होना पूर्णतः सहज स्वाभाविक है,
जो आरोप करता है, वह पापी है,
वह अपनी ही दृष्टि के विरुद्घ पाप करता है, और दिग्भ्रमित हो, दुखित व शोकित होता है,
अपौरुषेय ऋत् नियम का आधार होने से ही
जो नियम जिस आयाम का है, वह उस आयाम में सत्य प्रमाणित है,
पर आवश्यक नही है, कि जो नियम जिस आयाम में सत्य प्रमाणित है, वह अन्य आयाम में भी सत्य प्रमाणित हो,
पर अपौरुषेय सनातन ऋत् नियम हर आयाम से सही है, सर्वत्र
सत्य प्रमाणित है,
(वर्तुल का कोई भी कोण अपनी जगह पर ही सही है, अन्य किसी कोण की जगह पर नही, पर उस उस वर्तुल का केंद्र तो हर कोण की जगह से पूर्णतः सही है,)
इसका कदापि उलंघन नही, सहस्त्रों ब्रह्मा भी इसका उल्लंघन नही कर सकते,
देवता,मनुष्य सहित सभी इसके वशीभूत हैं, इसका कदापि अतिक्रमण नही है,
सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्मांड में अपौरुषेय सनातन ऋत् नियम का ही शासन है,
ऋत् नियम पूर्णतः अपौरुषेय है, पूर्णतः अकृत्रिम् है, पूर्णतः अध्यारोप रहित है,
ध्यान रहे, अध्यारोपित लोक प्रचलित वेद में वरुण को जिस ऋत् का संचालक कहा गया है, वह अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण का अध्यारोप है, सत्य नही,
वह तथाकथित ऋत् कदापि सम्यक् अर्थ में ऋत् नही है, सम्यक् अर्थ जो ऋत् है, पूर्णतः अपौरुषेय है, उसका कोई संचालक नही है, अंतरहित सही ओर से ही संचालित है, इसमें निमित्त कारण की भूमिका, निमित्त कारण के अर्थ में ही है,
अन्य अर्थ में नही|

ऋत् नियम का ज्ञान होने पर ही दिग्भ्रम से मुक्ति है, उससे पहले नही|

कल्प के आरंभ में सम्पूर्ण लोक में एक ही धर्म (मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव का धर्म) था, उस समय न कोई पक्ष था, न कोई विपक्ष, न कोई मतभेद था, न कोई विरोधाभास,
उस समय जाति,वर्ग, राष्ट्र, धर्म, संस्कृति सभ्यता की स्थापना भी नही हुई थी,
उस समय पृथ्वी कहीं से भी धार्मिक अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण से बँटी हुई नही थी,
उत्तम गंधरस व कल्पवृक्षों से युक्त उस आरंभिक स्वर्णिम काल में इच्छा, बुढ़ापा व मृत्यु यही बस तीन स्वाभाविक रोग थे, इसके अलावा न कोई रोग था, न कोई शोक, उस समय के मनुष्य स्वस्थ व दीर्घायु थे,
उस आरंभिक समय में पृथ्वी यत्र-तत्र उत्तम गुणवत्तापूर्ण खाद्य-पेय पदार्थों से सम्पन्न थी|, पृथ्वी का वातावरण तरो ताजगी से भरपूर था, प्रदुषण मुक्त था,
उस समय की अपेक्षा आज यह पृथूवी जीवित नर्क का स्थान है!!! क्रमशः

04 September 2020

ज्ञान मात्र के निमित्त जो स्थिति है, सम्यक् स्थिति है, पूर्ण केन्द्रीय स्थिति है,
पूर्णतः सहज, पूर्णतः सरल,
पूर्णतः निष्पाप, पूर्णतः निर्दोष,
पूर्णतः विशुद्ध, पूर्णतः पवित्र,
पूर्णतः स्थिर, पूर्णतः स्पष्ट स्थिति है,
जरा भी अहंकार की मलिनता नही,
जरा भी अध्यारोप, प्रत्यारोप नही,
जरा भी कृत्रिमता नही,
ज्ञान मात्र के निमित्त जो सहज स्थिति है,
इससे इतर ही सापेक्षिक दबाव के वशीभूत ही मिथ्या अहंकार संबंधी धोषणाएँ होती है,
अहंकार संबंधी मिथ्या << सापेक्षिक घोषणाओं के संबंध में लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित गीता,उपनिषद, पुराण आदि अध्यारोपित धर्म शास्त्र इसके प्रमाण हैं|
फिर भी हर धर्म शास्त्र में किसी न किसी अर्थ में विकास व संतुलन के निमित्त कुछ अच्छाइयाँ अवश्य है, लोक प्रचलित कोई भी मत न पूरी य
तरह से सत्य है, और न ही पूरी तरह से असत्य,
भाविकों को इस उक्त संदर्भ से नाराजगी हो सकती है,
पर यह बात किसी निंदा के दृष्टिकोण से
नही है, बल्कि सम्यक् कल्याणार्थ अध्यारोपित कृत्रिमता का स्ममोहन भंग
भंग करने व पूर्वाग्रह से,मताग्रह से मुक्त करने के शुभ उद्देश्य से है,
जिसका पक्ष है, उसका विरोधी पक्ष अवश्य है, लेकिन सापेक्षिक वर्तुल के कोण की यह बिमारी है,
अपने लिए पक्ष स्थापित करने से ही तुम सत्य की खोज से वंचित हो,
खैर तुम्हारा भला हो,
तुम्हारा सही अर्थ में कल्याण हो,
तुम्हें सही मार्ग स्पष्ट हो,
तुम्हारा सही दिशा में सही विवेक स्पष्ट हो,
फिर जो सत्य की खोज में हैं,
जो सत्य के प्रति ईमानदार है, जो सच सुनने अथवा पढ़ने की हिम्मत रखता है, वही विशेषतः उक्त उपदेश को सुने अथवा पढ़े,
यह आवश्यक नही जो लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित हो, प्रचलित हो, वह सच ही हो,
झूठ की भी बहुत लंबी परंपरा है,
सैकड़ों, हजारों, लाखों बार दोहराया गया झूठ भी सच का सम्मोहन पैदा करता है!!!
इस बात में समझदार के लिए सही दिशा में संभलने के लिए सार्थक संकेत है,
अन्य मूर्खों के लिए तो जैसे भैंस की कान में बीन बजाते रहो, क्या असर पड़ने वाला !!!
अब सच बताने का समय आ चुका है,
इससे पहले सच के लिए मनुष्य समाज तैयार नही था, अब मनुष्य सच के लिए तैयार है,
कल्प के आरंभ से ही मनुष्य जाति में जिन - जिन बातों को लेकर मतभेद होता आया है, सारा मतभेद हटेगा,
सम्पूर्ण मनुष्य जाति के साथ ऋत् सम्मत् न्याय होगा,
हर धर्मावलंबी को हर धर्म की पूर्णता के परिपेक्ष्य में सत्य का मार्ग स्पष्ट किया जाएगा,

पहले भी समय-समय पर कई बार आना हुआ,
उन सब कालो में विकास व संतुलन के निमित्त उन सब कालों के लिए आवश्यक धर्म व दर्शन को लोक में स्थापित किया था,
जो लोक परंपरा में विकास व संतुलन के निमित्त अभी तक प्रतिष्ठित हैं, प्रचलित हैं,
पर अबकी बार विशेषतः सत्य के लिए, न्याय के लिए ही आना हुआ है,
शीघ्र ही अभी आगे न्याय का दिन सुनिश्चित किया जाएगा,
अभी एकान्त वास है, एकांतवास का निमित्त पूरा होते ही फिर सार्वजनिक रूप से आना हो पाएगा,
और तब जिसके लिए इस बार आना हुआ है, वह पूरा होगा,
सभी के साथ ऋत् सम्मत् न्याय होने के
पश्चात पूरे लोक में सम्यक् धर्म अनुशासन लागू हो जाएगा,
अपेक्षित दृष्टिकोण द्वारा स्थापित
सभी कृत्रिम् धर्म विदा हो जाएंगे, क्योकि पूर्ण केन्द्रीय सत्य कोई स्पष्ट कराने वाला हो, बस इतनी देर भर है, पूर्ण केन्द्रीय सत्य सभी को सहज स्वीकृत है,
अभी तक लोक में पूर्ण केन्द्रीय सत्य
स्पष्ट नही होने से एक ही सापेक्षिक वर्तुल के
सभी कोण ऐ(स्थापित धर्म) एक- दूसरे के विरोध में है,
पूर्ण केन्द्रीय सत्य की अस्पष्टता में ऐसा होना स्वाभाविक है,
जैसे हिन्दू, मुहम्मदी मतभेद स्वरूप आपस में लड़ते हैं,
इसी तरह अन्य भी एक-दूसरे से लड़ते हैं,
हर कोई अपने धर्म की पुष्टि करता है, और दूसरे धर्म को गलत ठहराता है,
जब पूर्ण केन्द्रीय सत्य स्पष्ट होगा,
तब उन्हें पता चलेगा, पूर्ण केन्द्रीय सत्य के स्पष्ट होने के बिना सब अपूर्ण हैं,
सम्यक् सत्य स्पष्ट होने तक हर स्थापित धर्म की एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त बस औपचारिक पूर्ति भर है,
(तब तक ऐसा होना स्वाभाविक है,)
पूर्ण केन्द्रीय सत्य के स्पष्ट होने की देरी भर है,
सभी कोण निर्विरोधतः केन्द्र के अभिमुख हो, समर्पित हैं|
अब वह समय आ रहा है,
सभी मनुष्यों के लिए, मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव का जो धर्म है,
जो अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है, सनातन है,
लोक मे सम्यक् दिशा संकेतार्थ (सही दिशा के संकेत के अर्थ में) स्पष्ट होगा|
पूर्व महिपरिकल्प के अनुसार ही इस बार भी सम्यक् सद्धर्म के पवित्र स्पंदन प्रभाव से कम से कम १००० वर्ष तक लोक में सम्यक् सद्धर्म की शुद्धि बनी रहेगी,
तब तक विकृति स्वरूप कृत्रिम् धर्म की स्थापना नही होगी,
उसके पश्चात कालान्तर में सम्यक् सद्धर्म
ठऔर तब यह लोक में एक स्थापिसत धर्म रह जाएगा,
कालान्तर में महापरिकल्प के समापन तक जितने भी कृत्रिम् धर्मों की स्थापना होगी, उनका यह स्थापित धर्म ही मूल आधार होगा,
क्योंकि तब भी पवित्र स्पंदन का प्रभाव भले ही सीधे प्रत्यक्ष न सही,
परंतु अपरोक्षतः बना रहेगा,
अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रस्त लोगों की दृष्टि में अपेक्षित दृष्टिकोण के कारण ही ऐसा है,
पर पवित्र स्पंदन का प्रभाव अपनी जगह पर सदा के प्रतिष्ठित है,
सम्यक् सद्धर्म अपने जगह पर सदा ही पूर्णतः विशुद्ध है, उसका कदापि कभी नाश नही होता है, बस अज्ञ मनुष्यों की दृष्टि में अस्पष्ट भर रहता है,
सम्यक् सद्धर्म की अस्पष्टता सम्यक् सद्धर्म की कमी के कारण कदापि नही है,
बल्कि अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रस्त जनों के अध्यारोप से उन्हीं की दृष्टि में है,
गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म की शुद्धि ५०० वर्ष भी नही रह पाई,
मतभेद स्वरूप बुद्ध प्रवर्तित धर्म विकृति स्वरूप कई संप्रदायों में बँट गया,
फिर शाक्य मुनि (गौतम बुद्ध) द्वारा प्रवर्तित धर्म
दुख - दुख निरोध के अपेक्षित दृष्टिकोण पर स्थापित है,
तीर्थंकरों का धर्म भी अनिश्वर कर्म सिद्धांत के अपेक्षित दृष्टिकोण पर स्थापित है,
लेकिन अपौरुषेय सम्यक् धर्म किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण पर स्थापित नही है,
जब कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण नही रह सहज स्वाभाविक जिज्ञासा में यथार्थ से यथार्थ स्पष्टता के निमित्त जब

पूर्णतः समर्पण होता है, तब कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण शेष नही रह जाता है,
जब सम्यक् यथार्थ से ही सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त, बस निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में भूमिका रहती है, अन्य अर्थ में नही,
तब सम्यक् यथार्थ स्पष्ट है, उससे पहले कदापि नही, उससे पहले तो अपेक्षित दृष्टिकोण के कृत्रिम् सत्य का ही दिग्भ्रम है,
इसलिए जब कोई अपेक्षित दृष्टिकोण नही रह जाता है,
तब सहज ही सम्यक् सद्धर्म स्पष्ट है, इसकी स्थापना नही करनी पड़ती है,
सम्यक् सद्धर्म स्थापित नही होता है,
अपितु स्पष्ट होता है,
क्योंकि जो सहज ही है, उसे बनाया नही जा सकता, जो सहज उपस्थित नही है,
उसे ही कहीं से लाकर स्थापित किया जाता है, इस प्रक्रिया में ही क्रिया व दबाव स्वरूप प्रतिक्रिया है, जहाँ से निश्चित ही गिरना होता है,
मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का जो धर्म है, वह अकृत्रिम् है, अक्रिय है,
उसे बनाया नही जा सकता,
उसे आरोपित नही किया जा सकता,
उसे स्थापित नही किया जा सकता है,
वह सहज उपस्थित है,
उसी से मनुष्य के जीवन की दशा, दिशा, संतुलन व गति है,
जैसे कहीं की भी अग्नि हो, उसका सहज गुण है, जलाना,
उसे बनाना नही पड़ता,
मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म है, ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थित होना,
ज्ञानमात्र के निमित्त उसकी बस उपस्थिति भर होती है,
उसका कोई कार्य नही होता, उससे कोई कार्य नही होता, उसका कोई कारण नही होता,
उसकी उपस्थिति मात्र में सारा का सारा कार्य उपादान कारण का है,
ज्ञान मात्र के निमित्त, निमित्त (पुरुष) की
जब उपस्थिति भर होती है,
बस ज्ञान मात्र के निमित्त उपस्थित भर होने पर उपादान कारण का कार्य सिद्ध हो जाता है,
ज्ञान मात्र के निमित्त अगर उपस्थिति न हो, तो उपादान कारण का कार्य सिद्ध ही नही हो सकता,
यहाँ तक कि उपादान ही सिद्ध नही हो सकता, कार्य की तो बात ही दूर है,
कितना अधिक महत्व है, मनुष्य के सहज स्वभाव के धर्म का,
इस बात से तुम्हें कुछ तो संकेत अर्थ में पता चल ही गया होगा|
इसके आगे का उपदेश फिर कभी होगा,
सभी को सही मार्ग स्पष्ट हो,
सभी का सही अर्थ में मंगल हो|

05 September 2020

मनुष्य जाति का सारा साहित्य भी खो जाए, तो कोई बात नही, बस मनुष्य बच जाए,
मनुष्य न खो जाए, मनुष्य का बचा रहना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है,
क्योंकि मनुष्य का होना ही पर्याप्त है,
मनुष्य है, तो सहज स्वभाव सिद्ध सम्यक् मार्ग स्पष्ट है, मनुष्य को उसकी सहज मनुष्यता से वंचित कराने वाले, एक मनुष्य का दुसरे मनुष्य से मतभेद कराने वाले ऐसी किसी भी अध्यारोपित कृत्रिम साहित्य की कोई आवश्यकता नहीं है|
मनुष्य का स्वरूप सीधे सही मार्ग की ओर एक संकेत है, (ऋजु मार्ग के लिए संकेत है,)
तुम अपनी शारीरिक बनावट को देखो, आँखें कहाँ हैं, कान कहाँ हैं, नाक कहाँ है,मनुष्य की शारीरिक बनावट में जो अंग जिस कोण में, जिस स्थिति में, जहाँ हैं, वह वहीं हो सकते हैं,
उससे जरा भी इधर-उधर नही हो सकते हैं,
जरा भर परिवर्तन संभव नही,
यह प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है, क्योंकि जरा भी परिवर्तन हो जाए,
तो उठने-बैठने, चलने-फिरने, सोने -जगने इत्यादि व्यावहारिक क्रिया-कलापों में भलीभाँति संतुलन व स्थिति बन ही नही पाएगी,
इसीलिए मनुष्य की शारीरिक संरचना में जो अंग जिस कोण में, जहाँ हैं, वे विल्कुल सुव्यवस्थित अनुशासनबद्ध व संतुलित हैं,
व्यावहारिक संतुलन व सीधे मार्ग के दिशा निर्देश हेतु यह एक प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है,
, जिस प्राकृतिक न्याय व्यवस्था में मनुष्य पर सहज स्वाभाविक कृपा है,

इसलिए आँखें दाएं-बाएं नहीं हैं, सीधे सामने की ओर ही हैं, यहाँ यह इस बात संकेत है,
कि तुम्हें दाएं-बाएं नही, अपितु सीधे ही देखते हुए चलना है, और तुम्हारे कान दाएं -बाएं हैं, जो सजगता का प्रतीक है, तुमने देखा होगा जब कुत्ते,खरगोश आदि संवेदनशील पशु सजग होते हैं, तो उनके कान
खड़े हो जाते हैं, और आँखें नासाग्र की दिशा की ओर
सीधी व स्थिर हो जाती हैं,
प्राकृतिक ध्यान के संदर्भ में यह एक संकेत है |
{ सामान्यतः मनुष्य मन,बुद्धि के आयाम में जीता है, इसलिये दुविधा में है, इसलिए वह असहज है, सीधे ही प्राकृतिक संवेदनाओं में नहीं जीता,
मन के आयाम में जीने से मानसिक दबाव बना ही रहता है,
जहाँ सहज स्फुरित प्राकृतिक संवेदनशीलता दब कर रह जाती हैं, और इसीलिए वह कृत्रिम साधनों का प्रयोग करता है, लेकिन पशु मन, बुद्धि के आयाम से नीचे के आयाम में प्राकृतिक संवेदनाओं के वशीभूत जीते हैं, इसलिए सामान्यतः मन व बुद्धि संबंधित दबाव का प्रभाव नही होता, जैसे कि सामान्य मनुष्यों में होता,
सम्यक् सिद्धावस्था भी मन व बुद्धि के आयाम से ऊपर है,
और सम्यक् सिद्ध अवस्था में प्राकृतिक संवेदनशीलता पर पूर्णतः सहज नियंत्रण रहता है,
सम्यक् सिद्धावस्था में विशुद्धतम् ज्ञान की पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
सम्यक् सिद्ध अवस्था बिना किसी दबाव के पूर्णतः सहज स्वाभाविक स्थिति है,
इसलिए किसी भी अर्थ में शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक दबाव का प्रश्न ही नही है,
सहज स्वाभाविक सीधे मार्ग का सीधा संकेत सम्यक् सिद्धों के आचरण व व्यवहार से सीधे ही परिलक्षित होता है,
पर सम्यक् सिद्धों का दर्शन अति दुर्लभ है,
सम्यक् सिद्धों का स्तर अधिकारी भेद के आधार पर लौकिक सिद्धों,
कथित ईश्वर, कथित अवतार, पीर, पैगम्बर, देवी- देवताओं आदि से श्रेष्ठ हैं,
नाना प्रकार की अध्यारोपित कृत्रिमता के वशीभूत तुम्हारा जीवन स्तर
कितना ही निम्न क्यों न हो, तुम्हारी दृष्टि कितनी ही जटिलता में, सापेक्षता में,
व वक्रता में क्यों न हो,
सम्यक् सिद्ध का सानिध्य, शिक्षा, आचरण व व्यवहार तुम्हें सहज स्वाभाविक सीधे मार्ग में अवश्य ही प्रेरित करेगा,
सम्यक् सिद्ध से तात्पर्य यहाँ हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई आदि स्थापित धर्मों के साधन सिद्धों से नही है,
सम्यक् सिद्ध का दर्शन हो भी जाए,
तो तुम्हारी लोक प्रचलित पारम्परिक धार्मिक दृष्टि उसे पहचान नही पाएगी,
पर लोक के लिए यह दुर्भाग्य की बात, है, कि सम्यक् सिद्ध का सानिध्य बहुत ही दुर्लभ है,
निमित्त अधिकारी भेद के अनुसार सामान्यतः मनुष्यों का स्तर पशुओं से काफी ऊपर है,
(मन,बुद्धि के आयाम में जीने में दिग्भ्रम, संदेह ,संशय भ्रान्ति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
जो पशुओं में असंभव है, परन्तु इसी दिग्भ्रम, संशय, संदेह, दुविधा, भ्रान्ति के कारण ही मनुष्य पूर्ण सम्यक् समाधान हेतु सत्य की खोज के लिए प्रेरित होता है,
पशु नही, क्योंकि पशुओं को अज्ञान से आपत्ति नही होती,
इसलिए पशु, सही-सही समाधान हेतु सत्य की खोज के लिए प्रेरित नही हो पाता, इसलिए मनुष्य की अपेक्षा पशु इस संबंध में घोर अज्ञानता में हैं,
अगर अज्ञान से आपत्ति नही है, तो घोर दुःखद अज्ञानता से मुक्ति भी नही है,
इसलिए पशु जन्म में सम्यक् कल्याणार्थ उद्धार का अवसर नही है, एक मात्र मनुष्य जन्म में ही सम्यक् कल्याणार्थ उद्धार का अवसर है,
मनुष्य की कृत्रिम जीवन शैली को देखते हुए सामान्यतः सीधे मार्ग का संकेत नही हो पाता है,
इसलिए अगर तुम्हारे पास न्यून मात्र में भी सरल,,सहज, निर्दोष, निष्पाप दृष्टि है,
तो कृत्रिम जीवन शैली में आबद्ध मनुष्यों की अपेक्षा पेड़ -पौधों, कीट -पतंगों व पशु- पक्षियों आदि के व्यवहार का यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए भलीभाँति अवलोकन करो,
इससे भी एक सीमा तक अप्रत्यक्ष दिशा बोध संकेत हो सकता है,
क्योंकि पशु, पक्षी सामान्यतः मनुष्य की तरह कृत्रिम अध्यारोप की जटिलता में न होकर प्राकृतिक संवेदनशीलताओं के वशीभूत सरल प्राकृतिक जीवन शैली में जीते हैं, यहाँ पर तुम्हें सकारात्मक अर्थ में ही प्रेरित होना चाहिए, नकारात्मक अर्थ में कदापि प्रेरित नही होना चाहिए,
पशुओं के स्वच्छंद आचरण से प्रेरित नही होना, वरना अधोपतन संभव है,
पशु संयम नही कर सकते, इसलिए पशुओं में सहन क व वहन करने की क्षमता नही बढ़ पाती, इसलिए प्राकृतिक संवेदनशीलता के वशीभूत वे संवेदनाओं से ऊपर कभी भी उठ नही पाते,

मनुष्य उत्तरोत्तर संयमशील हो, पूर्णतः सहन व वहन करने की क्षमता को बढ़ाकर, प्राकृतिक संवेदनशीलता से ऊपर उठकर पूर्ण निश्चिंत सहज स्वभाव में स्थित हो सकता है,
जो पशुओं में बिल्कुल भी संभव नही है।}
कान तुम्हें सजग करते हैं, ताकि तुम्हारा ध्यान दाएं-बांए न बँटने पाए, दाएं-बांए न विखरने पाए,
(अगर तुम्हारे कान दाएं-बांए न होते,
तो तुम दाएं-बांए के प्रति सजग नही हो पाते,
तुम्हारी दृष्टि विखर जाती, और तुम सीधे सामने की ओर नही देख पाते,
जिससे उठने, बैठने, चलने इत्यादि व्यवहार में संतुलन ही नही बन पाता)
निश्चित अनुपात में कान दाएं-बांए होने से ही एक ऐसा संतुलन स्थापित होता है, जिससे तुम्हारी दृष्टि सीधे रहती है,
तुम्हारी नाक दोनों आँखों के मध्य में होती है ,और नाक का अग्रभाग आधार से पैंतालीस अंश के कोण में स्थित है,
यह मनुष्य कृत ज्यामिति का नही,
अपितु प्राकृतिक ज्यामिति का सांकेतिक उदाहरण है,
सामान्यतया तुमने यह देखा होगा, जब भी तुम सामान्यतः चलते हो तो तुम्हारी दृष्टि नासाग्र के लगभग सीध में होती है, तभी तुम्हारे चलने में एक संतुलन स्थापित होता है,
अगर नाक का अग्र भाग दोनों आँखों के मध्य आधार से ४५ अंश के कोण में न हो,
तो दृष्टि का संतुलन ही नही बन पाएगा, नाक का अग्र भाग दृष्टि के संतुलन का आधार है,
इसी संतुलन के आधार पर उठना, बैठना,चलना इत्यादि व्यवहार बन पाता है,
यद्यपि सामान्यतः यह संतुलन पूर्ण केन्द्रीय संतुलन नही
है, इससे बस सामान्य व्यावहारिक अर्थ में जीने की औपचारिकता ही पूरी हो पाति है,
इसलिए तुम्हारे लिए इस संकेत अर्थ में प्राकृतिक चेतावनी भी है,
कि तुम्हारी दृष्टि ठीक पैंतालीस अंश के कोण में पूरी तरह स्थिर नही है, और तुम्हें सहज स्वाभाविक संकेत की दिशा में दृष्टि को भलीभाँति संयमित करना है, तुम्हें पैंतालीस अंश के कोण में ही दृष्टि को उपस्थित रखना है, स्थिर रखना है,
चूँकि नाक का अग्रभाग सीधे मार्ग की
दिशा में आरंभिक दिशा सूचक है,
जब नासाग्र की ठीक सीध में दृष्टि रहती है तो अंतर में सहज श्वास का यथावत ज्ञान स्वाभाविक रूप से स्पष्ट रहता है,
यह सहज स्वाभाविक संकेत है, (कुदरती इशारा है,) जो मनुष्य कृत नहीं है, सहज श्वास का यथावत ज्ञान जब भलीभाँति पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है,
तब श्वास के आने-जाने के मध्य के मध्य का अंतराल स्पष्ट हो (खुल) जाता है,
और तभी अंतर में प्रवेश होता है,
उससे पहले हर कोई श्वास संबंधित दबाव के वशीभूत बाहर का बाहर ही है, जन्मों -जन्मों से अंतर में प्रवेश हुआ ही नहीं...
क्रमशः.

06 September 2020

सामान्य व्यक्ति की बुद्धि कारण के अर्थ में
संवेदनशील न होकर किसी एक कोणीय परम्परागत् दृष्टिकोण में ही बंद रहती है,
इसलिए वह नये से नये आयाम के अर्थ में शोधरत् (खोजरत्) नही हो,पाता,
किसी सामान्य व्यक्ति से अगर कोई यह पूछे,
पेड़ से गिरा हुआ फल नीचे की तरफ ही क्यों गिरता है, ऊपर की ओर क्यों नही,
तो वह सामान्य व्यक्ति सामान्यतः यही उत्तर देगा,
कैसे मूर्ख हो भाई, ऊपर की ओर क्यों गिरेगा भला,
नीचे की ओर ही तो गिरेगा,और कहाँ गिरेगा,
उस सामान्य व्यक्ति की बुद्धि बिना कारण के अर्थ में संवेदनशील हुए,
एक कोणीय परम्परागत् अर्थ में बंद है,
इसलिए सामान्यतः उसका यही उत्तर होगा,
पर जो कारण के अर्थ में संवेदनशील है, वह बिना कारण स्पष्ट हुए स्वीकार नही करेगा,
जैसे सामान्यतः प्रचलित अर्थ में फल के नीचे की तरफ गिरने का कारण गुरुत्वाकर्षण है,
पर गुरुत्वाकर्षण भी तो अकारण नही है,
फिर उसका कारण क्या है, क्योंकि यह भी पूर्णतः यथार्थ सच्चाई नही है, गुरुत्व बल 'यह कारण' होना भी अपेक्षित दृष्टिकोण में ही है, पर 'यह कारण" होना सामान्यतः पहले की अपेक्षा ओर सीधे अर्थ में, और सूक्ष्म अर्थ में, और सही अर्थ में है ...
पर उसका भी कारण है, जो और सीधे, ओर सूक्ष्मता में, और सही अर्थ में है, जो उसका भी आधार है,

इस प्रकार उत्तरोत्तर सीधे से सीधे, सूक्ष्म से सूक्ष्म, सही से सही आधारीय कारण के अर्थ में खोज जारी रहती है,
अंततः सबसे सीधा, सबसे सूक्ष्म, सबसे सही सबका आधारीय कारण
स्पष्ट होता है, तब फिर दिग्भ्रान्ति नही रह जाती है,
विज्ञान की खोज कभी भी पूर्ण नही होती, आज का वैज्ञानिक सत्य है,
वह आज की अपेक्षित माँग में, आज के अपेक्षित परिपेक्ष्य में ही है,
जो एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त है, इसी तरह विज्ञान की खोज जारी ही रहेगी, इसका कभी अंत नही होगा,
अंततः सम्यक् सद्धर्म मे ही वैज्ञानिक खोज का समापन है,
फिलहाल इस पृथ्वी ग्रह में अभी वैज्ञानिक विकास की गति बहुत मंद है,
लेकिन सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में इस कमी की पूर्ति है ....
(विश्व भर से सभी वैज्ञानिक सम्यक् धर्म अनुशासन में रहकर अपेक्षितदृष्टिकोण में स्थापित हुए धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक लकीरों से हटकर हर सार्थक उपयोगी दिशा में एक महा प्रयोगशाला में परस्पर प्रतिभा की सहभागिता में विशुद्ध वैज्ञानिक अन्वेषण करें,
विशेषकर सूक्ष्म भौतिकी व अंतरिक्ष के क्षेत्र में तो बहुत ही आवश्यक है,)
यहाँ उदाहरण में पेड़ से फल के ऊपर की ओर नही,
बल्कि नीचे की ओर गिरने की जो बात कही गयी है,
जिसमें यहाँ जो ऊपर, नीचे कहा गया है,
यहाँ पर ऊपर - नीचे सामान्यतः एक ही तल की, एक ही सीध की परस्पर विरोधी दिशाएँ हैं, फिर क्या ऊपर, क्या नीचे,
यह तो सामान्य व्यक्ति जिस कोण विशेष से देख रहा है, उस कोण विशेष से ही उसे वह ऊपर अथवा नीचे दिख रहा है,
केन्द्र से देखने की बात नही है,
बल्कि दिखने की बात है, केन्द्र से दिखने में सीधे ही एक साथ सब ओर से सब ओर का यथावत् दिखना है,
मतलब कि स्पष्टतः आर-पार की पारदर्शिता पूरी..... भ्रांति का तो कोई
अर्थ ही नही, धोखाधड़ी का तो कोई मतलब ही नही,
देखना कोण विशेष से होता है, जब तक दृष्टिकोण विशेष शेष है,
तब तक कोण विशेष से ही देखना हो रहा है,
कोण विशेष से देखने का मतलब आरोपित दृष्टिकोण विशेष से देखना, मतलब अपनी तरफ से देखना,
देखने व दिखने के अंतर को सूक्ष्मता से समझना बहुत ही आवश्यक है,
देखने में अहंकार है, कर्तापन है, अकड़ है,
असहजता है, दबाव है, अपेक्षा है, आग्रह है, > पूर्वाग्रह है, शर्त है, समझौता है,
सीधे ही दिखने में न कोई अपेक्षा है, न कोई पूर्वाग्रह है,न कोई शर्त, न कोई समझौता, बस सीधे जैसा है,ठीक वैसा ही बस केवल दिखना हो, इस बात की पूरी सत्यता है, पूरी ईमानदारी है, पूरी सरलता है,पूरी सहजता है, पूरी निर्दोषता है, पूरी निष्पापता है, पूरी शुदता है, पूरी पवित्रता है, पूरी जिज्ञासा है, पूरी प्यास है, पूरी तड़प है, पूरी तत्परता है, पूरा समर्पण है,
बस सीधे ही दिखने में कोई भी आरोपित दृष्टिकोण विशेष शेष नही रह जाता,
सारा दिग्भ्रम आरोपित दृष्टिकोण का है,
आरोपित दृष्टिकोण विशेष से देखना, अर्थात् अपनी तरफ से देखना,
पूर्वाग्रह की अपेक्षा पर अवलंबित हो देखना,
पूर्वाग्रह की अपेक्षा के दबाव में ही तुम
तथ्य में अपनी तरफ से कुछ न कुछ मिला देते हो, यहीं से बात बिगड़ जाती है,
इसमें तथ्य का कुछ नहीं बिगड़ता, तथ्य तो अपनी जगह पर निभ्रांत स्पष्ट है,
शुद्ध,स्पष्ट तथ्य में तुम्हारा पूर्वाग्रह के दबाव में,
मताग्रह के दबाव में कुछ न कुछ मिलाना, बस इसी से तुम्हारी अपनी ही दृष्टि में तुम्हें दिग्भ्रम हो रहा है, धोखा हो रहा है, इस दिग्भ्रम, इस धोखे के लिए मिलावट करने की तुम्हारी बेईमानी जिम्मेदार है,
सीधे दिखने में जो जैसा है, वैसा दिख रहा है, दिग्भ्रम का प्रश्न ही नही, धोखे की तो कोई बात ही नही, सीधे हर बात की सच्चाई खुली है, कहीं कोई भ्रांति नही, कहीं कोई धोखा नही,
उत्तरोत्तर केन्द्र की ओर सही से सही, सीधे से सीधे कोण से दर्शन (दिखने) के निमित्त,
उत्तरोत्तर पहले से पहले के पूर्ववत् आभास की भ्रान्ति हटती जाती है,
केन्द्र के निकट से निकट के कोणों से जब दिखना पूरा हो जाता है,
तब अंततः सीधे केन्द्र से ही सीधे दर्शन के
निमित्त स्थिति होती है, ऐसी स्थिति में
तब कोई भी दृष्टिकोण विशेष शेष नही रह जाता है,
जब उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास का निमित्त मापदंड पूरा होता है, तब अंततः सीधे ही बिना किसी दृष्टिकोण विशेष के पूर्णतम् केन्द्रतम् से ही सीधे दर्शन मात्र (बस सीधे ही दिखने) के निमित्त पूर्णतः सहज स्थिति होती है,

तब ऐसी ही पूर्णतः सहज स्थिति मे सीधे ही पूर्णतः सम्यक् यथावत् दर्शन स्पष्ट है,
तब जरा भी दिग्भ्रम नही .....

07 September 2020

तुम्हारी दृष्टि में < महत्व बुद्धि में कर्तव्य विशेष की उपाधि जब तक है, तब तक कर्ता भाव का आरोप स्वाभाविक है,
भोक्तव्य विशेष की उपाधि जब तक है,
तब तक भोक्ता भाव का आरोप स्वाभाविक है,
दृष्टव्य विशेष की उपाधि जब तक है, तब तक दृष्टा भाव का आरोप स्वाभाविक है,
ज्ञातव्य विशेष की उपाधि जब तक है, तब तक ज्ञाता भाव का आरोप स्वाभाविक है,
तुम्हारी दृष्टि में बुद्धि के निमित्त जब तक किसी भी उपाधि विशेष का महत्व बना हुआ है, तब तक उससे अपेक्षित < संबंधित आरोप का होना स्वाभाविक है|
अगर तुम्हें संबंधित आभास हो रहा है,
तो निश्चित ही आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण के दिग्भ्रम से (तुम) ग्रसित हो,
कृत्रिम् दृष्टिकोण के आरोप से तुम अपनी ही दृष्टि में समोहित हो, दिग्भ्रमित हो, अज्ञानता में हो|
जब तक दृष्टि में आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण स्थापित है, तब तक दृष्टि दुषित है, मलिन है, अशुद्ध है, अपवित्र है, वक्रता मे है|
दृष्टि में स्थापित अपेक्षित <आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण के दबाव से ही दृष्टि वक्र है, और वक्र दृष्टि में ही समय, आकाश, दिशा, दूरी, गति, पदार्थ, द्रव्यमान, ऊर्जा आदि सापेक्षिक व्यवहार का आभास हो रहा है, अन्यथा तो सीधा सम्यक् यथार्थ ही स्पष्ट है|

सारा दुःख, सारा दिग्भ्रम, सारा संशय, सारा संदेह, सारी दुविधा, सारा धोखा,सारा अनर्थ दृष्टि में
आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण के कारण ही है,
आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण में हर कोई जीने की सच्चाई से वंचित है, हर कोई दिग्भ्रम में है, दुविधा में है, संशय में है, संदेह में है, धोखे में है,
जब तक यह दुःखद दुर्भाग्य पूर्ण आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण हट नही जाता, तब तक सही अर्थ में कल्याण नही,सही अर्थ में शान्ति नही, सही अर्थ में समाधान नही,
जब तक दृष्टि में आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण स्थापित है, सब धोखा ही धोखा है, क्या आस्तिक, क्या नास्तिक, क्या मोमिन क्या मुन्किर कुछ भी होना धोखे में है,
क्या धर्म, क्या कर्तव्य सब धोखा ही धोखा है,
पहली ईमानदारी इसी में है, कि अपनी इस अज्ञानता को स्वीकार करे,
और इससे भी बढ़कर दूसरी ईमानदारी है, दृष्टि में स्थापित आरोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण से मुक्ति के लिए
पूरी तरह से अग्रसर रहना,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही मात्र पूर्णतया उद्योगरत् रहना,
यही पहला धर्म है, पहला कर्तव्य है, पहली ईमानदारी है, पहली जिम्मेदारी है,
इससे पहले न कोई धर्म है, न कोई कर्तव्य है, न कोई ईमानदारी है,न कोई जिम्मेदारी है,
सम्यक् अर्थ में पूर्णतः यथार्थतः सच्चाई का स्पष्ट होना पूर्णतः केन्द्रीय तल पर है,
आस्तिकता, नास्तिकता, द्वैत-अद्वैत, ईश्वर, अनीश्वरवर, आत्मा, अनात्मा धर्म, अधर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य इत्यादि कोई भी संदर्भ सब का सब सापेक्षिक दबाब में < सापेक्षिक वर्तुल के तल पर ही है,
पूर्णतः केन्द्रीय तल पर नही है,
किसी भी संदर्भ में पूर्णतः केन्द्रीय सच्चाई वर्तुल के स्तर पर स्पष्ट नही हो सकती,
सापेक्षिक वर्तुल का हर कोण
पूर्णकेन्द्रीय सीध अर्थात् नासाग्र > (नासाग्र ज्ञान) की ठीक सीध से इतर है,
नासाग्र > (नासाग्र के ज्ञात होने) की ठीक सीध में
सापेक्षिक वर्तुल का कोई कोण नही,
वरन ठीक सीधे सापेक्षिक वर्तुल का केन्द्रीय तल है,
नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध में पूर्ण यथा सहजता है, सापेक्षिक दबाव नही,
नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध से जरा सा भी इतर होने पर पूर्ण यथा सहजता भंग है, सापेक्षिक < संबंधित दबाव हावी है,
सम्यक् यथावत् सच्चाई का स्पष्ट होना पूर्ण यथा सहजता में ही है,सापेक्षिक दबाव में नही,
इसलिए चूँकि सम्यक् अर्थ में यथार्थतः सच्चाई का स्पष्ट होना नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध में अर्थात् पूर्णतः केन्द्रीय तल पर है,
इससे इतर जो कुछ भी है, वह अपेक्षित वर्तुलीय स्तर पर होने से उस वर्तुलीय स्तर पर कदापि पूर्णतः सच्चाई नही खुल सकती,
अपूर्णता, दिग्भ्रम, संशय, संदेह, दुविधा, अज्ञानता का होना स्वाभाविक है,
इसलिए ध्यान रहे, वर्तुल के किसी भी कोण की पूर्णतः सच्चाई उसके उस वर्तुल के स्तर पर स्पष्ट नही है,

अपितु सापेक्षिक वर्तुल के हर कोण की पूर्णतः सच्चाई उसके केन्द्रीय तल पर पूर्णतः निभ्रान्त स्पष्ट है....
इसलिए वर्तुल के स्तर पर किसी भी कोण विशेष की सच्चाई की खोज करने वाला सदा ही अपूर्णता में रहता है, सम्यक् समाधान स्पष्ट नही हो पाता,
कोऽहं संबंधित जिज्ञासा हो,या आत्मा अथवा ब्रह्म संबंधित जिज्ञासा हो, इत्यादि कोई भी जिज्ञासा यथा सहज सम्यक् जिज्ञासा नही है,
अपितु अपेक्षित दृष्टिकोण के तल पर है, अध्यारोपित दृष्टिकोण के तल पर है,
जो सापेक्षिक दबाब में सापेक्षिक वर्तुलीय स्तर पर ही है,
नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध में नही है,
नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध में तो बस विशुद्धतः मात्र ज्ञात भर होना शेष स्पष्ट है,
वर्तुल के हर कोण की पूर्णतः सच्चाई उसके केन्द्र में ही पूर्णता के अर्थ में है,
इसलिए नासाग्र की ठीक सीध में ही अर्थात् पूर्ण केन्द्रीय सीध में सहज ही हर कोण विशेष की पूर्णतः सच्चाई है,
इसलिए पूर्ण केन्द्रीय स्वर पर ही सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त रहो, सहज ही हर कोण विशेष की पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही अंतर्गत में सहज ही कोऽहं से संबंधित, आत्मा अथवा ब्रह्म से संबंधित, अनात्मा अथवा शून्यता इत्यादि से संबंधित "अपेक्षित" > वर्तुलीय स्तर के हर संदर्भ की
पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट है,
किसी भी विषय में किसी भी अर्थ में कोई दिग्भ्रान्ति, संशय, संदेह, दुविधा, अज्ञानता नहीं, हर विषय का हर अर्थ में पूर्णतः सम्यक् निराकरण स्पष्ट है, पूर्णतः सम्यक् समाधान स्पष्ट है,
सत्य क्या है, सामान्यतः यही केन्द्रीय स्तर का केन्द्रीय प्रश्न है, कोऽहं से संबंधित प्रश्न हो, या आत्मा अथवा ब्रह्म आदि संदर्भ से संबंधित कोई प्रश्न हो,
कोई भी प्रश्न केन्द्रीय स्तर का प्रश्न नही, बल्कि अपेक्षित दृष्टिकोण के प्रश्न हैं,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त जिज्ञासा ही सहज स्वाभाविक सम्यक् जिज्ञासा है, इससे इतर जो भी जिज्ञासा है, वह यथा सहज सम्यक् जिज्ञासा नही है,
अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण है,
अहो दुर्भाग्य!
सम्यक् निष्ठा क्या है, सम्यक् जिज्ञासा क्या है,
सम्यक् शोध क्या है, सम्यक् धर्म क्या है, सम्यक् आचरण क्या है, सम्यक् अभ्यास क्या है, सम्यक् कर्तव्य क्या है, लोकदृष्टि में सम्मोहित, दिग्भ्रमित अज्ञ जनों को स्पष्ट नही हो सकता,
पारदर्शिता तभी दिखती है,
जब दृष्टि पारदर्शी हो,
सीधे ही यथावत् दिखने के निमित्त जब तक पारदर्शिता पूरी नही होती, और। जब तक सहजता,सजगता,सरलता, निर्दोषता, निष्पापता पूरी नही होती,
तब तक सम्यक् यथावत् दर्शन में अवरोध ही अवरोध है...
उत्तरोत्तर अभ्यास के निमित्त जब दृष्टि की ठीक सीध की पूर्णता हो जाती,
तब अपनी तरफ से कोई दृष्टि नही रह जाती, तब सीधे ही दर्शन मात्र के निमित्त पूर्ण पारदर्शी स्थिति रहती है|

08 September 2020

सापेक्षिक दबाव में ही अपनी तरफ से देखने के लिए दबाव होता है,
अपनी तरफ से देखने का आशय है,
पूर्वाग्रह के दबाव में देखना,
सामान्यतः तुम्हारा देखना किसी एक सीध के आरंभ से ही होता है,
जिस सीध के आरंभ से तुम देखते हो, उसी सीध के अंत में तुम्हारे देखने का भी अंत है,
इसलिए तुम जो भी देख रहे हो, एक सीमा में है..
सीमित दृष्टिकोण में है,
पूर्णता में नही, अधूरेपन में है |
इसलिए सीमित दृष्टिकोण में, अधूरेपन में जो भी तुम देख रहे हो, वह पूर्ण सत्य नही है,
अधूरा सत्य है, अधूरे सत्य में ही भ्रान्ति होती है, संबंधित प्रश्न खड़े होते हैं, संशय खड़े होते हैं, जिनका भलीभाँति ठीक -ठीक समाधान अधूरे सत्य के तल पर नही है, (जिस तल पर तुम जी रहे हो, उस तल पर अर्थात्
सीमित दृष्टिकोण में नही है,)
जिस दृष्टिकोण से, जिस अर्थ में, जितना तुम देखते हो,

उसी दृष्टिकोण से, उसी अर्थ में, उतनी ही तुम्हारे ज्ञान की भी सीमा है, तुम्हारे समझने की, विचार करने की, निर्णय लेने की भी सीमा है |
हाँ अगर अपूर्णता (अधूरेपन) की यह कमी तुम्हें खलती है,
तो सही अर्थ में सत्य की जिज्ञासा संभव है,
** सामान्यतः अभी जिस सीध के आरंभ से तुम्हारे देखने का आरंभ हो रहा है, अथवा तुम्हारा देखना हो रहा है,
उस सीध में भले ही तुम्हें अधूरे सत्य का दर्शन होता है,
पर उस सीध में भलीभाँति स्थिरता पूरी होने पर
उससे सीधी सीध स्पष्ट हो जाती है,
(जहाँ पहले की अपेक्षा उस सीधी सीध से देखने का आरंभ होता है, और जहाँ पहले की अपेक्षा और सीधा सत्य दर्शन भी होता है,)
उस सीधी सीध में भी भलीभांति स्थिरता पूरी होने पर उससे भी सीधी सीध स्पष्ट होती है,
इस प्रकार अंततः सबसे सीधी सीध स्पष्ट होती है,
और सबसे सीधी सीध की पूर्णता में में सबसे सीधा व सबसे पूर्ण सत्य स्पष्ट होता है ||
मुख के ऊपरी भाग में, नासाग्र की ठीक सीध में जहाँ श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उस सीध में स्मृति को भलीभाँति सीधा व स्थिर रखो,
ठीक सीध की पूर्णता में भलीभाँति स्थिरता पूरी हो जाती है, तब सभी सापेक्षिक अंतों के आर-पार का सीमा रहित पूर्ण दर्शन स्पष्ट होता है, सब सापेक्षिक अंतों के आर-पार का सीमा रहित पूर्ण सत्य स्पष्ट है,
पूर्णता में कोई भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई अज्ञान नही,
पूर्ण केन्द्रीय समाधान स्पष्ट है....

09 September 2020

यथा सहजता में यथा सजग होने पर
सहजता व सजगता दोनों में वृद्धि होती है,
सहजता में ही और सजग होने में सहजता होती है|

09 September 2020

In the right direction of in front part of nose, correct present
> is present ,

apart from this,
the expected pressure of past-future (time)is there.

09 September 2020

सामान्यतः जो कुछ भी तुम देख रहे हो, जान रहे हो, जो कुछ भी तुम प्राप्त कर रहे हो, वह सब अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण में ही है, सत्य में नही,
चाहे कोई द्वैत कहे, या अद्वैत, ईश्वर कहे, या अनीश्वर, आत्मा कहे,या अनात्मा, ब्रह्म कहे, या शून्य, कुछ भी कहे, सब अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण में ही है,
अविद्या के कारण < संस्कारित दबाव में ही है,
यथार्थ में नही,
सांसारिक जन तो क्या ज्ञात हो रहा है, (किसका ज्ञान हो रहा है,)
इसी परिप्रेक्ष्य में ज्ञान कहता है,
ज्ञान मात्र अर्थात् बस ज्ञात भर होने के
अर्थ में नही, इसलिए तो वह कृत्रिमता के सम्मोहन जनक सापेक्षिक प्रपंच में ही उलझा रहता है,
परमरागत् लोक प्रचलित सूत्रकार, भाष्यकार, टीकाकार आदि सभी अपेक्षित < स्थापित कृत्रिम् दृष्टिकोण के सम्मोहन में दिग्भ्रमित हैं,
सबको अपने-अपने (द्वैत-अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, त्रैत आदि का आत्मा,अनात्मा, माया, ब्रह्म, शून्य, ईश्वर,अनीश्वर आदि अध्यारोपित कृत्रिमता का) अपेक्षित दृष्टिकोण का प्रबल आग्रह है,
और यह बड़ी बाधा है, यथार्थतः सत्य की खोज में,
(सम्मोहन कृत्रिमता का धर्म है, कृत्रिमता के (प्रतिक्रिया स्वरूप) दबाव में ही सम्मोहन के लिए दबाव बनता है,)
क्या सहज है, क्या संस्कारित दबाव में है,
इस बात का
सही-सही विवेक खुलना बहुत ही
आवश्यक है,
जो सहज है, उसी में स्थिरता संभव है,
संस्कारित दबाव में गिरना स्वाभाविक है, सहज स्थिरता कदापि संभव नहीं,
ज्ञात भर होना सहज है,
हर संदर्भ में क्या ज्ञात हो रहा है,
इसमें अंतर है,
(क्या ज्ञात हो रहा है, इसमें क्या का संदर्भ अर्थात् "यह" ज्ञात हो रहा है,
"वह" ज्ञात हो रहा है, यह संदर्भ बदल रहा है,
पर हर संदर्भ में ज्ञात हो रहा है,
नही बदल रहा है, ज्ञात हो रहा है,
यह में भी है, वह में भी है,
हर संदर्भ में, हर संबंध में "ज्ञात होना" उपस्थित है, स्थिर है,)
हर संदर्भ में बस ज्ञात भर होना
(बस मालूम भर होना) ही बस अंतर रहित है
जहाँ अंतर है, वहाँ पर ही अपने से पहले के अनुसार बार-बार बीतने पर उत्पन्न के के लिए दबाव बनता है,
किसको, किसे, क्या, क्यों, किसलिए ज्ञात हो रहा है, इस सापेक्षिक प्रपंच में पूर्ववत् अपेक्षित दबाव का होना स्वाभाविक है,

द्वैत-अद्वैत आदि यह सारा सापेक्षिक प्रपंच क्या ज्ञात हो रहा है, इसमें ही आता है,
(ज्ञात होना, द्वैत के ज्ञात होने में भी है, अद्वैत के ज्ञात होने में भी है,
ज्ञात होना
दोनों में एक सा है, काॅमन है, अंतर रहित है,
पर यह (द्वैत) और वह (अद्वैत) के होने में अंतर है, यह और वह एक सा नही है, इसमें अंतर है,
जो अंतर रहित है,
जो एक सा है, वही स्थिर है, सदा है, सर्वदा है, सहज है, उसे कहीं से लाकर स्थापित नही करना पड़ता,
जो पक्ष है, जिसका विरोधी पक्ष है, जैसे द्वैत-अद्वैत आदि पक्ष,
इसकी सहज उपस्थिति नही है, अपेक्षित दृष्टिकोण में इसको स्थापित करना पड़ता है, बस ज्ञान मात्र अर्थात् बस ज्ञात भर होना सहज उपस्थित है, अपौरुषेय है, सदा स्थिर, सदा सनातन है, सदा अभाव रहित है, इसे कहीं से लाकर अलग से स्थापित नही करना पड़ता,)
बस ज्ञात भर होना ही बस द्वैत-अद्वैत आदि अंतर वाले सापेक्षिक प्रपंच में अंतर रहित है,
जो द्वैत कहता है,
वह अपने द्वैत अपेक्षित दृष्टिकोण को सिद्ध करने के लिए पहले अद्वैत को स्वीकार करता है,
फिर उसकी अपेक्षा में,उसकी तुलना में द्वैत को सिद्ध कर द्वैत की स्थापना करता है, स्थापना होने पर फिर अद्वैत का निषेध करता है,
इसी प्रकार जो अद्वैत कहता है, वह अपने
अद्वैत अपेक्षित दृष्टिकोण को सिद्ध करने के लिए
पहले द्वैत को स्वीकार करता है,
फिर उसकी अपेक्षा में,तुलना में अद्वैत को सिद्ध कर उसकी स्थापना करता है,
अगर ऐसा सापेक्षिक < तुलनात्मक व्यवहार उनके अपने अपेक्षित दृष्टिकोण में न हो,
तो स्थापना होगी ही नही,
यथार्थ में द्वैत-अद्वैत आदि किसी की भी स्थापना नही होती,
यथार्थ में तो बस यथार्थतः जैसा है, वैसा ही स्पष्ट है,
यह द्वैत-अद्वैत आदि कृत्रिमता तो उनका अपने ही अपेक्षित कृत्रिम् दृष्टिकोण का दिग्भ्रम है, धोखा है, छलावा है, यथार्थतः नही,
द्वैत,अद्वैत आदि किसी भी सिद्धांत अथवा मत आदि की स्थापना करना बुद्धि का धर्म है,
बुद्धि का धर्म है, तुलनात्मक दृष्टिकोण में, सापेक्षिक दृष्टिकोण मे किसी भी बात को सिद्ध करना,
किसी एक अंत को सिद्ध करने के लिए दूसरे अंत का होना आवश्यक है,
सापेक्षिक वर्तुल में हर कोणीय अंत का उसका विरोधी कोणीय अंत अवश्य है,
बिना दो कोणीय,अंतो के सापेक्षता सिद्ध नही है,
और बिना सापेक्षता के, तुलना के बुद्धि का निर्णय संभव नही है,
यहाँ द्वैत-अद्वैत अपेक्षित दृष्टिकोण का उदाहरण इसलिए दिया जा रहा है,
ताकि तुम्हारी दृष्टि में उक्त आरोपित दृष्टिकोण का सम्मोहन भंग हो,
और तुम्हारे विवेक में क्या ज्ञात हो रहा है, और ज्ञात भर होना
इसमें स्पष्टतः अंतर स्पष्ट हो,
हर संदर्भ में क्या ज्ञात हो रहा है, एक सा नही है, इसमें अंतर है,
पर बस ज्ञात भर होना हर संबंधित व्यवहार में एक सा है, इसमें कोई अंतर नही,
इसलिए क्या ज्ञात हो रहा है, इससे निरपेक्ष हो, बस ज्ञात भर हो रहा है,
बस इसी में रहना है, बस ज्ञान मात्र के निमित्त उपस्थित होने पर हर संदर्भ की पूर्णतः सच्चाई खुली है|

11 September 2020

हे पृथ्वी ग्रह के मनुष्यो|
पृथ्वी ग्रह का पर्यावरणीय संतुलन Environmental balance खतरे में है,
पृथ्वी के वायुमण्डल में जीवन उपयोगी गैसीय संतुलन का समीकरण भंग होने जा रहा है,
ओजोन गैस की परत का विरल होते जाना,
और कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा का औसत अनुपात से अधिक बढ़ते ही जाना, पृथ्वी के वातावरण का उत्तरोत्तर गर्म होते जाना,
(global warming > green house effect का बढ़ते जाना) कहीं कालान्तर में लगभग शुक्र ग्रह venus जैसी नारकीय परिस्थिति न ला दे,
क्योंकि अगर अभी से भलीभाँति संभलना नही हुआ,

तो आगे इस पृथ्वी ग्रह का पर्यावरण इतना गर्म व दूषित होता जाएगा, कि भीषण उमस, अम्लीय वर्षा व पैरा बैगनी किरण व अन्य हानिकारक विकिरण के प्रभाव से बचने के लिए मनुष्य को भूमिगत होना पड़ सकता है,
वहाँ जीवन योग्य कृत्रिम वातावरण में कुछ समय के लिए ही राहत हो सकती है,
प्रदूषण के प्रभाव से पृथ्वी ग्रह के जीवों के डी•एन•ए• की संरचना पर भी पड़ेगा, जिससे भयानक विकृत व बेमेल अंगों वाले जीवों की एक नयी समस्या इस पृथ्वी ग्रह में आ सकती है, यह पृथ्वी जीते जी नर्क बन सकती है,
अगर अनर्थ से बचना चाहते हो,
तो पर्यावरण के संदर्भ में अभी इसी समय से संभलना बहुत ही आवश्यक है...
हरे वृक्ष लगाओ, विशेषकर पीपल जैसे वृक्ष जो आक्सीजन का उत्सर्जन अधिक करते हैं...
अवैध खनन रोको, विशेषकर पैट्रोल, डीजल , केरोसीन व प्राकृतिक गैस ईधन का प्रयोग बंद हो,
प्लास्टिक का उत्पादन भी
बंद हो, इसकी जगह पर सौर ऊर्जा व अन्य ऐसे प्राकृतिक संसाधन बेहतर विकल्प है, जिसमें कार्बन का अनावश्यक उत्सर्जन रुक सके,.
और हिलियम व आक्सीजन गैस का उत्पादन कुछ और बढ़े,
इसके लिए और सम्यक् दिशा में वैज्ञानिक शोध हो,
मिट्टी से बने उत्पादों का अधिक से अधिक प्रयोग हो,
क्योंकि इसका हानिकारक विकिरण प्रभाव नही है, और यह पर्यावरणीय संतुलन में बाधक नही है,
विशेषकर पीपल के वृक्षो का, व शुद्धनस्ल की देशी गायों का पर्याप्त संरक्षण व संवर्धन पर्यावरणीय संतुलन में सहायक है, और भी बहुत से सकारात्मक उपाय हैं,
जिससे पर्यावरणीय संतुलन में समुचित वृद्धि हो सकती है,
यहाँ तो बस पर्यावरणीय संतुलन के संदर्भ में तुम्हें जागरूक करने लिए संक्षिप्त में कुछ उदाहरणों का ही संकेत दिया गया है,
इस पृथ्वी ग्रह में मनुष्य बहुत ही उपद्रवी है, मनुष्य को छोड़ अन्य सभी प्रजातियों की प्राकृतिक जीवन शैली पृ्थ्वी के पर्यावरणीय संतुलन में सहायक है, मनुष्य की उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या व कृत्रिम जीवन शैली
पृथ्वी के पर्यावरणीय संतुलन में बाधक है,
पर्यावरणीय संतुलन में सहायक
अन्य प्रजतियों का धीरे-धीरे लुप्त होना पर्यावरणीय संतुलन के दृष्टिकोण से घातक है...
पर अब बहुत देर हो चुकी है,
संभावित खतरा बढ़ता ही जा रहा है,
एक तरफ उत्तरोत्तर दूषित होते जाते पर्यावरण की समस्या है,
तो दूसरी तरफ एक और बहुत बड़ी समस्या अध्यारोपित धर्म व राष्ट्रवाद के प्रतिनिधियों ने खड़ी कर रखी है,
अध्यारोपित धर्म व राजनीति के ठेकेदार
तुम्हें कभी भी सार्वभौमिक, सार्वजनिक, सामुहिक स्तर पर सम्यक् अनुसंधान में एकजुट नही होने देंगे,
क्योकि जाति,वर्ग, राष्ट्र, धर्म, संस्कृति, सभ्यता के आपसी मतभेद व विरोधाभास में इनकी बहुत नफे (लाभ) की दुकानदारी चलती है,
ये सामुहिक स्तर पर में सम्यक् अनुसंधान के लिए बाधक हैं,
आने वाले संभावित नर्क के यही जिम्मेदार होंगे .....
हे पृथ्वी ग्रह के सभी वैज्ञानिको|
अगर समय रहते संभले नही, तो आने वाले समय में यह पृथ्वी जीवन के योग्य नही रह जाएगी,
जीवन सबसे महत्वपूर्ण है,
जीवन का संरक्षण व संवर्धन सबसे प्राथमिक है,
जीवन को बचाने का पूरा प्रयास हो,
जीवन को बचाने के लिए,
भले ही इस पृथ्वी से जीवन का सकुशल व सफल पलायन किसी अन्य प्राकृतिक ताजगी व गुणवत्ता से परिपूर्ण, प्रदूषण रहित सुरक्षित स्थान safe planet में कराना पड़े,
इसलिए विश्व भर की सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रतिभा
राष्ट्र, वर्ग, राजनीति, धर्म, संस्कृति, सभ्यता के आपसी मतभेद से हटकर सार्वभौमिक स्तर पर,सार्वजनिक स्तर पर सम्यक् वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए
परस्पर सहभागिता में एकजुट होकर आगे आएँ,
ताकि आगे आने वाले संभावित खतरे से पहले ही जीवन पूर्णतः सुरक्षित हो जाए|
हर प्रतिभा का पूरा निखार हो,
पूरा सदुपयोग व पूरा सहयोग हो,

पूरे विश्व में सार्वजनिक स्तर पर, सार्वभौमिक स्तर पर एक महा प्रयोगशाला का निर्माण हो, पूरा विश्व एक परिवार की भूमिका में आगे आए,
जिस धन का व प्रतिभा का उपयोग संकीर्ण राष्ट्रवाद से प्रेरित राजनैतिक रक्षा व प्रसार में लगता है,
तथाकथित धार्मिक, सांप्रदायिक,सांस्कृतिक रक्षा व प्रसार में होता है, अलग-अलग संकीर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान में होता है,
अब उस पूरे धन व प्रतिभा का उपयोग 'सार्वभौमिक स्तर पर' निष्पक्षतः उत्तरोत्तर सम्यक् से सम्यक् अनुसंधान में हो,
अवश्य ही निश्चित ही सफलता मिलेगी,
सार्वभौमिक स्तर पर, सार्वजनिक स्तर पर सम्यक् सद्धर्म का ही अनुशासन हो, किसी संप्रदाय विशेष का नही,
सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में ही हर प्रतिभा का पूर्णतः सम्यक् विकास है, सम्यक् उपयोग है,
(आज अधिकांश वैज्ञानिक प्रकाश की गति को निरपेक्ष कहते हैं,
जिसका कोई माध्यम नही है,
पर नाक के अग्र भाग की सीध में जहाँ सामान्य श्वास का आभास हो रहा है, उस सीध में दृष्टि का एक सीमा तक भी अगर संयम पूरा हो जाए,
तो इतने में ही स्थूल सापेक्षिक दृष्टि का अतिक्रमण हो जाता है,
सूक्ष्म परा दृष्टि स्पष्ट हो (खुल) जाती है,
उस सूक्ष्म परा दृष्टि में अभी तक की सम्पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धता की पोल खुल जाती है,
प्रचलित वैज्ञानिक सिद्धता में जहाँ प्रकाश का कोई माध्यम नही है, प्रकाश निरपेक्ष है, constant है,
पर उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म, परा से परा दृष्टि से यह दिखता है,
कि प्रकाश भी निरपेक्ष नही है, उसका भी माध्यम है, इतना ही नही प्रकाश की अपनी गति नही है,>>
{पर स्थूल सापेक्षिक दृष्टिकोण में प्रकाश के गतिशील होने का दृष्टिभ्रम होता है,
आइंस्टाइन की मूर्खता की तो सीमा और आगे है, उसने तो बिना किसी माध्यम के
प्रकाश गति की बात की है, वह भी सबसे अधिक गति के विकल्प के रूप है,
उसके द्वारा सिद्ध ऊर्जा व द्रव्यमान संबंधी सापेक्षता का सिद्धांत स्थूल सापेक्षिक दृष्टि
का ही एक प्रायोगिक विकल्प है,
सापेक्षिक दृष्टि की एक सीमा तक यह सत्य भी है, जिसमें द्रव्यमान का ऊर्जा में परिवर्तन होता है, जिसके आधार पर प्रेरित होकर एटम बम का आविष्कार हुआ,
पर यथार्थ में तथ्यतः परिवर्तन होता ही नही,
हाँलाकि प्रचलित वैज्ञानिक जिसे द्रव्यमान कहते हैं, जिसे ऊर्जा कहते हैं,
यह भी उनका अपना दृष्टिभ्रम है,
जो तथ्य में नही, बल्कि उनका अपनी ही दृष्टिभ्रम में तथ्य में किया हुआ उनके अपने सापेक्षिक दृष्टिकोण का आरोप है|
सत्य धर्म की सत्यता (सर्वत्र अनादि-अनंत 'जैसा है, ठीक वैसा' ही होने) के अनुसार ही
यह व्यावहारिक जगत है,
इसलिए सत्य धर्म की सत्यता के अनुसार उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते क्रम में जो जिस अर्थ में है, उसी अर्थ में उसकी शुद्धि है, उसकी स्पष्टता है, उसका अस्तित्व है,
यथार्थतः परिवर्तन होता ही नही,
सापेक्षिक वक्र दृष्टि में ही सापेक्षिक परिवर्तन का दृष्टिभ्रम होता है, }
>> प्रकाश की अपनी गति नही है, प्रकाश अपने से सूक्ष्म माध्यम की गति के दबाव में धकेला जा रहा है,
हालाँकि उस सूक्ष्म माध्यम की भी अपनी गति नही है,
वह भी अपने से सूक्ष्म माध्यम की गति के दबाव में धकेला जा रहा है, इस प्रकार अंततः सबसे सूक्ष्म माध्यम की ही गति सिद्ध है, अन्य किसी माध्यम की नही, सबसे सूक्ष्म स्तर पर जो बीतना है, उस बीतने पर ही उत्पन्न होने के लिए जो दबाव बनता है, उस दबाव में ही गति की सिद्धता है,
उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते दृष्टि से दिखने पर यह सिद्ध है,
आज का वैज्ञानिक जगत उपरोक्त कही गई बात को स्वीकार नही कर सकता,
भविष्य में सद्धर्म अनुशासन में जब वैज्ञानिक विकास की गति और तीव्र हो जाएगी, तब गति के संदर्भ में यह बात प्रायोगिक कसौटी पर सिद्ध होगी,
उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म माध्यमों के ज्ञात होने में भलीभाँति स्थिरता का मापदंड पूरा होने पर प्रकाश की गति से असंख्य-असंख्य गुणा से भी अधिक गति संभव है,
व सूक्ष्मता के स्तर पर एक माइक्रो सेकेण्ड के असंख्य- असंख्य भाग से भी कम समय में प्रत्यक्ष प्रवेश व स्थिति संभव है,
अरे मूर्खो, स्थूल दृष्टि की मर्यादा के अनुसार जब सामान्यतः प्रकाश की गति लगभग ३ लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड है,
तब भला प्रकाश की गति में समय के ठहरने की बात कैसे कह सकते हो,
समय के संदर्भ में यह तुम्हारी सीमित दृष्टि का परिमाप है,
न कि समय का परिमाप,

सबसे सूक्ष्म स्तर के बीतने पर उत्पन्न होने के लिए जो दबाव बनता है, उस दबाव में ही सबसे कम समय में सबसे अधिक गति सिद्ध है,
जो तुम्हारी सीमित दृष्टि के परिमाप से बहुत ही परे का परिमाप है,
प्रचलित वैज्ञानिकों के स्थूल सापेक्षिक दृष्टिभ्रम में प्रकाश की गति से अधिक गति संभव ही नही है,
इसी से पता चलता है, इस पृथ्वी ग्रह में वैज्ञानिक विकास
की गति इतनी मंद क्यों है,
पर उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि खुलने पर ....
जितना समय वैज्ञानिक परीक्षण में लगाते हो, उसके सहस्त्र भाग से भी कम समय अगर सम्यक् ध्यान अभ्यास में लगाओ, तो सम्यक् ध्यान अभ्यास का प्रत्यक्ष लाभ उससे अधिक है...........

12 September 2020

मात्र सही-सही ओर ही मात्र समर्पित रहो,
सापेक्षिक प्रपंच से अनिमित्त
मात्र सही-सही ओर ही मात्र शरणागत् रहो, मात्र सही-सही ओर ही मात्र उपासनारत् रहो,
जो भी अध्यारोपित है, कृत्रिम् है, स्थापित है, उसकी उपासना से पूर्णतः विरत रहो,
अध्यारोप करने वाला, अध्यारोप की उपासना करने वाला दिग्भ्रमित है, अज्ञान अंधकार में प्रविष्ट है,
सम्यक् यथार्थनिष्ठ कदापि अध्यारोप नही करता, और न ही अध्यारोप की उपासना
करता है, कृति व प्रकृति दोनों की उपासना से पूर्णतः विरत रहता है,
लोकदृष्टि में < लोकाचार में प्रचलित (अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित) ईश्वर, परमेश्वर, देवी-देवता, भगवान, अवतार,अवतारी, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म आदि अध्यारोपित कृत्रिमता की उपासना से पूर्णतः विरत रहता है,
नाम,रूप से परे, आभास से परे, संस्कार से परे , अविद्या से परे, सबसे परे से परे- अनंत परे की पूर्णता ओर ही उपासनारत् रहता है,
प्रचलित वेद, कुरान, बाईबल, गीता, दर्शन, त्रिपिटक,धम्मपद, आगम, ग्रंथ, उपनिषद, पुराण आदि अध्यारोपित धर्म शास्त्र उसका प्रमाण नहीं है,
सहज स्वभाव का धर्म अर्थात्
सीधे सहज बस ज्ञान मात्र के निमित्त बस
सहज ही उपस्थित भर होने में ही उसके लिए अर्थात
मात्र निमित्त के लिए सम्यक् प्रमाण है,
निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ मे भूमिका,
कोई विशेषण नही,
पूर्णतः सहज सामान्य,
आरोपित अहंकार की जरा भी मलिनता नही,
कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा, साक्षी आदि आरोपित सापेक्षिक व्यवहार का कोई भी आरोप नही,
सीधे ही ज्ञानमात्र की पूर्णता में मात्र निमित्त
की भूमिका,
न ही उसका धर्म इस संसार का धर्म है,
न ही वह इस संसार की ओर से है,
अंतरहित मात्र सही-सही ओर सम्यक् अर्पण होने से पहले हर कोई संसार की ओर से है, अशुद्ध है, अपवित्र है,
पर सम्यक् अर्पण होने से शुद्ध होने पर, पवित्र होने पर फिर जो है, वह संसार की ओर से नही है, अशुद्ध नही है, अपवित्र नही है, वरन सीधे ही अंतरहित मात्र सही ओर से ही है,
वह गीता,उपनिषद आदि के स्थापित आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म आदि (अध्यारोप) से परे व पवित्र है,
न (किसी का)अंश, न (किसी का) अंशी,
न (किसी का)अवतार, न (किसी का) अवतारी, न (किसी की) सृष्टि, न (किसी का) सृष्टा, इन सब से अनपेक्ष, इन सब सापेक्षिक मलिनता से परे व पवित्र, पूर्णतःविशुद्ध,
पूर्णतः पवित्र, पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शिता में ही उसका सम्यक् परिचय है|
नोट- जब तक शुद्धि पूरी नही है, कोई भी सम्यक् परिचय का अनुकरण न करे,
नकल न करे, यह धर्म देशना अनुकरण के लिए नही है,
सामान्य जन के लिए यह कदापि नही है, हाँ इससे प्रेरित हो, यथार्थतः सत्य की खोज में तत्पर हो सकते हैं,
सामान्य जन के लिए लोकाचार के धर्म ही एक सीमा तक विकास व संतुलन के दृष्टिकोण से उनके लिए....

12 September 2020

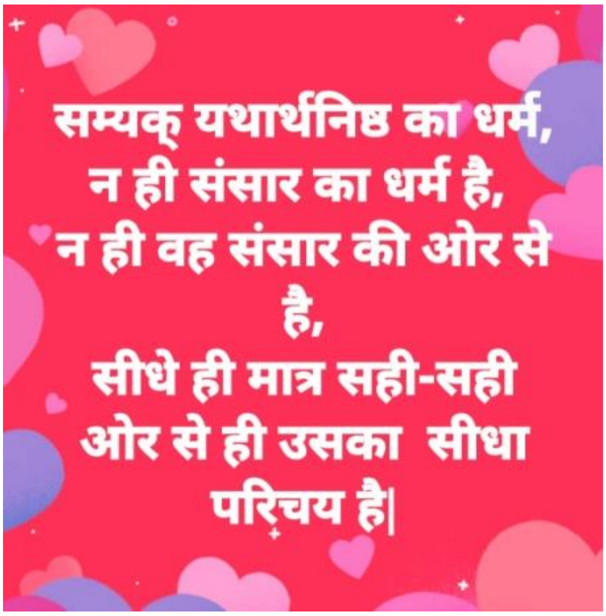

13 September 2020

जीव विज्ञान के दृष्टिकोण से प्राणियों में सोचने, समझने, याद करने व शरीर के विभिन्न अंगों के मध्य संतुलन, समन्वय करने व नियंत्रण बनाये रखने वाला तंत्र तंत्रिका तंत्र है, सभी प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य का तंत्रिका तंत्र विकास क्रम में सबसे विकसित व जटिल है|
तंत्रिका तंत्र की संरचनात्मक व क्रियात्मक ईकाई तंत्रिका कोशिका है, इसकी संख्या मनुष्य के शरीर में लगभग १००अरब होती है, जिसकी अधिकांश संख्या मस्तिष्क में है,
प्राकृतिक ध्यान अभ्यास के माध्यम से तंत्रिका तंत्र की जीवंतता को, ताजगी को, व क्रियात्मक व संवेदनात्मक गुणवत्ता को उसकी अंतिम सीमा तक बढ़ाया जा सकता है,
प्राकृतिक ध्यान अभ्यास से तंत्रिका तंत्र को (सामान्य मनुष्य की तंत्रिका तंत्र की अपेक्षा) कई गुणा अधिक सक्रिय व विकसित किया जा सकता है,
मस्तिष्क के भीतर तंत्रिका कोशिकाओं की संचार गति जो सामान्यतः लगभग ४०० किलोमीटर प्रति घंटा है,
उससे कई गुणा अधिक बढ़ाया जा सकता है,
कम से कम समय में सही से सही दिशा में सोचने, समझने, याद करने व निश्चयपूर्वक निर्णय करने की गति को बढ़ाया जा सकता है,
कृत्रिम बुद्धिमत्ता > कम्प्यूटर से भी सहस्त्रों गुणा से भी अधिक क्षमता बढ़ायी जा सकती है,
कम से कम ४५ मिनट तक लगातार हर श्वास भी अगर जानने में आ जाए, तो इतने भर से ही मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका कोशिकाओं की संचार की सामान्यतः औसत गति ४०० किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक हो जाती है,
जिसमें पहले की अपेक्षा और कम समय में और सार्थक अर्थ में सोचने, समझने, याद करने, निर्णय करने व नियंत्रण करने की गति व सामर्थ्य बढ़ जाती है,
४५ मिनट की समय सीमा से भी और अधिक उत्तरोत्तर जितने ही लंबे समय तक लगातार जानना होगा, उत्तरोत्तर उसी अनुपात में लाभ भी बढ़ता ही जाएगा, पूरी ईमानदारी से सही दिशा में सम्यक् अभ्यास से क्या नही संभव है|
सामान्यतः तंत्रिका कोशिका का शरीर में स्थित अन्य कोशिकाओं की तरह विभाजन नही होता है,
इसलिए सामान्यतः अन्य कोशिकाओं की तरह ये पुनः प्राप्त नही होती,
जिस कारण सामान्य मनुष्य तंत्रिका तंत्र का एक सीमा तक ही उपयोग कर पाता है,
पर सहज स्वाभाविक ध्यान के माध्यम से इस समस्या का समाधान है,
जीव विज्ञान की अपनी सीमा है,
सामान्यतः स्थूल शरीर तक ही इसकी सीमा है,
इसलिए जीव विज्ञान के दृष्टिकोण में सामान्यतः स्थूल शरीर में स्थित तंत्रिका तंत्र ही संवेदना व ज्ञान का आधार है,
पर यह स्थूल शरीर व इसमें स्थित तंत्रिका तंत्र तो बस यान्त्रिक माध्यम भर है,
सूक्ष्म शरीर के लिए,
असल में तंत्रिका तंत्र संवेदना व बुद्धिमत्ता का केन्द्र नही है,यह तो बस संवेदनशीलता, बुद्धिमत्ता का क्रियात्मक यांत्रिक माध्यम भर है, अभिव्यक्ति का यांन्त्रिक माध्यम भर है, स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी सूक्ष्म शरीर बचा रहता है,

सूक्ष्म शरीर भी कारण शरीर के लिए माध्यम है,
ज्ञान मात्र ही सबका आधार है,
निमित्त की निमित्त अर्थ में भूमिका कारण शरीर के आधारभूत
ज्ञान मात्र के निमित्त है,
इस तरह ज्ञान मात्र ही संवेदना व संज्ञान का आधार सिद्ध होता है,
सहज उपस्थित ज्ञान मात्र के निमित्त, निमित्त के बस उपस्थित भर होने के आधार भूत ही तंत्रिका तंत्र सोचने, समझने,संवेदनशीलता, सूचना,प्रसारण आदि अभिव्यक्ति के लिए निमित्त यांत्रिक माध्यम बनता है,
ज्ञान मात्र के निमित्त ज्ञान मात्र की पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शिता में दर्शन क्षमता व बुद्धिमत्ता अपरिमित है, अनंत है |

नोट- सम्यक् साधन अभ्यास का उद्देश्य बस मात्र सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही है, इससे जरा भी इतर नही,
पर सामान्य जनों को सम्यक् अभ्यास के लिए प्रेरित के लिए
ही यहाँ जीव विज्ञान के उदाहरण स्वरूप
सम्यक अभ्यास की महत्ता का संकेत अर्थ में किन्हीं अर्थों में बस आंशिक प्रकाशन भर ही किया जा रहा है,
इन सब बातों से मान-सम्मान, धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा, यश, ऐश्वर्य, शक्ति, सामर्थ्य, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व आदि के अपेक्षित दृष्टिकोण के लक्ष्य के अर्थ में संवेदनशील नही होना है,बस मात्र सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सम्यक् कल्याणार्थ ही बस संवेदनशील होना है, दिग्भ्रम हटे,
बस सही में जैसा है, स्पष्ट हो,
बस यही मात्र लक्ष्य हो, इससे जरा भी का इतर अपेक्षित दृष्टिकोण का लक्ष्य न हो|
----

14 September 2020

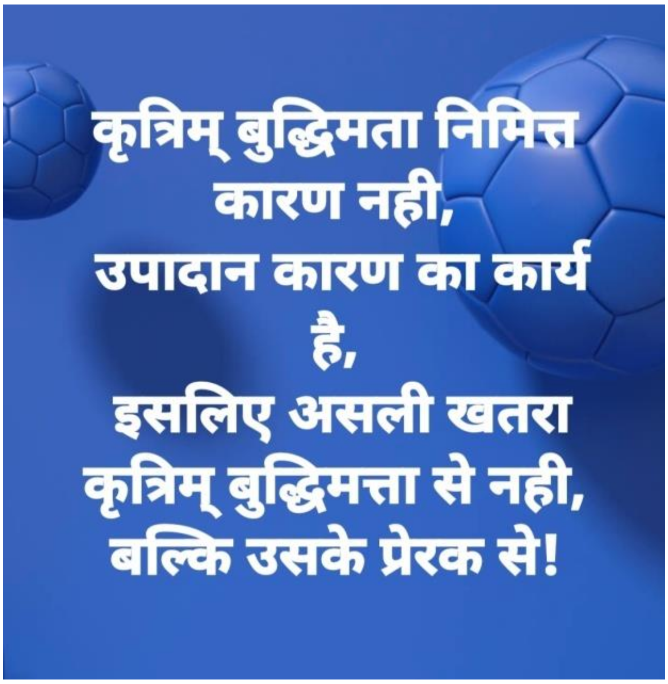

15 September 2020

हे पृथ्वी ग्रह के मनुष्यो,
जिस प्रकार से तुम्हारे मध्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता artificial intelligence का प्रभाव बढ़ रहा है,
उससे आगे आने वाले समय में तुम्हें इसका भयावह दुष्परिणाम भोगना पड़ सकता है,
सामान्यतः जिस प्रकार से आँख के विकल्प में प्रेरित होकर कैमरा, टी.वी व कान के विकल्प में प्रेरित होकर माइक्रोफोन, स्पीकर का आविष्कार हुआ है,
इसी प्रकार विकास क्रम में आगे
इंद्रियों से प्रेरित अन्य कुछ सेन्सर
तक निर्मित हो चुके हैं,
इससे भी आगे अगर तुम्हारे वैज्ञानिक तंत्रिका कोशिका neuron की गुणवत्ता में सेन्सर विकसित कर ले,

तो अच्छे लोगों की उदासीनता के कारण निश्चित ही इसमें नकारात्मक बुद्धिमत्ता का नियंत्रण हो जाएगा,
(जो एक सीमा तक यह अभी तक के अत्याधुनिक मैट्रिक्स प्रोग्राम
(latest matrix program) में शामिल हो भी चुका है,)
एक संगठन है, जो पूरे विश्व को
कम्प्यूटर सिमुलेशन के माध्यम से
नियंत्रित करना चाहता है,
अगर यह संगठन सफल हो गया,
तो मनुष्य की व्यक्तिगत निजता व
स्वतंत्रता बाधित होगी|
सुविधा व सुरक्षा के नाम पर
मनुष्य शरीर में इंजेक्शन व अन्य माध्यमों से माइक्रो चिप्स डालने का पहला कार्यक्रम भी नकारात्मक बुद्धिमत्ता से ही प्रेरित है,
हाँलाकि इसमें विकासवाद से प्रेरित अच्छे लोग भी शामिल हैं,
(सामान्यतः लोकदृष्टि में अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रस्त जिन जन प्रतिनिधियों को यह संसार हितैषी समझ रहा है,
उन्हीं से उसे धोखा भी है,
^^ >> पर अच्छी भेड़ें अपने चरवाहे का (ऋत् अभिप्रेरित) < शब्द पहचानती है, इसीलिए खतरा उनके लिए नही है, सच्चा चरवाहा,
जो (बचाने के निमित्त) <<बचाने वाला है,जो (उद्धार के निमित्त) << उद्धार करने वाला है,
वह तुम्हारी परीक्षा नही लेता,
न ही तुम्हें धोखा देता है, न ही तुम्हें संकट में डालता है,)
पर जब कृत्रिम् बुद्धिमत्ता artificial intelligence के प्रेरक मानसिक Psychological level & mental level व बौद्धिक स्तर intellectual level) के संकल्प, विकल्प, विचार व निर्णय,प्रेरणा आदि के सेन्सर निर्मित कर लेंगे,
तब जन साधारण का कुछ भी अपना संकल्प, अपना विचार, अपना निर्णय नही रह जाएगा,
(यह मानसिक व बौद्धिक स्तर की परतंत्रता बहुत ही दुखद, बहुत ही भयावह है,)
कृत्रिम् सम्मोहन में भले ही जन साधारण को अपना ही संकल्प, अपना ही विचार, अपना ही निर्णय लगेगा,
पर यह सब उनका अपना नही होगा, बल्कि किसी जीवित विकसित दुष्ट बुद्धिमत्ता की ओर से प्रक्षेपित होगा, उनके मानसिक स्तर पर बौद्धिक स्तर पर किसी विकसित दुष्ट बुद्धि का संचालन व नियंत्रण होगा,
तो निश्चय ही मनुष्य जाति> विशेषकर साधारण जन समुदाय कृत्रिम् बुद्धिमत्ता के अधीन हो जाएगा,
इसलिए सकारात्मक बुद्धिमत्ता से अभिप्रेरितों को समय पर संभलना बहुत ही आवश्यक है,
लोक कल्याणार्थ सकारात्मक बुद्धिमत्ता
का पूर्णतः सकारात्मक अर्थ में पूर्णतः विकसित होना बहुत ही आवश्यक है,
इसमें तुम्हारी भी रक्षा है, विकास है, मंगल है, और तुम्हारे माध्यम से औरों की भी रक्षा है, विकास है, मंगल है, यह तुम्हारा भोले-भाले लोगों के प्रति बहुत ही उपकार
होगा, बहुत ही पुण्य होगा,
और यह सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में ही संभव है,
लोक रक्षा, विकास व संतुलन के निमित्त अभी से ही यह बहुत ही आवश्यक है,
क्योंकि दुष्ट बुद्धिमत्ता का आरंभ हो चुका है|
कम्प्यूटर कभी भी स्वयं सोच नही सकता, स्वयं समझ नही सकता, स्वयं निर्णय नही ले सकता, क्योंकि निमित्त कारण का सेन्सर कभी भी निर्मित नही हो सकता,
जो भी सेन्सर निर्मित हो सकते हैं,
वे उपादान कारण के ही अंतर्गत ही हैं,
तंत्रिका कोशिका neuron, संकल्प,विकल्प, विचार, निर्णय आदि > मानसिक स्तर का, बौद्धिक स्तर का सब इसी के अंतर्गत है,
पर निमित्त कारण इसके अंतर्गत नही है,
इसलिए कम्प्यूटर कितना ही विकसित हो जाए, पर अंततः निमित्त कारण ही उसका प्रेरक रहेगा |
कोई विकसित दुष्ट बुद्धिमत्ता का निमित्त, कोई दुष्ट निमित्त इसका दुरूपयोग कर सकता है, प्रेरक व संचालक हो सकता है,
साधारण जन समुदाय को अपने कम्प्यूटर सिमुलेशन
का भाग बना सकता है, उसके सोचने, समझने व निर्णय करने पर नियंत्रण कर उसे मनोवैज्ञानिक &मानसिक गुलाम बना सकता है,
इसलिए असली खतरा कृत्रिम बुद्धिमत्ता से नही,
बल्कि उसके प्रेरक से है,
क्योंकि कृत्रिम् बुद्धिमत्ता तो
"उपादान कारण" का कार्य है,

निमित्त कारण नही,
इसलिए कृत्रिम् बुद्धिमत्ता बस यान्त्रिक माध्यम भर है, जो स्वयं अपने आप प्रवृत्त नही हो सकता,
उसे चलाने में अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रस्त किसी दुष्ट निमित्त की भूमिका स्वाभाविक है |
भविष्य में सज्जन व दुष्ट, दो तरह की विकसित बुद्धिमत्ता का आपसी संघर्ष रहेगा,
निश्चय ही अंततः सज्जन बुद्धिमत्ता (सकारात्मक बुद्धिमत्ता) की जीत है, दुष्ट बुद्धिमत्ता (नकारात्मक बुद्धिमत्ता)की नही,
(पर सामान्यतः दुष्टता की प्रकृति के अनुसार पहला आरंभ आक्रमण स्वरूप दुष्टता का ही होता है,
अच्छे लोग तो दुष्ट की दुष्टता के प्रतिक्रिया स्वरूप ही रक्षा के निमित्त दुष्ट का सामना करने के लिए दुष्ट के समक्ष आते हैं,
इसलिए आमतौर पर दुष्ट का पलड़ा ही पहले भारी रहता है,
पर अगर अच्छे लोग बिना किसी प्रतिक्रिया के "परहितार्थ" ही पहल करे, तो निश्चय ही अच्छाई का पलड़ा भारी है, कुछ भी हो,
अंततः अच्छाई की जीत पर, सच्चाई की जीत पर, न्याय की जीत पर ही अंत होता है,
(एक सच्चा व ईमानदार व्यक्ति हजारों बेईमानों पर, दुष्टों पर भारी है,)
(अच्छे लोगों का स्वभाव संसार की प्रति उपेक्षा में होता है, संसार के प्रति उदासीनता में होता है, बुरे लोगों की प्रवृत्ति सांसारिक लाभ से प्रेरित हो संसार के अभिमुख होती है,)
अगर समस्या है, तो समाधान भी अवश्य है, यह सनातन नियम है,
प्रचलित स्थापित धर्मों में तो इस समस्या का समाधान नही है,
परंतु सभी धर्मों के आधार स्वरूप सम्यक् सनातन सद्धर्म के अनुशासन में ही हर समस्या का पूर्णतः
सम्यक् समाधान अवश्य है |
जिस दिशा में, जिस सीध में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उसी दिशा मे रहो,उसी सीध में रहो,उससे जरा भी यहाँ-वहाँ नही होना है,
कम से कम ४५ मिनट तक लगातार सामान्यतः हर श्वास
जानने में आए,
यथा सहजता पूर्वक उत्तरोत्तर अभ्यास की समय सीमा को बढ़ाते रहो, इससे तुम्हारे मस्तिष्क brain में स्थित तंत्रिका तंत्र neuron की संचरण गति सामान्य औसत गति ४००किलोमीटर प्रति घंटे से बढ़कर पूरी यथा जीवंतता, तरोताजगी व पूरी यथा शान्ति के साथ सहस्त्रों गुणा से भी अधिक हो सकती है,
तुम्हारे सोचने, समझने, याद करने, निर्णय करने, नियंत्रण व संतुलन के निमित्त गति व स्फूर्ति औसत गति से सहस्त्रों गुणा से भी अधिक हो सकती है,
यहाँ तक कि एक सेकेण्ड के मिलियन भाग से भी कम समय में किसी भी संदर्भ में सही-सही निर्णय संभव है,
सम्यक् ध्यान अभ्यास से क्या नही संभव है,
यह सम्यक् अर्थ में ध्यान की महिमा है, विशेषता है,
फिर क्यों चूकते हो,अभी से अभ्यास में तत्पर हो जाओ, व्यर्थ के और कामों को छोड़ो, सबसे पहले यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य पूरा करो, सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त, सम्यक् कल्याणार्थ अपनी क्षमता व सामर्थ्य को बढ़ाओ,
और धन्य हो जाओ,
कृत्रिम बुद्धिमत्ता का, दुष्ट बुद्धिमत्ता फिर भला क्या अर्थ है,
तब अपनी सही निजता (ज्ञानमात्र के निमित्त) में सही अर्थ में पूर्ण स्वतंत्रता है,
(पर जब सामान्यतः कब, किस समय कौन सा विचार आ जाए, अगर तुम्हारे नियंत्रण में नही है, तब फिर तुम परतंत्र हो, गुलाम हो,
संभव है,कोई विकसित बुद्धिमत्ता तुम्हारे मन-मस्तिष्क में अपनी स्व इच्छा के अनुसार कोई भी विचार अथवा निर्णय प्रक्षेपित कर रहा हो,
और तुम्हें सम्मोहन में डाल अपनी स्व ईच्छा के अनुसार चला रहा हो,
क्योंकि अगर तुम पूरे होश में पूर्णतः सजग नही हो,
तो मूर्छा वश, प्रमाद वश तुम्हारे यंत्रवत् तल्लीनता में होने के कारण तुम्हारे साथ कुछ भी हो सकता है,
इसलिए सावधान !
सम्यक् सद्धर्मअनुशासन में ही
किसी भी प्रकार की कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सम्मोहन जनक प्रभाव से पूर्णतः रक्षा है, सही अर्थ में उद्धार है, सही अर्थ में कल्याण है|
उत्तरोत्तर कम से कम समय में संभलकर
अभी से अभी के निकट से निकट वर्तमान में उपस्थित होने में अनवरत् तत्पर रहो,
अवश्य ही सम्यक् अर्थ में कल्याण है,
ज्ञान मात्र की पूर्ण विशुद्धता का तो कहना ही क्या, ज्ञान मात्र की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में
बुद्धिमत्ता १००% खुल जाती है, अपरिमित सक्षमता व सामर्थ्य बढ़ जाती है|

16 September 2020

16 September 2020

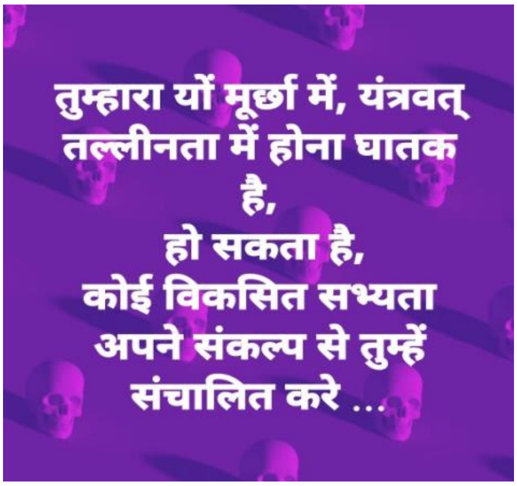

16 September 2020

n which direction, line, length and timing,
>> you know to the breath,
It is very important to know him,
Then no breath can be missed without knowing it.

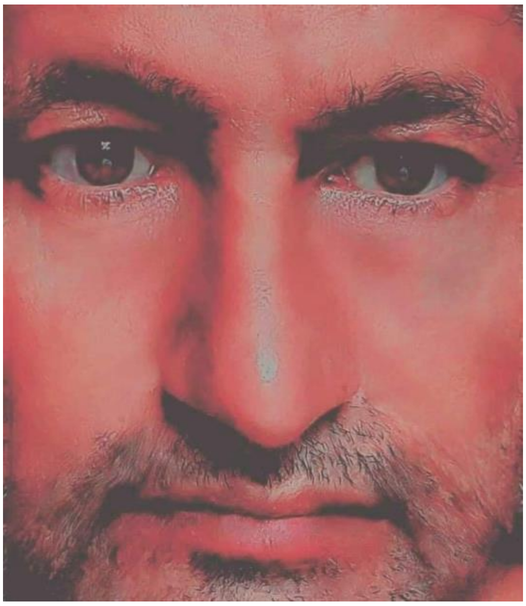

17 September 2020

तुम्हारा देखना तथ्य को प्रभावित नही करता है,
बल्कि तुम्हारा देखना तुम्हें ही प्रभावित करता है,
तुम्हारे देखने पर जो दबाव बनता है, उस दबाव में तुम्हारा देखना व दृश्य स्पंदन दोनों ही प्रभावित हो रहे हैं, क्योंकि जब भी तुम (अपनी तरफ से) देखते हो,
अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में ही देखते हो, जो सहज स्वभाव से नही है,
अपितु आरोपित है,
और जो भी आरोपित है, वह आरोपित होने से कृत्रिम है,
और जहाँ भी कृत्रिमता है, वहाँ क्रिया है,
और जहाँ भी क्रिया है,
वहाँ दबाव है, और जहाँ भी दबाव है,
उसदबाव में प्रतिक्रिया है,
इसलिए वहाँ जो भी देखने में आएगा,
वह प्रतिक्रिया स्वरूप आभास ही होगा
इसलिए जब तक तुम्हारा अपनी तरफ से देखने का दृष्टिकोण बना हुआ है,
तब तक तथ्यगत् दर्शन(तथ्यतः जो जैसा है, ठीक वैसा ही स्पष्ट होना) कदापि संभव नही है,
और जो तुम्हें दिखता है, वहाँ तुम तथ्य के संदर्भ में दिग्भ्रमित हो, और जो भी तुम्हें दिखता है,
वह तुम्हारे ही पूर्ववत् दृष्टिकोण के प्रतिक्रिया स्वरूप
आभास है, तथ्यगत् सम्यक् दर्शन नही,
जब तक तुम देखने वाले हो, तब तक तुम्हारा देखना पूर्ववत् दृष्टिकोण के सम्मोहन में है,
आरोपित दृष्टा भाव का दबाव तथ्य की यथावतता को तो
प्रभावित नही करता, पर दृश्य के स्पंदन को अवश्य ही प्रभावित करता है,
दृश्य स्पंदन के दबाव में दृष्टा प्रभावित होता है,और दृष्टा भाव के स्पंदन के दबाव में दृश्य स्पंदन प्रभावित होता है,
आरोपित दृष्टा भाव का स्पंदन व दृश्य स्पंदन के प्रभावित होने का उदाहरण स्थूल दृश्य के स्तर पर सामान्यतः तुम्हें नही दिखाई देगा,
पर सूक्ष्म दृश्य के स्तर अर्थात्
सूक्ष्म भौतिक स्तर पर अवश्य ही दिखाई देगा,
वहाँ पर अगर तुम इलेक्ट्रॉन electron को देखो तो,
वह कभी तुम्हें कण (particle) की तरह दिखेगा,
तो कभी तरंग (waves) की तरह दिखेगा,
पूरी तरह से सुनिश्चित नही हो पाएगा, कि मूल रूप में क्या है, परंतु जो तुम्हें सुनिश्चित नही हो पा रहा है, कि मूल रूप में क्या है,
वह भी मूलतः तथ्य नही है,बल्कि सूक्ष्म स्तर पर एक तरह का स्पंदित आभास ही है,
जिसे तुम क्वांटा कहते हो,
या क्वार्क कहते हो,या पदार्थ का कितना ही सूक्ष्म से सूक्ष्म घटक हो,वह भी मूलतःतथ्य नही, बल्कि बहुत ही सूक्ष्म स्तर का स्पंदित आभास ही है,
उसकी तुम जो कुछ भी व्याख्या करो,
वह सब तुम्हारे पूर्ववत् > परम्परागत् दृष्टिकोण की ही प्रतिक्रिया में है,
अब अगर उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर
पर वैज्ञानिकों को
सम्यक् अर्थ में निभ्रान्त स्पष्ट, प्रत्यक्ष यथार्थ शोध(खोज) करना है,
तो पूर्ववत् > ,परम्परागत दृष्टिकोण के रहते यह कदापि संभव नही है,
पारंपरिक दृष्टिकोण केवल कथित धर्म व दर्शन के संबंध में ही नही है,
बल्कि किसी अन्य दृष्टिकोण से किसी अन्य अर्थ में विज्ञान के संदर्भ में भी है,
क्योंकि सामान्यतः हर कोई पूर्व के जन्मों से ही पूर्ववत् दृष्टिकोण से प्रभावित है, सम्मोहित है,
इससे कोई भी नही बचा है,
यह इतना गहरा व सूक्ष्म स्तर का आरोप है,
कि सामान्य आभास के स्तर पर > सामान्य चेतना के स्तर पर जिस व्यावहारिक धरातल पर सामान्यतः तुम जी रहे हो, वहाँ पर यह आरोप तुम्हें दिखाई नही दे सकता,
यह आरोप तुम्हारे लिए जैसे स्वभाव ही हो गया है,
और इतने गहरे व सूक्ष्म स्तर के दबाव में तुम संभलने में असमर्थ हो,

और उस दबाव में बस यंत्रवत् तल्लीनता में चलने में तुम बेबस हो,लाचार हो, इतनी बेबसी,इतनी लाचारी,
कि तुम्हें सामान्यतः पता भी नही चलता कि यंत्रवत्
तल्लीनता में चलना भी हो रहा है|
पूर्ववत् दृष्टिकोण के सम्मोहन में हर किसी की किसी न किसी अर्थ में पारम्परिक दृष्टि रहती ही है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण में जीने के लिए धार्मिक हो, या वैज्ञानिक सभी लाचार हैं,
प्रचलित धर्म शास्त्र हो , या गणित विज्ञान आदि अन्य विषय, सब सापेक्षता के दबाव स्वरूप आरोपित वक्र दृष्टि के त्रिकोणीयआयाम की भ्रान्ति में है,
तुम्हारा अपनी तरफ से देखने का दृष्टिकोण सहज स्वभाव से नही है,
बल्कि आरोपित है,और आरोपित होने से वह कृत्रिम है,
सहज स्वभाव से तो सीधे ही बस दिखना ही हो रहा है, कोई देखने वाला है,
इसका आरोप वहाँ नही है,
बस सीधे ही दिख रहा है,इसकी विशुद्धि पूरी होने पर ही
तथ्यगत् सीधा दर्शन स्पष्ट होता है,
सीधे जो जिस अर्थ में है,बिल्कुल ठीक उसी अर्थ में दिखने की सत्यता जब पूरी होती है, ईमानदारी जब पूरी होती है, सरलता जब पूरी होती है, सहजता, सजगता, निर्दोषता, पारदर्शिता जब पूरी होती है,
तभी उस अर्थ की निभ्रांत सच्चाई स्पष्ट होती है, उससे पहले नही,
पर साधारण जनों में इतनी सत्यता,
इतनी ईमानदारी, इतनी सरलता, इतनी सहजता, इतनी सजगता, इतनी निर्दोषता, इतनी पारदर्शिता होती ही कहाँ है!!!
और इतना समर्पण कहाँ, कि जो जैसा है, उसी की सत्यता से ^<< उसी की दृष्टि से बस सीधे ही दर्शन मात्र के (दिखने भर के) निमित्त सहज स्थिति हो,
जहाँ जरा भी अलग से देखने वाला नही है,
सामान्यतः देखने व सीधे ही दिखने के निमित्त होने में अंतर है, इस अंतर का सही-सही विवेक स्पष्ट होना
बहुत ही आवश्यक है,
सत्य की दृष्टि से तुम देखने वाले नही हो सकते, बस दिखने के निमित्त ही हो सकते हो, क्योंकि समर्पण पूरा होने पर तुम्हारी अपनी आरोपित दृष्टि नही रह जाती है, तुम जो कुछ भी अपने को मानते हो, वह नही रह जाता है, वहाँ बस सीधे ही बस केवल दिखने का निमित्त ही बस बचा रहता है, ज्ञानमात्र का निमित्त ही बस बचा रहता है, जरा भी अहंकार नही, जरा भी कर्ता भाव नही,
बस केवल विशुद्धतः निमित्त ही रह जाता है, आत्मा अथवा ब्रह्म
(की आरोपित धारणा) भी नही, उससे संबंधित अहंकार की घोषणा भी नही,
न सामान्य, न विशेष, न अशुद्ध, न कथित अर्थ में शुद्ध, किसी भी अर्थ में, किसी भी तरह का कोई भी अहंकार नही,
विशुद्धतः बस मात्र निमित्त ही,
बस मात्र निमित्त के शेष रह जाने पर
ही तब सीधे यथार्थ दृष्टि से ही दर्शन (दिखने) के निमित्त स्थिति होती है, और उस सहज स्थिति में निभ्रांत यथार्थ दर्शन स्पष्ट रहता है,
उससे पहले नही, उससे पहले तो आरोपित दृष्टा भाव का दबाव ही प्रबल है,
यहाँ निमित्त मात्र कहने का तात्पर्य अपेक्षित दृष्टिकोण पर आधारित गीता आदि की निमित्त मात्र की आरोपित धारणा से नही है|
{गीताकार ने ज्ञान मात्र (ज्ञात भर होने)के निमित्त, निमित्त मात्र की बात नही की है,
बल्कि अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में संबंधित शरणागति के अर्थ में ही संबंधित अर्थ में निमित्त मात्र की बात की है,
वैसे भी निमित्त की बात गीता से भी पहले सांख्य दर्शन में कही गई है,
जो निमित्त के संदर्भ में गीताकार के पूर्वाग्रह अपेक्षित धारणा से फिर भी शुद्ध है, प्रचलित सांख्य दर्शन में पुरुष को निमित्त कहा गया है,
प्राचीन सांख्य दर्शन में पुरुष को निमित्त कहना ऋत् अभिप्रेरणा से ही है,
पर इससे अर्थात् पुरुष विशेष की धारणा से भी विशुद्धतः बस निमित्त को ही मात्र निमित्त कहना सम्यक् नियम के अनुसार है,)
लेकिन प्रचलित सांख्य दर्शन में प्रकृति कहना व प्रकृति को प्रधान कहना अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार नही है, अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार निमित्त तो निमित्त अर्थ में है ही,
निमित्त कारण के अपनी भूमिका में उपस्थित भर होने
में ही गुणों का अस्तित्व व उनका अपना व्यवहार सिद्ध होता है,
गुणों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध नही है,
पर प्रचलित सांख्य दर्शन के अनुसार गुणों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है,
और गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है,
और प्रकृति प्रधान है,

पर सम्यक् अर्थ में न तो साम्यावस्था का अर्थ है, न ही आरोपित प्रकृति की आरोपित प्रधानता का अर्थ है,
किसी की भी प्रधानता नही, उत्तरोत्तर सही से सही ओर होते क्रम में अंततः सही ओर की पूर्णता की ओर ही प्रधानता का संकेत है|
प्रचलित गीता की सब धर्मो के परित्याग स्वरूप अपेक्षित एक की शरणागति भी सम्यक् शरणागति नही है,
मात्र सही से सही ओर की पूर्णता ओर ही मात्र पूर्णतः समर्पित होने में ही सम्यक् शरणागति है,
गीताकार ने उस समय प्रचलित सांख्य दर्शन के प्रमाण स्वरूप आधार पर अपने अपेक्षित पूर्वाग्रह के दबाव में प्रकृति व पुरुष (निमित्त) का वर्णन किया है, तीन गुण व उनसे से संबंधित व्यवहार का वर्णन किया है,
जो अपौरुषेय सनातन ऋत् नियम के अनुसार नही है,
सापेक्षिक वक्रदृष्टि में ही तीन गुणों के
सापेक्षिक त्रिकोण Triangle का दिग्भ्रम
भासित होता है,
प्रचलित वैज्ञानिकों को भी अपनी अपेक्षित वक्र दृष्टि में
एटम के संदर्भ में धनात्मक आवेश, ऋणात्मक आवेश,
व उदासीन का त्रिकोण भासित होता है,
सापेक्षता के दबाव स्वरूप आरोपित वक्र दृष्टि में ही लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम का आभास हो रहा है,
पर नासाग्र की ठीक सीध की पूर्णता में जो भवाग्र की ठीक सीध की पूर्णता है,
ठीक उस सीध की पूर्णता में
सम्पूर्ण त्रिकोणीय आभास के दिग्भ्रम का अंत है,
न दिशा का भ्रम है, न आकाश का भ्रम है, न समय का भ्रम है, न दूरी का भ्रम है,, न गति का भ्रम है, सम्पूर्ण सापेक्षिक आभास के दिग्भ्रम का अपने आप से ही के ठीक सीध की पूर्णता में अंत है,
(सापेक्षता के दबाव स्वरूप आरोपित वक्र दृष्टि के रहते कदापि दिग्भ्रम से मुक्ति नही है,)
गीता आदि स्थापित धर्म शास्त्रों का सम्पूर्ण वांग्मय सापेक्षता के दबाव स्वरूप
अपेक्षित वक्र दृष्टि के अनुसार ही है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म के अनुसार नही,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् ज्ञान स्पष्टता में ही सम्पूर्ण सापेक्षिक दिग्भ्रम से मुक्ति है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् ज्ञान ही
मात्र प्रमाण है, इससे इतर लोक दृष्टि में प्रमाणित गीता,उपनिषद, पुराण, कुरान, बाईबल, पिटक,आगम, ग्रंथ आदि कोई अपेक्षित, अध्यारोपित शब्द प्रमाण सम्यक् प्रमाण नही,
अपौरुषेय ऋत् वेद (ऋग्वेद आदि प्रचलित वेद नही) ही सम्पूर्ण मानवता का मूल आधारीय प्रमाण है,
उत्तरोत्तर नकारात्मक >(ऋणात्मक) की पूर्ण उपेक्षा व उसकी अपेक्षा उत्तरोत्तर सकारात्मक > (धनात्मक) से सकारात्मक > (धनात्मक) में उपस्थिति पूरी होने पर ...अंततः सकारात्मक > (धनात्मक) की पूर्णता .. यह सीधे मार्ग का प्रत्यक्ष व्यावहारिक संकेत है,
समता, विषमता दोनों ही तरह की दृष्टि
सापेक्षिक वक्र दृष्टि में भासित है,
यथार्थ सत्य धर्म के अनुसार ही जो जिस अर्थ में है, जैसा है, उसका उस अर्थ में वैसा ही होना सिद्ध है, उसी में उसकी शुद्धि है, उसका अस्तित्व है,
इसलिए अपौरुषेय ऋत् अभिप्ररित हो,
अपनी तरफ से समता अथवा विषमता का आरोप मत करो,
सापेक्षिक धर्म को मानने वाले ही अध्यारोप करते हैं, व अध्यारोप की उपासना करते हैं,
पर अपौरुषेय सम्यक् धर्म वाला कदापि अध्यारोप नही करता, अध्यारोप की उपासना नही करता |}
सामान्यतः तुम खोज तो करते हो
पर वह खोज पूर्ववत् दृष्टिकोण में ही हो रही है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण में खोज करने की यह मूल समस्या तो बनी ही है,
मूल समस्या के रहते सम्यक् अर्थ में पूर्ण समाधान भला कैसे स्पष्ट हो सकता है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण में खोज करने की मूल समस्या का सम्यक् अर्थ में पूर्णतः निराकरण होने पर ही
सही अर्थ में खोज संभव है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण के रहते कदापि यथावत् सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
किसी भी तथ्य के संदर्भ में पूर्ण यथावत् सच्चाई स्पष्ट नही हो सकती,,
पूर्ववत् दृष्टिकोण (पहले के अनुसार देखने का नजरिया) का होना
जन साधारण के लिए आदतन > स्वाभाविक है,
क्योंकि इसके बिना जन सामान्य का सामान्य व्यवहार नही चल सकता,

क्योंकि जब भी तुम किसी को देखते हो,
पूर्ववत् दृष्टिकोण के कारण ही उसे पहचानते हो,
इसलिए जन साधारण के लिए व्यावहारिक औपचारिक पूर्ति लिए यह एक मजबूरी भी है,
अगर तुम्हारा यह कहना हो,
कि पूर्ववत् दृष्टिकोण के बिना
व्यवहार तो हो नही पाएगा,
तो घबराने की बात नही है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण का सम्मोहन भंग होने पर
मात्र ज्ञात भर होने की< मात्र दर्शन भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में व्यवहार पूरी तरह संतुलित,नियंत्रित व व्यवस्थित हो जाता है,
प्रत्यक्षतः स्पष्टतः जल कमलवत् व्यवहार हो जाता है,
जो पूर्ववत् दृष्टिकोण के रहते कभी भी संभव नही है,
हर संबंधित व्यवहार में बस उसके ज्ञात भर होने में ही स्थिति होने से संबंधित व्यवहार का जरा भी स्पर्श नही होता,
अब तुम कहोगे, तब तो संबंधित व्यवहार हो ही नही पाएगा,
ज्ञान मात्र के निमित्त जो स्थिति है,
अर्थात् ज्ञात भर होने में जो स्थिति है, वह पूर्ण केन्द्रीय स्थिति है,
जहाँ उपस्थित भर होने से सम्पूर्ण सापेक्षिक व्यवहार पर पूर्णतः नियंत्रण,
पूर्णतः संतुलन, पूर्णतः अनुशासन बद्ध सुव्यवस्थता संपन्न होती है,
तुम्हारी भूमिका बस उपस्थित भर होने की है,
और भलीभाँति अविचल-स्थिर ज्ञात भर होने में ही उपस्थित भर होने की बात हो सकती है,
तुम्हारे ज्ञात भर होने में उपस्थित भर होने से सहज ही संतुलन है, सुव्यवस्था है, कुशलता है, नियंत्रण है,
ज्ञात भर होना संबंधित व्यवहार का ही है, हर संबंधित व्यवहार में मात्र ज्ञात भर होना ही बस एक सा है,
संबंधित व्यवहार बदलता रहता है,
पर ज्ञात भर होना किसी भी संदर्भ में बदलता नही है, स्थिर, अविचल है,
इसलिए ज्ञात भर होने में ही सहज स्थिरतापूर्वक उपस्थिति संभव है,
ज्ञात भर होना हर बदलते हुए, हर संबंधित व्यवहार में एक ही है,
इसलिए ज्ञात भर होना हर संबंधित सापेक्षिक व्यवहार का एकाकी केन्द्र है, और केंद्र में रहने पर ही उस केन्द्र से उसकी सापेक्षिक परिधि के हर कोण पर सहज ही पूर्ण नियंत्रण, है, पूर्ण संतुलन है, पूर्ण सुव्यवस्था है,
किसी भी संदर्भ में बस ज्ञानमात्र के निमित्त, अर्थात् बस ज्ञात भर
होने में अगर सीधे स्थिति हो जाए,
तो तब कदापि पूर्ववत् दृष्टिकोण स्थापित नही हो सकता,
जन्मों-जन्मों से बार - बार पूर्व के अनुसार ही देखने का,जानने का दृष्टिकोण होने से यह तुम्हारे लिए बहुत ही गहरी आदत बन चुका है,
इतनी गहरी आदत कि,
उस आदत का एक तरह से इतना गहरा नशा,इतना प्रबल सम्मोहन,
कि अब तुम्हारे लिए यह बहुत ही सामान्य सी बात हो चुकी है,
अब यह तुम्हारे लिए समस्या नहीं रही,
पूर्ववत दृष्टिकोण स्थापित हो जाने पर ही तुम संज्ञान में संभलकर उपस्थित हो पाते हो, उससे पहले नही,
इसके आरंभ होने के साथ ही तुम्हारा भी आरंभ होता है,
इसलिए तुम्हारे लिए अब यह एक तरह से स्वभाव ही बन गया है,
तुम्हारे लिए अब यह स्वाभाविक सी सामान्य सी बात हो गयी है,
इसलिए अब तुम्हारे लिए इसके प्रति सावधान होने का प्रश्न ही नही उठता,
पूर्ववत् दृष्टिकोण में रहते हुए भले ही जीवन की औपचारिकता पूरी कर लो, एक औसत आयु भले ही तुम पूरी कर लो,
पर जीवन के महान सत्य लाभ से तुम चूक जाओगे,
मात्र दर्शन की स्थिति नही होने से
पूर्ववत् दृष्टिकोण में रहना
तुम्हारे लिए विवशता में (मजबूरी में) जीने की औपचारिक पूर्ति भर ही है,
पूर्ववत् अज्ञान में अभी का जन्म तो हो गया,
ऐसी विवशता कि, इससे पूर्व में न तब तुम्हारा कोई वश था,
और न अब तुम्हारा इसमें कोई वश है,

यह कैसी विवशता, कैसी मजबूरी, पूर्ववत् अज्ञान में ही जीना, और पूर्ववत् अज्ञान में ही मर जाना, क्या यही तुम्हारी नियति है,
बार-बार पूर्ववत् चक्र को ही दोहराते रहना, भला यह कहाँ की बुद्धिमानी है !!!
सारा भ्रम, सारा संशय, सारा संदेह, सारी अज्ञानता, सारा बंधन, सारी समस्या , सारा दुख, सारा क्लेश सब पूर्ववत् दृष्टिकोण के सम्मोहन में ही है,
अगर पूर्ववत् दृष्टिकोण के सम्मोहन से मुक्ति के लिए मुमुक्षा है, सत्य जानने की जिज्ञासा है,
तो आओ, तुम्हें इस संदर्भ में सम्यक् मार्ग निर्देश दिया जाता है,
>> पूर्ववत् दृष्टिकोण को अपनी तरफ से न तो रोकने का प्रयास हो, न हटाने का प्रयास हो,और नही साथ देने का प्रयास हो,
पूर्ववत् दृष्टिकोण जिस अर्थ में है, जैसा है,
ठीक वैसा ही भलीभाँति स्पष्ट हो,
बस इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूरी तरह से सजग रहना है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण जिस अर्थ में जैसा है, ठीक वैसा ही भलीभाँति स्पष्ट हो, इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग होने पर ही
जिसके होने पर पूर्ववत् दृष्टिकोण है, अर्थात् जिस 'कारण" से पूर्ववत् दृष्टिकोण है,
वह "कारण" स्पष्ट है जाएगा,
फिर वह कारण भी जिस अर्थ में जैसा है, भलीभाँति स्पष्ट हो,
इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहना है,
इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग होने पर कारण के संदर्भ में भी सच्चाई स्पष्ट हो जाएगी,
कारण के संदर्भ में सच्चाई स्पष्ट होने पर पूर्ववत् दृष्टिकोण नही रह जाता है,
सीधे ही दर्शन मात्र की विशुद्धता रह जाती है,
दर्शन मात्र की विशुद्धता में सम्यक् अर्थ में जो जैसा,
ठीक वैसा ही स्पष्ट है, जरा भी दिग्भ्रान्ति नही,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता में पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
इसलिए किसी भी अर्थ में
जरा सा भी भ्रम नही रह जाता,
जरा सा भी संशय नही रह जाता,
जरा सा भी संदेह नही रह जाता,
जरा सा भी अन्याय नही रह जाता,
जरा सी भी समस्या नही रह जाती है,
जरा सा भी अज्ञान नही रह जाता,
जरा सा भी दुख नही रह जाता है,
श्वास की प्रकृति, श्वास का स्वरूप
ही एक ऐसा अवलंबन है, माध्यम है,
जहाँ पूर्ववत् दृष्टिकोण के प्रति यथा सहजता पूर्वक
पूर्णतः सजग हुआ जा सकता है,
अन्य दूसरा कोई
ऐसा अवलंबन नहीं है, माध्यम नही है,
श्वास के संदर्भ में ही
पूर्ववत् दृष्टिकोण के प्रति यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहना है, इससे सहज, स्वाभाविक, सीधा व केन्द्रीय माध्यम दूसरा नही,
जितना समय यथा सहज सामान्य श्वास के आने व जाने के मध्य में लग रहा है,
उतने समय में भलीभाँति संभलकर हर श्वास के आने व जाने के ज्ञात होने में उपस्थित होना है,
पर जो ज्ञात हो रहा है, भले ही वह अभी पूर्ववत् दृष्टिकोण में भासित हो रहा हो,
पर भलीभाँति स्थिरता पूर्वक उपस्थिति का मापदंड पूरा होते ही श्वास के संदर्भ में पूर्ववत् दृष्टिकोण भंग हो जाता है,
इसी प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर जैसे-जैसे भलीभाँति स्थिरता पूर्वक उपस्थिति का मापदंड पूरा होता जाएगा,
उसी अनुपात में सूक्ष्म से सूक्ष्म पूर्ववत् दृष्टिकोण भी भंग होते जाएगा,
अंततः भलीभाँति पूर्णतः स्थिरता पूर्वक उपस्थिति का मापदंड जब पूरा हो जाएगा,
तभी पूर्णतः पूर्ववत् दृष्टिकोण भी भंग हो जाएगा,
जब पूर्णतः पूर्ववत् दृष्टिकोण भंग हो जाता है,
तब जरा भी सम्मोहन नही रह जाता, जरा भी मूर्छा, जरा भी प्रमाद, जरा भी बेहोशी नही रह जाती,
परिपूर्ण होश में, परिपूर्ण जाग्रति में, पूर्णतः पूर्ण सहजता में पूर्णतः पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में सीधे सत्य से ही जैसा सत्य है, ठीक वैसा ही स्पष्ट है, जरा भी दिग्भ्रान्ति नही.....

नोट- उपरोक्त देशना में किसी की भी निंदा अपेक्षित दृष्टिकोण नही है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सम्यक् कल्याणार्थ ही न्याय संगत निर्देश किया गया है|
...

18 September 2020

यह संसार न ही तुम्हारा मित्र है,
न ही तुम्हारा शत्रु है,
किसी के भी मित्र व शत्रु होने में जिम्मेदार तुम्ही हो,
अगर कोई तुम्हारा शत्रु बना है, तो इसमें कमी तुम्हारी ही है,
किसी अन्य को दोष मत दो, तुम्हारी कोई न कोई कमी अवश्य है,
जिस कमी के कारण अन्य कोई दूसरा तुम्हारे प्रति शत्रुता के लिए निमित्त बना है,
दूसरों से उलझने की जगह अपने भीतर उस कमी को पूरी ईमानदारी से भलीभाँति खोज कर,
पूरी ईमानदारी से जिम्मेदार हो, उस कमी को हटाओ,
अगर संसार में ऐसा हो जाए,
तो कोई किसी का शत्रु होगा ही नही, किसी की, किसी से कोई शत्रुता होगी ही नही,
सभी का परस्पर बैर रहित मंगल मैत्री का ही भाव होगा, पर सामान्यतः इस संसार में ऐसा नही होता है, स्वयं की कमी नही दिखती, सामान्यतः हर कोई दूसरों में ही कमी देखता है,
दूसरों में ही कमी दिखती है, दूसरों पर ही दोष दिखता है,
सामान्यतः तुम अपनी कमी में दूसरों पर दोष लगाकर स्वयं की जिम्मेदारी से बचते हो,
जब तक ऐसा होगा, तब तक तुम आजीवन ही दुःखी रहोगे, जन्मों-जन्मों तक समाधान कभी नही हो पाएगा,
कोई भी न तुम्हें दुःख दे रहा है, न सुख दे रहा है,
दूसरा तो बस इसमें निमित्त है, इसके लिए जिम्मेदार तुम स्वयं हो,
तुम्हारी जिस कमी के कारण कोई तुमसे बैर रख रहा है,
तुम्हारी उस कमी के हटते ही उसका तुमसे बैर का निमित्त भी हट जाता है,
सामान्य दृष्टि के अनुसार इस संसार में जो कुछ भी घटित हो रहा है, सामान्यतः वह अकारण नही है, सामान्यतः उसका कोई न कोई कारण अवश्य है, अकारण कुछ भी नही है,
पर सामान्यतः कोई भी सामान्य जन समाधान के लिए निमित्त कारण की खोज नही करता,क्योंकि इससे स्वयं में जिम्मेदारी आती है,
पर सामान्यतः कोई स्वयं में जिम्मेदारी नही लेना चाहता है,दूसरों को ही जिम्मेदार ठहराकर, स्वयं की जिम्मेदारी से बचना चाहता है,
पर ध्यान रहे, साधक का जन्म ही जिम्मेदारी लेने पर होता है, उससे पहले साधक होता ही नही, और पूरी जिम्मेदारी में, पूरी ईमानदारी में ही हर साधना की सिद्धता है, लाभ है |
जो कुछ भी अच्छा या बुरा तुम कर रहे हो, जो कुछ भी अच्छा या बुरा तुम भोग रहे हो, उसके लिए तुम ही जिम्मेदार हो, दूसरा नही,
गैर जिम्मेदार व्यक्ति ही भाग्य,
(कथित) ईश्वर आदि अन्य निमित्तों पर दोष लगाता है, और अपनी जिम्मेदारी से बचता है, इससे वह कभी भी योग्य नही हो पाता, सक्षम नही हो पाता, समर्थ नही हो पाता,
वह असहाय, बेबस व लाचार ही बना रहता है,
(बिस्तर में पड़े-पड़े हाथ की लकीरों को ही मत देखते रहो,
ज्योतिषियों के चक्कर में मत उलझे रहो,
टोने-टोटके, झाड़-फूंक करने वाले, भूत बुलाने वाले,भाग्य बताने वाले आदि के चक्कर में मत पड़ो,
अपने कर्म पर, अपने पुरुषार्थ पर,
अपने प्रयास पर, अपनी कुशलता पर, अपनी जिम्मेदारी पर, अपनी इमानदारी पर विश्वास करो, जिम्मेदारी responsibility से निखार आता है, कुशलता खुलती है,
जिम्मेदारी से ही कोई योग्य होता है, सक्षम होता है, समर्थ होता है,
उपरोक्त यह तो सामान्य परिपेक्ष्य में जिम्मेदार होने की बात है,
पर असल में जिम्मेदारी लेना,
अपने भीतर के साधक को जगाना है,
उदाहरण के लिए जैसे कोई आकर किसी को एकाएक थप्पड़ मारता है,
और गाली देना शुरू कर देता है,

तो थप्पड़ व गाली खाने वाले व्यक्ति को लगता है, कि उसने भला उसका क्या बिगाड़ा, जो बिना किसी गलती के,
बिना किसी कसूर के एकाएक ही यह थप्पड़ मार रहा है, और गाली दे रहा है,
ऐसी परिस्थिति में भले ही उसे ऐसा लगे,
पर ऐसा लगना असल में उस व्यक्ति की अज्ञानता में है, अज्ञानता में उसे ऐसा
लगना स्वाभाविक है,
अगर उस व्यक्ति को यह दिख जाए,
कि उस व्यक्ति ने जो आकर उसे थप्पड़ मारा और गाली दी,
वह अकारण नही है, इसके लिए वही स्वयं जिम्मेदार है, स्वयं उसने ही पहले इस जन्म में नही,
तो फ़िर उससे पहले के किसी न किसी जन्म में निश्चित ही इसका आरंभ कर इसका बीज बोया है, यह थप्पड़ मारने वाला तो (उसके) प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में बस निमित्त भर (बना) है,
इस बात का विवेक खुलने के बाद थप्पड़ खाने वाला अब बदले में कोई प्रतिक्रिया नही करेगा, अपनी तरफ से बदले में अब फिर से नया आरंभ नही करेगा,
क्योंकि उसकी विवेक दृष्टि में अगर उसने प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में फिर से बदले में नया आरंभ किया, तो फिर से परिणाम भुगतने को तैयार रहना पड़ेगा,
हालाँकि थप्पड़ मारने वाला व गाली देने वाला व्यक्ति भी निर्दोष नही है,
उसने भी पहले की प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में एक नया आरंभ कर बीज बोया है,
पर थप्पड़ खाने वाला विवेक स्पष्ट होने से थप्पड़ मारने वाले को दोष नही देगा, वह इसके लिए पूरी जिम्मेदारी से अपनी कमी को ही स्वीकार करेगा,
उसे यह दिखेगा, कि इस व्यक्ति ने जो थप्पड़ मारा है, यह अकारण नही है, इसका आरंभ पहले स्वयं उसी ने किया है, यह (थप्पड़ मारने वाला) तो प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में बस निमित्त भर है,
इस तरह की विवेक दृष्टि में वह थप्पड़ खाने वाला कोई बदला नही लेगा, बल्कि धन्यवाद व्यक्त करेगा, कि इस निमित्त से प्रारब्ध का भोग पूरा हुआ,
क्योंकि जो भी उसने पहले आरंभ कर बीज बोया था, उसे कभी न कभी काटना भी तो उसे ही था,
अगर यह नैमित्तिक संयोग नही बनता,
तो पता नही ऐसा नैमित्तिक संयोग के लिए कितने जन्मों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती, और तब तक उसका यह दबाव मुक्ति के लिए बाधा ही बना रहता,
थप्पड़ खाने वाले व्यक्ति की अगर विवेक दृष्टि स्पष्ट नही होती,
तो वह भी प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में जिसने उसे थप्पड़ मारा था उसे भी थप्पड़ मारता,और गाली देता,
(और कहता, वह क्या उससे कम है !!!)
तो वह फिर से बदले में एक नया आरंभ कर आगे आने वाले परिणाम को भुगतने के लिए बीज बो देता|
जो अज्ञानतावश एक ही जन्म के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, जो कि ऋत् असंगत है, न्याय असंगत है,
अपौरुषेय सनातन धर्म के अपौरुषेय नियम के अनुसार पुनर्जन्म का सिद्धांत, कर्म,कर्मफल का सिद्धांत,
मोक्ष का सिद्धांत स्पष्ट न होना दुर्भाग्यपूर्ण है,
सनातन ऋत् धर्म के अनुसार पूर्व कल्प के अनुसार ही यह पृथ्वी है, यह सूर्य है,
यह चंद्र,नक्षत्र आदि से युक्त अंतरिक्ष का विस्तार है,
वर्तमान के इस कल्प के अनुसार ही अगला आने वाला कल्प भी है, इस प्रकार न पहला आरंभ है, न ही अंतिम अंत है,
लोकदृष्टि के सम्मोहन में पहले जन्म के अनुसार ही यह जन्म भी है,
जब तक लोकदृष्टि का सम्मोहन है,
जब तक अपेक्षित< आरोपित दृष्टिकोण है,
तब तक दुखद अज्ञानता में बार-बार जन्म लेना व मरना जारी ही रहेगा,
जो कुछ भी है, वह सब अपने से पूर्व के अनुसार ही है,
लोकदृष्टि के सम्मोहन से मुक्त होने में ही, आरोपित दृष्टिकोण से मुक्त होने में ही
सम्यक् सनातन अकृत्रिम् सहज धर्म स्पष्ट है,
पुनर्जन्म की सत्यता स्पष्ट है,मोक्ष की सत्यता स्पष्ट है, निमित्त कारण की सत्यता स्पष्ट है,
उससे पहले तो स्थापित धर्म का दबाव ही बहुत है,
लोकदृष्टि में परस्पर लेन-देन का, अदला-बदली का अंत नही है,
और सामान्यतः सामान्य व्यक्ति बदले में नया आरंभ करता ही है,
वह रुकता नही है,
क्योंकि यह उसके अपेक्षित अहंकार का,उसकी अपेक्षित प्रतिष्ठा का विषय है, यह उसके अपर स्वभाव से प्रेरित है,
(सहज स्वभाव से नही,)
हर बार ही बार-बार अपने से पहले के अनुसार ही इस भव संसार का

अनवरत् नया सा नया आरंभ होता ही रहता है,
इस तरह से अज्ञानतावश इसञ संसार में पूर्ववत् यह अदला-बदला चलता ही रहता है,सामान्यतः इसका अंत नही है,
और इसी तरह परस्पर अदला-बदली व परस्पर लेन-देन
में यह संसार अनवरत् गतिशील है,
इसी में इस संसार का अपना बल है, इसका अपना आधार है, अपना अस्तित्व है,
यह संसार पूर्ववत् प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में संचालित होता ही रहेगा,
संसार तो अपनी जगह रहेगा,
कुशलता इसी में है, कुशलतापूर्वक इस दुःखद अज्ञान के घर इस संसार से पार हो
जाओ.............
नोट- पूर्वाग्रह से मुक्त हो,
यथा सहजतापूर्वक पूरे होश में सजग हो, हर विन्दु को ध्यान में रखते हुए,
विवेक को जाग्रत रखते हुए,
सम्यक् मार्ग स्पष्टता हेतु,
सम्यक् कल्याणार्थ ही ऋत् अभिप्ररित हो, भलीभाँति इसे पढ़ो,
व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से संकेत अर्थ में विशेषतः साधकों को उनकी जिम्मेदारी के प्रति सजग कराने के उद्देश्य से यह धर्म देशना है|
नोट - सांसारिक जनों को उनके स्तर के अनुसार अवश्य ही सकारात्मक दृष्टिकोण से सकारात्मक अर्थ में समुचित प्रतिकार करना चाहिए,
यह लोक कर्तव्य है,
(कुछ)जो नियम व्यक्तिगत् साधनात्मक संदर्भ में लागू होते हैं,
वे सामाजिक संदर्भ में लागू नही हो सकते, (कुछ) जो नियम सामाजिक संदर्भ में लागू होते हैं, वे व्यक्तिगत् साधनात्मक संदर्भ में लागू नही हो सकते,
अन्यथा व्यक्ति व समाज के संदर्भ में विकास व संतुलन का निमित्त नही बन पाएगा|

19 September 2020

कोई भी सिद्धांत सत्य से ऊपर नही है,
कोई भी सिद्धांत सत्य को नही बाँध सकता,
यह ध्यान रहे, सिद्धांत सत्य के लिए है, पर सिद्धांत के लिए सत्य नही,
सारे सिद्धांत प्रमाणित होने के लिए सत्य पर अवलंबित हैं,
पर सत्य किसी पर अवलंबित नही,
सत्य सर्वोपरि है, सत्य में अगर सिद्धांत की बाधा आती है, तो उस सिद्धांत का मोह त्याग देना चाहिए,
अपने सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए
असत्य व अन्याय से समझौता मत करना,
(भले ही उससे सीधा व पूर्ण सत्य दिखने से) ईमानदारी के कारण उसे असिद्ध करना पड़े,
सिद्धांत के प्रति ईमानदार होने की अपेक्षा सत्य के प्रति ईमानदार होना
और बड़ी ईमानदारी है,
अगर कभी ऐसी स्थिति बने, तो बड़ी ईमानदारी को ही स्वीकार करना,
अगर ऐसा नही किया, तब तो बेईमानी ही है,
ईमानदारी इसी में है, कि सही में जो सत्य है, खोज जारी रखना|
उत्तरोत्तर सही से सही दिशा में अनवरत्
शोधरत् रहना|
द्रव्यमान व ऊर्जा संबंधित प्रचलित सापेक्षता का सिद्धांत भले ही स्थूल सापेक्षिक दृष्टि में सत्य भासित हो,
पर सूक्ष्म दृष्टि की स्पष्टता में वह सत्य सिद्ध नही है,
यह आवश्यक नही है, कि जो तुम्हें सत्य लग रहा है,
वह यथार्थतः सत्य ही हो,
सावधान |
क्योंकि जब तक सम्यक् संप्रज्ञान दृष्टि नही स्पष्ट है,
तब तक धोखा ही धोखा है, दिग्भ्रम ही दिग्भ्रम है|

तथाकथित धर्मों के ठेकेदार व दलाल > सूत्रकार व भाष्यकार अपनी बात को सिद्ध करने के लिए, अपने सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए, उसकी रक्षा में, उसकी पुष्टि में किसी भी सीमा तक जा सकते हैं, किसी भी सीमा तक किसी का भी खंडन-मंडन, विरोध अथवा समर्थन कर सकते हैं,
किसी भी सीमा तक किसी के साथ भी समझौता व समन्वय कर सकते हैं, उन्हें सत्य व न्याय से मतलब नही है,
बस अपने सिद्धांत की सिद्धता,
रक्षा व पुष्टि से ही मतलब है, चाहे उनका सिद्धांत
ऋत् असंगत >न्याय असंगत व अयुक्त ही क्यों न हो,
धार्मिक व दार्शनिक ही नही,
बल्कि वैज्ञानिक भी इस रोग से ग्रसित हैं,
आइंस्टाइन जैसे वैज्ञानिक ने भी
उस समय प्रचलित वैज्ञानिक नियम व सिद्धांतों का जो उसके अपने सापेक्षता के सिद्धांत की सिद्धता व रक्षा में बाधा पहुँचा रहे थे, उसे या तो असिद्ध कर दिया, या नजरअंदाज कर दिया,
न्यूटन के प्रचलित गुरुत्वाकर्षण से संबंधित नियम को आकाश की वक्रता के समानांतर प्रकाश में आयी वक्रता के आधार पर असिद्ध कर उसे अपने सापेक्षता के सिद्धांत के अनुसार सिद्ध किया,
चलो किसी परिपेक्ष्य में एक सीमा तक यह बात सिद्ध भी है,
पर यह एक अधूरा सच है,
आइंस्टाइन के दृष्टिकोण में आकाश का वक्र होना तो सिद्ध था, पर उसका मूल कारण स्पष्ट नही था,
उसे आकाश की वक्रता का पता प्रकाश के वक्रता में होने से लगा,
आकाश के वक्र होने की सिद्धता के आधार पर न्यूटन का प्रचलित गुरुत्वाकर्षण का नियम
प्रभावित हुआ, पर आइंस्टाइन को आकाश के वक्र होने का कारण स्पष्ट नही था, इसलिए उसके सिद्धांत में भी कमी आयी,
आइंस्टाइन को अपने अपेक्षित दृष्टिकोण से वह जिस कोण विशेष से देख रहा था,
उस कोण विशेष से उसे ऐसा ही सापेक्षिक आभास का होना स्वाभाविक था|
यह स्थूल आकाश अपने सूक्ष्म आकाश की वक्रता के दबाव में ही वक्रता को प्राप्त है, इसी तरह वह सूक्ष्म आकाश भी अपने से सूक्ष्म आकाश की वक्रता के दबाव में वक्रता को प्राप्त है,..... उत्तरोत्तर यह क्रम जारी ही है,
पिंडों के दबावस्वरूप आकाश का वक्र होना, सीमित सापेक्षिक दृष्टि
के एक कोण विशेष से ही सिद्ध है,
न कि कारण के अर्थ में केन्द्रीय दृष्टि से,
सापेक्षता का कारण स्पष्ट न होने से किसी कोण विशेष की सीमा में ही सापेक्षता का सिद्धांत सत्य है, न कि
कारण दृष्टि में.....
अपनी सिद्धांत की रक्षा में आइंस्टाइन द्वारा ब्लैक होल से संबंधित तथ्य को नजरअंदाज कर देने से स्टीफन हॉकिंग सहित कई वैज्ञानिक हैरानी में थे, आंखिर जानते हुए भी आइंस्टाइन ने ऐसा क्यों किया,
(हालाँकि असल में आइंस्टाइन सहित उन वैज्ञानिकों को तथ्यगत् स्पष्टता नही होने से ब्लैक होल से संबंधित तथ्य के संदर्भ में दिग्भ्रम ही था,)
सत्य के प्रति ईमानदारी होती,
तो किसी भी तथ्य को नजरअंदाज करने की बात ही नही होती,
किसी भी तथ्य के संदर्भ में निष्पक्षतः भलीभाँति ठीक-ठीक न्याय पूर्वक परीक्षा हुए बिना उसे असिद्ध कर देना,
अथवा नजरअंदाज कर देना, उस तथ्य के प्रति न्याय नही है,
उस तथ्य की सच्चाई सामने आनी जरूरी है, तभी उस तथ्य के साथ न्याय हो सकता है,
इस अर्थ में ईमानदारी पूरी होने पर इससे भी सीधे व सही ओर उत्तरोत्तर तथ्यगत् सत्यता का मार्ग भी स्पष्ट होता है,
न्याय व सच्चाई के लिए पूरी ईमानदारी का होना बहुत ही आवश्यक है,
जब तक सम्यक् अर्थ में यथार्थ सत्य स्पष्ट नही है,
किसी भी तथ्य के संदर्भ में उसे सिद्ध व असिद्ध करने
का किसी को भी कोई अधिकार नही है,
क्योंकि तब तक हर कोई पूर्ववत् >अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में ही है, बंधन में ही है, फिर भी हर कोई अपने पूर्ववत् अपेक्षित दृष्टिकोण
से ही सिद्ध व असिद्ध करने में लगा है,
अगर ईमानदारी हो,तो पूर्ववत् >अपेक्षित दृष्टिकोण का दबाव दिख जाता है, बंधन दिख जाता है,
और ईमानदारी होने पर तब दबाव से मुक्ति का, बंधन से मुक्ति का उपाय भी स्पष्ट होता है|
या तो तुम अपने पूर्ववत् अपेक्षित दृष्टिकोण में देखते हो,
जहाँ निश्चित ही तुम दिग्भ्रमित हो,
और या सीधे ही यथावत् "जैसा है,ठीक वैसा ही निभ्रान्त स्पष्ट होता है,

इसके अलावा दूसरी बात नही है,
आइंस्टाइन का उदाहरण निंदा के प्रयोजन से नही है, बल्कि उसका उदाहरण देकर तुम्हें सावधान किया जा रहा है,
अल्पज्ञ मनुष्यों के बनाए सारे सिद्धांत किसी न किसी दृष्टिकोण विशेष पर अपेक्षित हैं,
(पर अपौरुषेय सनातन नियम जो किसी भी दृष्टिकोण विशेष पर अपेक्षित नही है,
कभी भी उसका अतिक्रमण नही है, उलंघन नही है, खंडन नही है,)
सापेक्षिक दृष्टिकोण विशेष में अवलंबित सिद्धांत की रक्षा, पुष्टि व सिद्धता के लिए अपेक्षित आग्रह का होना अल्पज्ञ मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है,
** असल में किसी का न तो अपना गुरुत्व बल सिद्ध है, और न ही गति, उत्तरोत्तर अपने से केन्द्रीय होते गुरुत्व बल से ही हर कोई निमित्त अर्थ में गुरुत्ववान है, गतिमान है,
उत्तरोत्तर अपने से केन्द्र की ओर के गुरुत्व बल से ही उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर आकाश व समय का अपने से केन्द्र की ओर ही झुकाव है, गति है, अंततः सबसे सीधे, सबसे सही ओर ही सबका समर्पण है |
जिस आकाश में यह पृथ्वी है, यह सौरमंडल है, यह आकाश गंगा है,
यह आकाश भी अपने से सूक्ष्म केन्द्रीय आकाश की ओर गतिशील है,
जिसकी गति प्रकाश की गति से बहुत ही अधिक है, इसी तरह उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते आकाश की गति क्रमशः अधिक से और अधिक है,
यह स्थूल आकाश वक्र होते हुए, अपने से सूक्ष्म आकाश में बंद है,
इसी प्रकार वह सूक्ष्म आकाश भी अपने से सूक्ष्म व केन्द्रीय आकाश की और वक्र होते हुए बंद है, यह वक्र होना, झुकने का (सजदा होने का) सांकेतिक प्रतीक है,व वक्रता का पूर्ण हो बंद (एक बंद गोले में) हो जाना, समर्पण का सांकेतिक प्रतीक है,
अंततः सूक्ष्मतर होते समय व आकाश की हर सीमा से परे, उत्तरोत्तर केन्द्रतर होते,
अंततः सबसे केन्द्रतम् की पूर्णता ओर ही सबका अंतिम व पूर्ण समर्पण है, अपरिमित- अपरिमित महिमा का यह संकेत >> अध्यारोपित होने से परान्त
पवित्रतम् (किसी भी नज़रिए से, किसी भी मायने में शरीक होने से मुकम्मल पाक - मुकम्मल पाक,)
(लोक में जिसे ईश्वर, भगवान, परमात्मा,ब्रह्म, खुदा, गॉड आदि कहा जाता है, उससे भी अति परे परान्त पवित्रतम्)
अंत रहित मात्र सही ओर ही है|
मात्र सही-सही ओर की सबकी निष्ठा हो,
सबका ईमान हो,सबका समर्पण हो,
निःसंदेह कृत्रिमता का अध्यारोप सबसे बड़ा पाप है,
सारा दिग्भ्रम ही कृत्रिमता के अध्यारोप के कारण ही है, सहज उपस्थित में ही सहज उपस्थिति के निमित्त रहो|
यहाँ पर आकाश का वक्र होते हुए,
एक सीमा के बाद एक गोले में बंद होना,पारंपरिक दृष्टिकोण के अनुसार नही है, आकाश की स्थिति के लिए यह एक संकेत है,
आमतौर पर कोई भी गोला बाहर से भीतर की ओर ही बंद होता है,
पृथ्वी भी इसी संकेत में बंद है,
पर पृथ्वी की अपेक्षा आकाश का वक्रता के एक गोले में बंद होना,
बाहर से भीतर की ओर नही, वरन भीतर से बाहर की ओर है,
परंतु उस आकाश से जो सूक्ष्म आकाश है, वहाँ से दर्शन होने पर
अपने से सूक्ष्म आकाश की अपेक्षा वह स्थूल आकाश बाहर से भीतर की ओर ही बंद है,
इसी प्रकार पृथ्वी भी आकाश की अपेक्षा ही बाहर से भीतर की ओर एक गोले में बंद है,
इसी प्रकार इस उदाहरण के संकेत में स्थूलता से सूक्ष्मता के क्रम में, व सूक्ष्मता से स्थूलता के क्रम में लागू है|
भले ही वैज्ञानिक यह कहते हों, कि आकाशीय पिंडों के अपने गुरुत्व बल के कारण आकाश में जो वक्रता आयी है, उससे ही आकाशीय पिंडों का आपसी संबंध व व्यवहार निर्धारित है,
तो पूरा सत्य न दिखने से ही
उन्हें अपनी सीमा में ऐसा भासित होता है,
असल में गुरुत्व बल सबसे सीधे का ही है, सबसे सही दिशा का ही है, सबसे केन्द्रतम् का ही है......
महत्व खोज का नही है, बल्कि जिस दृष्टिकोण विशेष में खोज हो रही है, महत्व उस दृष्टिकोण विशेष का है,
क्योंकि उसी दृष्टिकोण विशेष में तुम्हारी खोज की दिशा व दशा निर्धारित है,
अगर दृष्टिकोण के अर्थ में यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए संवेदनशील रहो, तो अवश्य ही उत्तरोत्तर सम्यक् से सम्यक् दृष्टिकोण में खोज संभव है,
दृष्टिकोण विशेष से मुक्ति, यह बहुत ही उच्चतम् तल की बात है,
सामान्यतः सामान्य व्यक्ति की दृष्टिकोण विशेष से मुक्ति असंभव है,
हाँ इतना हो सकता है, कि उसका दृष्टिकोण उत्तरोत्तर
सम्यक् से सम्यक् हो सकता है,

पर दृष्टिकोण तो रहेगा ही.... ....
सामान्यतः तुम जिस कोण विशेष से देख रहे हो, उस कोण विशेष से ऐसा ही दिखना हो सकता है, जैसा अभी तुम्हें दिख रहा है, पर भ्रान्ति तभी हटती है,
जब केंद्र से दिखने के निमित्त समर्पण पूरा होता है, ईमानदारी पूरी होती है, सरलता,सहजता, निर्दोषता, पवित्रता पूरी होती है|

20 September 2020

इस भव संसार की सभी
दिशाएँ डगमग हैं,विचलित हैं,
कहीं कोई अवलंबन नही, कहीं कोई सहारा नही, चहुँ ओर आपत्ति ही आपत्ति है,कहीं भी शरण नही है,
यह देख कोई .....
घर से बेघर हो,
विलखते प्रिय जनों को छोड़, वैराग्य भाव को प्रबल कर, असंग आकाश के समान प्रवज्या ग्रहण कर, सबको अभय दान देते हुए, सर्वत्र भय रहित हो, अनुराग रहित हो, मोह रहित हो,शोक रहित हो,
एकांत निर्जन वन प्रदेश की ओर अभिप्रस्थान करता है,
वहाँ उस निर्जन वन प्रदेश के किसी एक घने वृक्ष की छाया में बीतरागता के भाव को प्रबल कर,संकल्प को दृढ़ कर, यथा सरलता पूर्वक भलीभाँति अविचलित सीधे, स्थिर वज्रासन < (पद्मासन) में, यथा सहजता पूर्वक, पूर्णतः यथा सजगता पूर्वक रहते हुए,
यथा सहजता पूर्वक कमर व रीढ़ की हड्डी को एक सीध में सीधा स्थिर रखते हुए, भलीभाँति पूर्णतः अविचलित स्थिरता पूर्वक बैठता है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त मुख के ऊपरी भाग में, नासाग्र की सीध के अभिमुख स्मृति को भलीभाँति अविचल स्थिर रखते हुए, आरंभ में जब तक श्वास संबंधित दबाव से अधिक सहजता की स्थिति नही हो जाए,
तब तक सामान्यतः आती-जाती श्वास के ज्ञान का अवलंबन ग्रहण कर, भलीभाँति स्थिरता के निमित्त को पूरा करता है,,
फिर जब तक चित्त संबंधी दबाव > (आभास संबंधी दबाव) से अधिक सहजता की स्थिति न हो जाए,
तब तक चित्त के बीतने व उत्पन्न होने के ज्ञान >
(आभास के बीतने व उत्पन्न होने के ज्ञान) का अवलंबन ग्रहण कर भलीभाँति स्थिरता के निमित्त को पूर्ण करता है,
फिर स्वभाव (धर्म), फिर निःस्वभाव (धर्म शून्यता)सहित
अभिसंप्रज्ञान के चारों निमित्तों को पूर्ण करता है,
उक्त चारों निमित्तों के पूर्ण होने पर ही
सम्यक् संप्रज्ञान >(विशुद्धतः निभ्रान्त परिस्पष्ट प्रज्ञान मात्र ही) शेष स्पष्ट है|
न कोई दिग्भ्रम रह जाता है, न कोई संशय, न कोई संदेह, न कोई अज्ञानता, न कोई दुःख...............................

20 September 2020

सरलता,सहजता, सजगता, स्थिरता, निर्मलता, निश्छलता,निष्पापता, निर्दोषता, शुद्धता, पवित्रता पूर्ण हुए बिना यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
सही अर्थ में, सही दिशा में सही-सही आचरण,
सही अर्थ में सही दिशा में सही-सही अभ्यास और सही अर्थ में, सही दिशा में सही-सही समर्पण,

यह तीन बातें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं, इनमें से एक की भी कमी होने पर
सही अर्थ में कल्याण होना असंभव है,
लोकदृष्टि में स्थापित लोक प्रचलित धर्म के अनुसार जो समर्पण की बात है, जो शरणागति की बात है,
वह अपेक्षित दृष्टिकोण में कृत्रिम् अध्यारोप के अर्थ में समर्पण की बात है, शरणागति की बात है,
किसी धर्म विशेष के चश्मे से न देखकर
सीधे ही यथावत् दिखने के निमित्त रहो,
तभी बिना किसी अध्यारोप के जो सहज ही समर्पण है, मात्र सही-सही ओर का दिखेगा,
उससे पहले नही,
न तुम हिन्दू हो, न मुहम्मदी,
यह सब अध्यारोप है,
तुम बस मनुष्य हो, (पर असल में ज्ञान मात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होने में बस निमित्त भर हो)
और मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव का धर्म
ही तुम्हारा अपना धर्म है, (ज्ञान मात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होने में तुम्हारा अपना धर्म है, जो अध्यारोप नही है, सहज स्वभाव से है,)
जब आस्तिक-आस्तिक की परस्पर सहमति नही है, तो नास्तिक के साथ सहमति का तो प्रश्न ही नही बनता,
पर जब सत्य की बात आती है,
तो हर कोई सहमत हो जाता है,
क्योंकि किसी भी प्रकार का आस्तिक हो या नास्तिक हर कोई सत्य जानना चाहता है,
सत्य में रहना चाहता है,
कोई भी दिग्भ्रम में नही रहना चाहता है,
निभ्रांत सत्य स्पष्टता में ही हर कोई रहना चाहता है, बिना किसी विरोधाभास के सभी की सहज ही सत्य में निष्ठा है, सहज ही सत्य में समर्पण है,
इस तरह यह जो बिना किसी दबाव के जो सहज ही निष्ठा है, सहज ही समर्पण है, वह मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव में है, सहज स्वभाव के धर्म में किसी भी अर्थ में कोई भी जबरदस्ती नही,
किसी भी मनुष्य का, किसी भी मनुष्य से कोई विरोध नही है, कोई मतभेद नही है,
स्थापित कृत्रिम् धर्मों में आपसी मतभेद, विरोधाभास का होना स्वाभाविक है,
राम से हर कोई सहमत नही हो सकता, कृष्ण से हर कोई सहमत नही हो सकता, बुद्ध से हर कोई सहमत नही हो सकता, पर यथार्थतः सत्य से हर कोई सहमत है,
पर जहाँ भी सहज ही हर कोई सहमत न हो, वह सत्य नही हो सकता,
तुम कृष्ण के प्रति या राम या किसी और के प्रति समर्पित होते हो,
तो वह समर्पित होना सहज में उपस्थित नही है,
बल्कि दबाव में अध्यारोपित है,
जो सहज में उपस्थित नही है,
जिसकी अलग से स्थापना करनी पड़ती है,
जिसे बार-बार स्थापित कर, उसमें बार-बार भावित होना
पड़ता है, बार-बार भावित होने पर
तब कही भावनात्मक सम्मोहन में,
(जो तुम्हारे ही द्वारा स्थापित है,)
उसके सत्य होने का दृष्टिभ्रम उत्पन्न होता है,
किसी झूठ को बार-बार दोहराने से जो एक आदत बन जाती है, उस आदत के दबाव में तुम्हें यह दृष्टिभ्रम नही दिखाई देता,
सूक्ष्म सापेक्षिक दबाव दिखाई नही देता|
किसी नैष्ठिक मुहम्मदी को बुद्ध या कृष्ण की मूर्ति के आगे सजदा करने के लिए कहो,
तो क्या वह सहमत होगा,
अगर जबरदस्ती करोगे, तो वह दबाव महसूस करेगा,
और अधिक जबरदस्ती करोगे,
तो दबाव स्वरूप प्रतिकार ही करेगा,
पर सही में, यथार्थ में जो है, जैसा है,स्वीकार करने में उसे ही क्या किसी को भी आपत्ति नही हो सकती, किसी को भी दबाव महसूस नही होगा, सहज ही स्वीकार होगा,
यथार्थ सत्य स्वीकार करने की बात से किसी को भी आपत्ति नही होगी,
हाँ जो सरल नही है, दुराग्रही है, जिसके व्यवहार में, आचरण में, दर्शन में पारदर्शिता नही है, यद्यपि भीतर से तो उसे भी स्वीकार है, पर बाहर से वह कुतर्क

कर सकता है, इंकार कर सकता है, आदतन अपने दुराग्रह को प्रदर्शित कर सकता है|
हिन्दूओं के पास एक-दूसरे का खंडन करने वाले धार्मिक साहित्य की भरमार है,
जहाँ जबरदस्ती मनवाने के लिए किसी ऊपरी आफत का, या हमेशा नर्क में डाले जाने का डर नही दिखाया जाता है, ऐसा नहीं, कि मानना ही पड़ेगा,
नही मानोगे, तो हमेशा - हमेशा के लिए नर्क में जाओगे, कई विरोधी संप्रदाय हैं, कई विरोधी सिद्धांत है, कई विरोधी मत हैं, कई विरोधी उपासना पद्धतियाँ है, कई विरोधी साधना पद्धतियाँ हैं,
भले ही किसी अर्थ में, किसी सीमा तक यह हानिकारक भी हो,
पर इस विरोधाभास में एक विवेकवान हिन्दू के लिए
अंततः सत्य की खोज के लिए प्रेरित होना स्वाभाविक है,
हिन्दू धर्म में जो नैतिकता, आदर्श, चरित्र,आचरण, कल्याणमय भावना आदि का जो सकारात्मक पक्ष है, वह बहुत ही सराहनीय है,
जहाँ विवेक को, विकास को, संतुलन को महत्व दिया जाता है, जहाँ अंततः सत्य निष्ठा को
ही महत्व दिया जाता है,
तो अंततः आँखिर यथार्थतः सत्य क्या है, सत्य की खोज के लिए अग्रसर होना एक समझदार, विवेकशील हिन्दू चित्त के लिए स्वाभाविक है,
यह लाभ, बहुत ही महनीय लाभ है,
पर अगर सम्यक् अनुसंधान के लिए अग्रसर न हो सको, तो सब कुछ व्यर्थ है,
मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होने पर निश्चय ही सत्य की खोज में बाधा है,
एक सीमा तक हर स्थापित धर्म विकास व संतुलन के निमित्त है,
पर स्थापित पूर्वाग्रह,मताग्रह से मुक्त हो, यथार्थतः सत्य की खोज में सहज संवेदनशील होना बहुत ही असंभव है,
हाँ अगर पूर्ण केन्द्रीय सत्य दिख जाए,
तो उसे अपने धर्म की जो भी सकारात्मकता है, उसकी पूर्णता भी दिख जाती है, और साथ ही (उसमें) जो दिग्भ्रम है, असत्य है, वह भी दिख जाता है,
सभी स्थापित धर्मों के मूल आधार स्वरूप अपौरुषेय अकृत्रिम्,सनातन, सहज स्वभाव के धर्म में ही अंततः
सबका सही अर्थ में कल्याण है ....
सभी का मंगल हो, सभी का कल्याण हो,
सभी को सही-सही मार्ग स्पष्ट हो|

21 September 2020

कुछ लोग नासिकाग्र > संकेत का सही तात्पर्य ग्रहण नही करते,
वे बाहर मुख मंडल में स्थित नाक के आगे के भाग में बाहरी दृष्टि को स्थिर करने का प्रयास करते हैं, उनसे यही कहना है,
कि बाहर नाक के आगे के भाग में बाहरी दृष्टि को स्थिर करने का
अनावश्यक प्रयास करने की आवश्यकता नही है ....
यह यथा सहजता के विरुद्घ भी है,
क्योंकि इस अनावश्यक प्रयास में मानसिक ऊर्जा का ह्रास होता है,
क्योंकि वह तो बस सीधे,सही दिशा
में प्राकृतिक संकेत भर है, संकेत को संकेत ही रहने दो, उस संकेत की दिशा में सीधे व सही मार्ग की खोज के लिए अभिप्रेरित रहो,
बाहर नासिकाग्र के प्राकृतिक संकेत
में भीतर से जो नाक के अग्रभाग का
ज्ञान हो रहा है, उसकी ठीक सीध में > भीतरी दृष्टि को भलीभाँति पूर्णतः स्थिर करो,
नाक के अग्रभाग में दृष्टि संयम अथवा दृष्टि की एकाग्रता के प्रयोजन से अगर कोई दृष्टि को स्थिर करने का अभ्यास करता है, तो वहाँ पर संकेत भर की ही उपलब्धि है,
इसलिए, क्योंकि नासिकाग्र तो संकेत भर है, सीधे मार्ग के लिए,
इसलिए नासिकाग्र में संकेत भर की उपलब्धि होना ही न्यायपूर्वक है
इसलिए इस संकेत की दिशा में
अर्थात् नासिकाग्र के ज्ञान की ठीक सीध की दिशा में यथा सहज व संतुलित श्वास के ज्ञान में ही दृष्टि संयम पूर्ण होता है, इतना ही नही, इससे भी सीधे, उत्तरोत्तर सीधे से सीधे ओर उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि का संयम पूर्ण होते जाना, उत्तरोत्तर सम्यक् मार्ग में सिद्ध है,
(नासिकाग्र का ज्ञान आंतरिक सीधे व सही मार्ग के लिए संकेत है,)

इस संकेत की दिशा में उत्तरोत्तर शोधपूर्वक स्थिरता का मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
उस संकेत की दिशा में भलीभाँति उत्तरोत्तर और सीधे से सीधे,सही सही से सही दिशा में संभलना बहुत ही आवश्यक है, संकेत तक ही बात न रह जाए,
जैसे कोई व्यक्ति किसी चौराहे से भटककर फिर सही रास्ते के लिए फिर से उसी चौराहे में आता है,
इसी प्रकार अगर सीधे रास्ते से भटक जाओ, तो फिर सीधे व सही रास्ते के लिए नासिकाग्र के प्राकृतिक संकेत में आना तुम्हारे लिए आवश्यक है|
स्थूल दृष्टि के संयम से भी आगे
उत्तरोत्तर कम से कम समय में,
अभी से अभी के निकट से निकट वर्तमान में भलीभाँति संभलकर उपस्थित होने के लिए नासिकाग्र तक सीमित न रहकर उस सीध में भीतर अंतर में जहाँ सहज ही श्वास के आभास का ज्ञान हो रहा है, श्वास के यथा सहज स्वरूप व प्रकृति के अनुसार स्थिरता पूर्वक उपस्थिति का मापदंड पूरा करो,
चूँकि नासिकाग्र में बार-बार संभलकर उपस्थित होने के लिए श्वास के आने जाने के मध्य के अंतराल की तरह अंतराल नही है, (क्योंकि संभलकर उपस्थित होने के लिए मध्य के अंतराल का होना आवश्यक है,)
इसलिए भले ही नासिकाग्र एक सीमा तक दृष्टि संयम के लिए, एकाग्रता के लिए उपयोगी हो,
पर भलीभाँति संभलकर उपस्थित होने के लिए अंतराल वाले श्वास की तरह यह सहज माध्यम नही है,
यथा सहजता पूर्वक सजग होने के लिए नासिकाग्र नही, वरन नासिकाग्र की सीध की दिशा में जो यथा सहज श्वास का माध्यम है, वही सबसे यथा सहजता से उपर्युक्त माध्यम है,
इस संदर्भ में अभी फिलहाल आरंभिक अभ्यास के लिए ही तुम्हें सचेत किया जा रहा है,
(ध्यान रहे,बाहर की आँखों में जोर नही पड़ना चाहिए,
यथा सहजता बनी रहे,)
नासिकाग्र तक ही प्राकृतिक संकेत का प्रयोजन पूरा नही है,
अपितु नाक के अग्र भाग की सीध की दिशा में उत्तरोत्तर सीधे से सीधे के लिए संकेत का प्रयोजन है,
आरंभ में नासिकाग्र की ठीक उस सीध में ही ठीक श्वास के ज्ञान की ठीक सीध है,
सीधे श्वास का ही बस केवल ज्ञात होना रह जाए, इसी के लिए ही ठीक लाइन line, लम्बाई length,
समय timing के लिए आरंभिक संकेत अर्थ में नासिकाग्र की बात की जाती है, >>>> (नासाग्र की ठीक सीध की दिशा की बात की जाती है ,)
(इससे श्वास के ज्ञान की ठीक सीध की रेखा line सुनिश्चित अर्थ में निर्धारित होती है, जिसमें ठीक समय timing में श्वास के ज्ञान की सुनिश्चितता भी निर्धारित रहती है,)
(इस तरह ठीक सीध में भलीभाँति संभले रहने पर कोई भी श्वास बिना जाने नही छूट सकती,
क्योंकि श्वास के ज्ञान की ठीक सीध में, ठीक साम्यता में लाइन line, लम्बाई
length, समय timing की सुनिश्चितता निर्धारित रहती है,)
और ठीक-ठीक ध्यान अभ्यास में यह बहुत ही आवश्यक है |
एक आवश्यक सूचना - नासिकाग्र का तात्पर्य अपेक्षित दृष्टिकोण में अध्यारोपित लोक प्रचलित धार्मिक साहित्य गीता के अनुसार नही है, गीता में नासाग्र की बात
अपेक्षित दृष्टिकोण से है,
इससे पहले योग ऋषि हिरण्यगर्भ
ने नासिकाग्र के संदर्भ में संकेत दिया है,
जो गीता से और स्पष्ट है,
पर नासिकाग्र की ठीक सीध में ज्ञान मात्र के निमित्त साम्यता को योग ऋषि हिरण्यगर्भ ने भी स्पष्ट नही किया था,
गीताकार ने भी नासिकाग्र की बात तो की है, जो एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त उपर्युक्त भी है,
पर गीताकार ने नासिकाग्र की बात
कहकर अपने अपेक्षित पूर्वाग्रह के दबाव में नासिकाग्र की सीध से इतर सापेक्षिक दबाब स्वरूप अपने अपेक्षित दृष्टिकोण का अध्यारोप कर अर्थ का अनर्थ कर दिया,
जिस कारण नासिकाग्र के
प्राकृतिक संकेत की वह सार्थकता नही रह गई, जहाँ पर भवाग्र दिशा के लिए संकेत है, भव चक्र से मुक्ति का संकेत है,
ज्ञान मात्र के निमित्त सहज स्थिरता का संकेत है,
मन दृष्टि का अनुसरण करता है,
(दृष्टि कहने का तात्पर्य स्थूल दृष्टि तक सीमित नही है,
बल्कि सूक्ष्म बौद्धिक दृष्टि के आधार स्वरूप दृष्टि से है,)
इसलिए जब दृष्टि नासिकाग्र की सीध में रहती है,
तब तक मन का भी समर्पित हो उसी सीध में रहना स्वाभाविक है,

तो नासिकाग्र की बात कहकर,
फिर मन को रोकने की बात कहना
गीताकार की बात प्रकृति विरुद्ध, सापेक्षिक प्रयास के अर्थ में होने से अयुक्त है, ऋत् असंगत है,
जो जहाँ, जिस अर्थ में है, उसे अपनी तरफ से नही रोकना है, न किसी को लाना है, न किसी को हटाना है,
नासिकाग्र की सीध में जो जहाँ जिस निमित्त से, जिस अर्थ में है, बस उसके ज्ञात भर होने में बस उपस्थित भर होना है,
यही संतुलन व स्थिति का आधार है,
ज्ञात भर होने में बस उपस्थित भर होने से नासिकाग्र के प्राकृतिक संकेत का अभिप्रयोजन पूर्ण है,
नासिकाग्र में दृष्टि जमाने का अभ्यास करने पर एकाग्रता तो सध जाती है,
पर ज्ञान मात्र के निमित्त उपस्थिति का वहाँ अर्थ नही है,
एक सीमा तक बस दृष्टि की एकाग्रता का ही अर्थ है,
इसलिए नासिकाग्र नहीं, बल्कि नासिकाग्र
की ठीक सीध की दिशा में ज्ञान मात्र के निमित्त भलीभाँति स्थिर होने की बात
पर ही नासिकाग्र का प्राकृतिक संकेत पूर्ण होता है,
(आरंभिक अभ्यास के दौरान नासिकाग्र की सीध में श्वास के ज्ञात होने में स्थिरता का निमित्त मापदंड पूरा करना आवश्यक है,)
यहाँ गीताकार के नासिकाग्र की बात का अनावश्यक खंडन नही है,
बल्कि उससे सीधे व सही दिशा में नासिकाग्र के प्राकृतिक संकेत को
पूर्ण किया गया है |
(यहाँ पर किसी के लिए भी निंदात्मक दृष्टिकोण नही है, अपितु सम्यक् यथार्थ स्पष्टता हेतु, सम्यक् कल्याणार्थ ऋत् संगत न्याय किया गया है,
(अभी इस समय जो आना हुआ है, यह उस उद्देश्य का अभी आरंभिक चरण ही है, और इसके लिए भी, कि इससे पहले जो आना हुआ था, उस समय जो कुछ भी अपूर्ण रह गया, उसे और सीधे, और सही दिशा में पूर्ण कर सके |)
ध्यान रहे, ध्यान साधना प्राकृतिक संकेत की दिशा के आधार पर हो, अप्राकृतिक नही, प्रकृति विरुद्ध नही,
अतिरिक्त दबाव नही बनना चाहिए,
कृत्रिम अध्यारोपित साधना में ही अप्राकृतिक अर्थात् प्रकृति विरुद्ध अतिरिक्त दबाव बनता है,
अनध्यारोपित सहज स्वाभाविक संकेत की दिशा में निमित्त होने पर प्रकृति विरुद्ध अतिरिक्त दबाव नही बनता,
और इसलिए अतिरिक्त ऊर्जा का व्यय भी नही होता,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे संकेत के आधार पर उत्तरोत्तर सीधा सा सीधा
मार्ग स्पष्ट होता जाता है |

22 September 2020

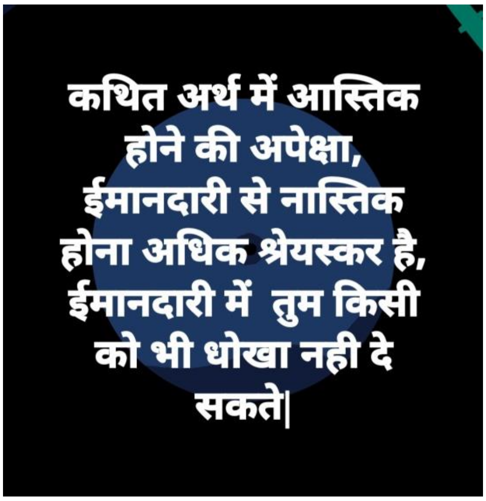

22 September 2020

सामान्यतः जब तुम श्वास पर ध्यान देते हो, तब तुम्हें श्वास संबंधित दबाव महसूस
होता है, क्योंकि सामान्यतः जब भी तुम श्वास पर ध्यान देते हो, तब तुम वहाँ श्वास के संदर्भ में
देखने वाले होते हो, जानने वाले होते हो,
इसलिए स्वाभाविक है,
जब तक तुम देखने वाले हो, जानने वाले हो,

इसका दबाव यथा सहज श्वसन प्रक्रिया
को प्रभावित करेगा ही,
जब तुम्हारी बस सहज ही उपस्थिति भर होती है,
तब तुम न देखने वाले होते हो, न जानने वाले होते हो,
बस सहज ही सीधे दिखना हो रहा है,
बस सहज ही सीधे जानना हो रहा है,
उसमें बस तुम्हारी बस उपस्थिति भर
ही होती है,
ऐसी स्थिति में तब दबाव का तो प्रश्न ही नही होता,
तब न यथा सहज श्वसन प्रक्रिया पर दबाव पड़ता है,
और न ही यथा सहज चैतसिक प्रक्रिया पर दबाव पड़ता है,
श्वास व चित्त के आयाम में सहजता व संतुलन पूर्ण रहता है,
अर्थात् जीवन का सहज ही केन्द्रीय संतुलन.......
आरोपित कर्ता भाव के दबाव से ही यथा सहज संतुलित श्वसन प्रक्रिया व यथा सहज संतुलित चैतसिक
प्रक्रिया प्रभावित होती है, और सहजता व
संतुलन भंग होता है,
बस ज्ञात भर होने में उपस्थित भर होने की भूमिका के प्रति तुम ईमानदार नही हो, अज्ञ मनुष्यों द्वारा स्थापित कृत्रिमता के जाल में तुम आजीवन उलझे रहते हो,
जीते जी यथार्थ सत्य अनुसंधान से चूक जाते हो, यह बहुत बड़ी हानि है|
बस ज्ञात भर होने में उपस्थित भर होने में
यथा सहजता पूर्ण है,
श्वास अपनी जगह पर यथा सहज है, यथा संतुलित है, चित्त अपनी जगह पर यथा सहज है, यथा संतुलित है,
पर तुम अपनी जगह पर सहज नही हो,
संतुलित नही हो,
इसके लिए तुम ही जिम्मेदार हो,
तुम अपने ही द्वारा किए अध्यारोप के दबाव से असहज हो, असंतुलित हो,
जिससे तुम्हारी श्वास और चित्त दोनों ही प्रभावित है,
निःसंदेहतुम अपने ही द्वारा किए गए अध्यारोप से दिग्भ्रमित हो, और यथार्थ सत्य स्पष्टता से वंचित हो,
बेशक तुम अपने द्वारा किए गए शिर्क से गुमराही में हो, और हक ए ला शरीक से महरूम हो,
सहज उपस्थिति से इतर
सापेक्षिक दबाव में < अपेक्षित दृष्टिकोण से जो कुछ भी तुम कहते हो, वह सब अध्यारोप की ही सीमा में है,
कुरान में जिस तरह से अल्लाह के बारे में जिक्र है,और उस अल्लाह का दावा है,
जिस तरह से वह वही भेजता है, हुक्म देता है, फैसला करता है, हिदायत देता है, व दुश्मनों से चाल भी खेलता है,
जिसको चाहता है, सीधी राह दिखाता है,
जिसे चाहता है, गुमराह करता है,
मोमिनों व काफिरों के दरम्यान फर्क करता है, हमेशा के लिए जन्नत, हमेशा के लिए दोजख देने वाला है, व इस तरह के नजरिए की और भी जो बातें हैं,
सापेक्षिक दबाव में <अपेक्षित दृष्टिकोण में ही ऐसा यह सब सिद्ध है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता (के) निमित्त ज्ञान मात्र में नही,
भले ही अपौरुषेय सम्यक् धर्म के अनुसार यह सब अध्यारोप की सीमा में है,
पर...... लोकदृष्टि (दुनियावी नजर) के अनुसार अल्लाह को ला शरीक कहने वाले अरब, मिस्र आदि के अहले बुतपरस्त, अहले शिर्क परस्त के मुकाबले, और इस तरह के और भी अन्य काफिरों के मुकाबले बेशक वे हक में हैं, सीधे राह में है,
इसलिए वे अगर कुरान के अनुसार अल्लाह को ला शरीक कबूल
करते हैं, बंदगी करते हैं, नमाज पढ़ते हैं, जकात देते हैं, परहेजगारी करते हैं, पाक,साफ रहते हैं,
तो यह उनके लिए एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त है,
जब तक कि लोक में पूर्ण केन्द्रीय सत्य का मार्ग सम्यक् संकेतार्थ स्पष्ट न हो जाए, तब तक,
जब तक कि मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का
धर्म स्पष्ट न हो जाए, तब तक,
फिर सभी को सम्यक् धर्म अनुशासन
में ही आना है |
अंत रहित सही ओर की पूर्णता ओर ही

सही मायने में मुकम्मल तौर पर
ला शरीक का इशारा है, और उसी ओर तुम्हारा मुकम्मल ईमान हो, पूर्ण निष्ठा हो, पूर्ण समर्पण हो,
मात्र यथार्थ सत्य ओर ही समर्पित रहो,
जो सहज उपस्थित नही है,
जो आरोपित किया गया है, स्थापित किया गया है, उसकी उपासना से विरत रहो|
नोट- साधारण जन सम्यक् देशना से अभिप्रेरित हो सकते हैं,
पर शुद्धि पूरी होने से पूर्व अनुकरण करना
जन साधारण के यथा संतुलन को बाधित कर सकता है|
पहले व्यवहारिक सत्यता की ईमानदारी को पूर्ण करो|

23 September2020

ध्याता,ध्यान व ध्येय का
एक हो जाने की भावना ही सामान्यतः ध्यान के संदर्भ में प्रचलित है,
पर यह कृत्रिम अध्यारोपित भावना है,
सम्यक् अर्थ में ध्यान नही है,
सम्यक् अर्थ में ध्यान कोई कृत्रिम भावना में भावित होना नही है,
अलग से कोई कृत्रिमता का नया आरंभ करना नही है,
क्योंकि अनारंभ से ही हर आरंभ के आरंभ में नासाग्र की ठीक सीध में ज्ञान मात्र की साम्यता में निमित्त मात्र की बस उपस्थित भर होने में सहज स्वाभाविक स्थिति है ही,
न ध्याता, न ध्येय, न संबंधित ध्यान, बस ज्ञान मात्र ही शेष स्पष्ट है,
लेकिन कृत्रिम अध्यारोप का नया आरंभ कर तुम ज्ञान मात्र की साम्यता > सहज स्वाभाविक स्थिति से गिर गए,
बस कृत्रिम अध्यारोप के हटने की देरी भर है, सहज स्वाभाविक स्थिति स्पष्ट है,
लोक में कोई किसी की लीला, चरित्र, जीवनी आदि की कल्पना कर उसमें भावित हो रहा है, कोई किसी मंत्र जप की भावना में भावित हो रहा है,
तो कोई द्वैत, अद्वैत आदि मत की भावना में भावित हो रहा है,
इस तरह हर कोई अन्य किसी न किसी आरोपित कृत्रिम् भावना के भावनात्मक सम्मोहन में दिग्भ्रमित है, और पूर्ववत् दुःखद भव चक्र को प्राप्त है,
परंतु जो कोई भी कृत्रिम अध्यारोप के पाप से निष्पाप है, निर्दोष है, शुद्ध है, पवित्र है, वही भावनात्मक सम्मोहन से > दिग्भ्रम से मुक्त = (मुक्ति) है |

23 September 2020

सामान्यतः जब भी तुम देखते हो,
समय व दूरी के अंतराल में ही देखते हो,

जिससे किसी भी संदर्भ में यथावत् सम्यक् दर्शन स्पष्ट नही हो पाता है,
जब तक तुम अलग से देखने वाले
रहोगे, तब तक समय व दूरी का अंतराल
बना ही रहेगा|
जब तुम सूर्य को देखते हो, तो लगभग आठ मिनट के अंतराल में देखते हो,
तब वह वास्तविक सूर्य नही, बल्कि सुर्य का स्पंदित आभास ही होता है,
यह तो बस एक स्थूल उदाहरण ही है,
इसी तरह समय व दूरी के अंतराल में
तुम्हें तथ्य के संदर्भ में वास्तविक दर्शन कभी भी नही हो पाता,
बल्कि तथ्य के संदर्भ में स्पंदित आभास ही होता है,
इसलिए जब तक तुम देखने वाले हो, तब तक समय व दूरी का अंतराल बना ही रहेगा,
जब सीधे ही मात्र दर्शन के निमित्त हो जाओगे,
तब समय व दूरी का अंतराल नही रह जाएगा,
और तब सीधे ही यथार्थ दर्शन स्पष्ट है, सम्यक् अर्थ में यथार्थ दर्शन स्पष्ट होने पर
किसी भी संदर्भ में कोई भ्रम, कोई संशय,कोई अज्ञान नही रह जाता है,
पूर्णतः सत्य स्पष्ट है|
पर जब तक तुम देखने वाले हो,
जो कुछ भी तुम देख रहे हो,
जो कुछ भी तुम जान रहे हो, सब कुछ अस्पष्ट है, और सदा अस्पष्ट ही रहेगा,
जब तक पूर्ववत दृष्टिकोण बना हुआ
है, तब तक कदापि
सम्यक् यथार्थ दर्शन स्पष्ट नही हो सकता,
पूर्ववत दृष्टिकोण के सम्मोहन में पूर्ववत् ही भासित होता है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्ट दर्शन नही,
अगर यथावत् जैसा है, ठीक वैसा ही स्पष्ट दर्शन चाहते हो, तो सीधे ही जो जैसा है, उसे अपनी दृष्टि से नही,
बल्कि मात्र सही-सही ओर से ही दिखने के निमित्त हो जाओ, तभी यथावत जैसा है, ठीक वैसा स्पष्ट होगा,
कहने के लिए यह बहुत आसान सी बात लगती है,
पर ऐसा होना जटिल व्यक्ति के लिए बहुत
ही कठिन है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त,
जब सम्यक् यथार्थ ओर पूर्ण समर्पण होता है, जब पूर्ण सहजता होती है, जब पूर्ण सरलता होती है,
तब ही सम्यक् यथार्थ स्पष्ट होता है,
उससे पहले नही,
असल में दिखना अपनी तरफ से नही है,
मात्र सत्य ओर से ही दिखना हो रहा है,
उसमें बस तुम्हारी उपस्थिति भर की भूमिका है,
ऐसी स्थिति में अध्यारोप कदापि संभव नही, सीधे ही निभ्रान्त जैसा है,
ठीक वैसा स्पष्ट है,
परंतु सापेक्षिक दबाव में ही तुम्हें
अपनी तरफ से देखने की भ्रान्ति हो रही है, तुम अपने को देखने वाला मान रहे हो,
ऐसा होने पर तुम्हारा अपनी तरफ से आरोप होना, अध्यारोप
होना स्वाभाविक है|
सामान्यतः आरोपित दृष्टि से तुम्हारे देखने की गति लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड है,
पर सीधे ही दिखने के निमित्त उत्तरोत्तर कम से कम समय में संभलने पर यह गति अपरिमित सीमा तक बढ़ सकती है,
समर्पण पूर्ण होने पर अपनी तरफ से नही,
वरन जिस ओर समर्पण होता है,उसी ओर से दर्शन होता है,परिचय होता है|
निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में भूमिका स्पष्ट होने पर ही निमित्त अर्थात् पुरुष की पूर्ण शुद्धि है,
निमित्त की अर्थात् पुरुष की अपनी पूर्ण विशुद्धि में ही सम्यक् अर्थ में कैवल्य है,
निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में भूमिका स्पष्ट होने पर कर्ता भाव की जरा भी मलिनता नही रहती,
द्रष्टा का, साक्षी का अलग से आरोप भी नही रहता,

तब पूर्णतः पूर्ण निर्दोषता, पूर्णतः पूर्ण निष्पापता, पूर्णतः पूर्ण निर्मलता, पूर्णतः पूर्ण विशुद्धता, पूर्णतः पूर्ण पवित्रता, पूर्णतः पूर्ण स्पष्टता, पूर्णतः पूर्ण पारदर्शिता है,
पूर्णतः पूर्ण सम्यक् समाधान है,
सीधा ही सत्य जैसा है, वैसा स्पष्ट है,
किसी भी अर्थ में कोई भ्रान्ति नही,
कोई संशय नही,
कोई संदेह नही,कोई अज्ञानता नही,कोई दुःख नही, कोई क्लेश नही.............

24 September 2020

केवल सुनना व समझना भर पर्याप्त नही है, प्रत्यक्षतःअभ्यास में उतरना ही पड़ेगा,
बिना प्रत्यक्ष अभ्यास में उतरे गति नही है, ध्यान प्रत्यक्ष अभ्यास है, ध्यान कोई पाठशालाओं का विषय नही,
जो सुन लिया, पढ़ लिया, समझ लिया, याद कर लिया, और उत्तीर्ण हो गए,
ध्यान, विज्ञान से भी अधिक स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है, प्रायोगिक है,उपयोगी है,
लेकिन सही दिशा में, सही अर्थ में ध्यान के संदर्भ में लोक में उपदेश नही है,
सामान्यतः लोक में ध्यान के संबंध में किसी न किसी अध्यारोपित कृत्रिम भावनीय भावना में भावित होना
ही ध्यान है, ध्येय से तदात्म्य हो जाना, एक हो जाना ही सामान्यतः लोक दृष्टि में ध्यान का प्रयोजन है, अभीष्ट है,
सामान्यतः ध्यान को लोक दृष्टि में एकाग्रता के अर्थ में लिया गया है,
पर सम्यक् अर्थ में जो ध्यान है, वहाँ किसी से तदात्म्य होना नही है,
किसी से एक होना नही है,
बल्कि सीधे ही यथावत् " जैसा है,ठीक वैसा ही" >> ज्ञात भर होने में उपस्थित भर होना है,
जैसा है,ठीक-ठीक वैसा ही स्पष्ट होने में पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शिता है,जरा भी संबंधित अर्थ ग्रहण नही है, विशुद्धतः बस केवल ज्ञात भर होना ही शेष स्पष्ट है,
>> (विशुद्धतम् बस स्पष्ट भर होना,)
किसी भी अर्थ में जरा भी भ्रम नही, जरा भी संशय, जरा भी संदेह नही, जरा भी दिग्भ्रम, जरा भी अज्ञान नही,
एकता से संबंधित किसी भी भावनीय भावना में तदात्म्य होने पर ही एकता की भ्रांति होना स्वाभाविक है,
एकता की भ्रांति तदात्म्य होने वाले को ही होती है,
पर इससे तथ्य की तथता में कोई प्रभाव नही पड़ता, इससे तथ्य की तथ्यता > तथता में कोई अंतर नही आता,
अपनी ही धारणा में भावित होने पर >> तदात्म्य होने वाले भाविक को भावित भावना के सम्मोहन में एकता का
दिग्भ्रम होता है,
चाहे ब्रह्म संबंधित धारणा में एकता की भावना हो,
चाहे शून्यता की धारणा में शून्यवत् होने की भावना हो,
तदात्म्य होने से सम्मोहन में तदाकार की भ्रांति का होना स्वाभाविक है,
भावनात्मक सम्मोहन का प्रभाव नाम-रूप के आभास की सीमा तक है,
जहाँ तक तुलनात्मक दृष्टि का हस्तक्षेप है, सापेक्षिक बुद्धि का हस्तक्षेप है,
वहीं तक ही तदात्म्य होने की सीमा है, सम्मोहन की सीमा है,
इससे सीधे के आयामों में इसका प्रभाव नही पड़ता, तथ्य की तथता पर इसका प्रभाव नही पड़ता है,
ज्ञात भर होने में इसका जरा भी प्रभाव नही पड़ता है,
तदात्म्यता में होने पर ही द्वैत-अद्वैत आदि अध्यारोपित कृत्रिम् धारणाओं
का सम्मोहन रहता है, और सम्मोहन में दिग्भ्रम का होना स्वाभाविक है,
इसलिए सम्मोहन में सीधे ही जो तथ्यगत् स्पष्टता है, उससे चूकना स्वाभाविक है,
असल में जो जिस समय,जिस जगह, जिस अर्थ में है,
वह उसी समय,उसी जगह,उसी अर्थ में है,
बस यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाए बस,
इसके लिए अलग से भावित नही होना पड़ता है,
ठीक सामने, ठीक सीध में जो जिस समय, जिस जगह, जिस अर्थ में है,
उस ठीक सीध (line, length, timing in the perfect < correct present) में उपस्थित भर होने से उसकी उस समय, उस जगह, उस अर्थ में निभ्रान्ततः पूर्ण पारदर्शिता स्पष्ट है,
कोई भ्रम नही, कोई,संशय नही, कोई संदेह नही, कोई अज्ञानता नही,
पूर्ण निभ्रांत सत्यता स्पष्ट है,
पर एक है, कहो, या अलग है, कहो, यह तुम्हारा अपना आरोप है, तुम्हारा अपना सापेक्षिक दृष्टिकोण है,

तुम समदृष्टि रखो,या विषम दृष्टि रखो,
यह तुम्हारा अपना आरोप है, तुम्हारा अपना दृष्टि दोष है, तुम्हारा अपना दिग्भ्रम है,
तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् है,
तथ्य की ओर से सम, विषम,उच्च,निम्न,द्वैत-अद्वैत आदि कुछ भी नही है, तथ्य की ओर से सीधे ही निभ्रांततः तथ्य की तथ्यता स्पष्ट है,
यह सब तुम्हारा अपना आरोप
है, यह सब अध्यारोपित शास्त्रों का अध्यारोप है,
समता, विषमता, उच्चता, निम्नता तुलनात्मक बुद्धि का निर्णय है, सत्य नही,
तथ्य अपनी तथ्यता में न सम है, न विषम है,
तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् है,
जब तक तुम्हारा सम,विषम, द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण है,
तब तक कभी भी यथावत् स्पष्ट नही हो सकता, तुम अपने ही द्वारा निर्मित स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित होकर दुःख व शोक को प्राप्त हो,
इसलिए अपनी तरफ़ से सम अथवा विषम किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण से
नही देखना,(पहले से ही सम, विषम आदि का निर्धारण नही करना,)
बल्कि यथावत् दिखने के निमित्त सत्यता को पूरा करना, ईमानदारी को पूरी करना,
जब सत्यता पूरी होगी, ईमानदारी पूरी होगी,
तब सम, विषम,द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित आरोपित दृष्टिकोण से देखने की बेईमानी नही होगी,
इसलिए सम्यक् यथावत् स्पष्टता के निमित्त रहो,
इसी में तुम्हारा सही अर्थ में कल्याण है,
सामान्यतः अब इस समय में,जो जिस अर्थ में जैसा है,
उसे इससे पहले के समय में, जो जिस अर्थ में जैसा था, उसकी अपेक्षा में, उसकी तुलना में देखने पर इस समय में, जो जिस अर्थ में जैसा है,
उस संदर्भ में यथावत् सत्यता स्पष्ट नही हो सकती,
तुम्हारे अपेक्षित, तुलनात्मक दृष्टिकोण से तथ्य का तो कुछ नही बिगड़ेगा,
परंतु तुम अपने अपेक्षित, तुलनात्मक दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित अवश्य हो जाओगे,
लोकदृष्टि में लोकाचार के अध्यारोपित धर्मों में, अध्यारोपित धर्म पुस्तकों में समता को, समदृष्टि को बहुत ही महत्व दिया गया है,
लोकदृष्टि में इसका सम्मोहन बहुत ही प्रबल है, इसलिए तुम्हें इसके उदाहरण स्वरूप सावधान करना बहुत ही आवश्यक है,
लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई के जिस आयाम में तुम जी रहे हो, उस आयाम के सापेक्षिक वर्तुल में सम, विषम, ऊँच, नीच के सत्य होने के दृष्टिभ्रम का होना स्वाभाविक है,
पर यथार्थ में क्या है,
यह इस आयाम में कदापि स्पष्ट नही हो सकता,
भले ही एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त यह सार्थक है,
पर (एक सीमा के बाद) सम्यक् यथावत् स्पष्टता में बाधक है,
क्योंकि है तो सापेक्षिक दिशा का ही दिग्भ्रम!!!!!
तुलना के लिए दो अंतों का होना स्वाभाविक है,
तभी किसी की किसी से समता अथवा विषमता की बात हो सकती है,
पर दोनो ही (सभी अंतों) के आर-पार के दर्शन में न समता की सीमा है, न विषमता की सीमा है,
न ऊँच की सीमा है, न नीच की सीमा है,
निभ्रांत जैसा है, वैसा स्पष्ट है|
सम,विषम, ऊँच, नीच
यह तुम्हारा ही अपेक्षित, तुलनात्मक दृष्टिकोण है, सम्यक् यथार्थतः नही.........

25 September 2020

सामान्यतः जब भी तुम किसी को देखते हो,
तो तुम नाक के आगे के भाग की सीध में होकर ही देखते हो,
तभी तुम्हारे उस देखने में संतुलन होता है, और उस देखने में स्थिति होती है,
अगर ऐसा न होता, तो न तो तुम्हारे देखने में संतुलन बन पाता,
न ही तुम्हारे देखने में स्थिति बन पाती,
और न ही तुम्हें भलीभाँति सुनिश्चित कुछ दिखाई देता, इतना ही नही,

तुम्हारे उठने,बैठने, चलने इत्यादि हर व्यवहार में संतुलन ही नही बन पाता,
(तुम कभी गौर करना, जब तुम किसी सुनिश्चित विंदु को जितना ही भलीभाँति एकाग्रता से, भलीभाँति स्थिरता से देखते हो, स्वाभाविक तौर पर तुम्हारी दृष्टि नाक के अग्रभाग की सीध पर और भलीभाँति स्थिर हो जाती है, तभी वह विंदु भलीभाँति ठीक-ठीक दिखने में आता है,भलीभाति
ठीक-ठीक जानने में आता है,
अगर तुम समझदार हो,
तो इसमें स्वाभाविक योग, स्वाभाविक ध्यान के संदर्भ में प्राकृतिक संकेत है, कुदरती इशारा है,)
>> इन सब बातों को गंभीरता से लेना,
इसे नजरअंदाज नही करना,
क्योंकि इसी प्राकृतिक संकेत के परिपेक्ष्य में,
तुम्हारे जीवन की दिशा व दशा निर्भर है,
इसमें सही अर्थ में, सही दिशा में, सही उद्देश्य के लिए वह संकेत छिपा है,
वह जो अन्यत्र कहीं भी नही,
किसी भी धार्मिक, दार्शनिक शास्त्रों में भी नही,
तुम्हें इस सामान्य, सीधे, प्राकृतिक > व्यवहारिक संकेत से प्रेरित होना चाहिए,
सामान्य सीधे प्राकृतिक व्यवहार के प्रति यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए संवेदनशील रहना चाहिए,
यहीं से तुम्हें तुम्हारे जीवन की सही दिशा के लिए सम्यक् संकेतार्थ --> मार्ग स्पष्ट होगा,
इसमें सहज प्राकृतिक योग के लिए संकेत है,जो संतुलन व स्थिति का आधार है,
यह तुम्हारे सही अर्थ में कल्याण के लिए प्राकृतिक शिक्षा
है, जो किसी भी विद्यालय में संभव नही,
पूरे विश्व में किसी भी धर्म, दर्शन,विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र में ऐसा प्राकृतिक शिक्षण नही है,
यहीं से तुम्हें जीवन के पूर्ण केन्द्रीय संतुलन हेतु, पूर्ण केन्द्रीय स्थिति लाभ हेतु नाक के आगे के भाग की ठीक सीध में दृष्टि के भलीभाँति संयम के लिए &
दृष्टि की भलीभाँति एकाग्रता के लिए, दृष्टि की भलीभाँति स्थिरता के लिए स्वाभाविक प्रेरणा प्राप्त होती है|
आज के समय में तरह -तरह की कृत्रिम् जटिल योग पद्धतियों का लोक दृष्टि में प्रचार व प्रसार है,
पर आश्चर्य इस बात का है, इस सीधे से सामान्य स्वाभाविक योग में सामान्यतः जन सामान्य का ध्यान नही जाता है |
योग किस अर्थ में क्या है, कैसे है, किसका है,
योग से संतुलन कैसे बनता है, और संतुलन से यथा स्थिति कैसे बनती है, इस संदर्भ जो संकेत >>
>>इस सीधे सामान्य प्राकृतिक < व्यवहार में है,
वह कहीं भी नही,
दृष्टि का ठीक ज्ञान मात्र (ज्ञात भर होने) के ठीक सीध में होना ही सही अर्थ में योग है (,प्रचलित शास्त्रीय अर्थ में नही,)
अचानक अगर तुमसे कहा जाए,
कि तुम्हारा ध्यान किधर है,
यह सुनते ही उस समय तुम धर्म शास्त्र को उठाकर नही देखते हो, किसी दार्शनिक व्याख्या को नही लेते हो,
ध्यान को सीधे सामान्य व्यावहारिक अर्थ में ही लेते हो,
बस उसी सीधे सामान्य अर्थ में यहाँ ध्यान के संदर्भ में संकेत ग्रहण करो, >>
>> सामान्यतः तुम्हारी ध्यान की दृष्टि जहाँ होती है, स्वाभाविक रूप से वहाँ उस दिशा में तुम्हारी बुद्धि भी होती है, और तुम्हारा मन भी होता है,
ज्ञान मात्र की ठीक सीध में जैसे ही पूरा ध्यान होता है,
तो उस ठीक सीध में बुद्धि का, मन का नियंत्रित रहना स्वाभाविक है,
सामान्यतः जब भी, जहाँ भी तुम्हारा ध्यान होता है, ज्ञान की सीध में ही होता है,
तभी तुम्हारे व्यावहारिक संतुलन की औपचारिकता पूरी होती है, अगर ऐसा न होता तो,व्यवहार में संतुलन बन ही नही पाता,
पर कमी यही है, तुम्हारा ध्यान कहीं भी एक जगह पर भलीभाँति पूर्णतः स्थिर नही हो पाता, संबंधित हो बँटता ही रहता है,
संबंधित ध्यान में संबंधित ज्ञान ही संभव है,
मात्र ज्ञान नही,
इसलिए तुम्हारा ध्यान इतना ही स्थिर हो पाता है, जिससे बस तुम्हारी व्यावहारिक अर्थ में जीवन जीने की औपचारिकता भर पूरी हो सके,
यह ध्यान रहे,
नासाग्र की ठीक सीध में >> श्वास के अग्र भाग की ठीक सीध में ही ध्यान की स्वाभाविक रूप से पूर्णतः स्थिरता संभव है, उससे इतर सापेक्षिक दबाव में ध्यान का संबंधित हो बँटना स्वाभाविक है,
इसलिए सापेक्षिक दबाव में > संबंधित अर्थ में ध्यान कभी भी पूर्णतः स्थिर नही हो सकता,

इसलिए नासाग्र की ठीक सीध में > श्वास के अग्र भाग की ठीक सीध में ही पूरा का पूरा ध्यान रहे,
आरंभिक अभ्यास में जिस दिशा में, जिस सीध में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उसी दिशा में, उसी सीध में पूरी तरह से रहना है,
जब जैसे ही ठीक उस दिशा में, उस सीध में भलीभाँति स्थिरता पूरी होगी
तब उससे भी सीधी सीध स्पष्ट होगी,
फिर वहाँ उस सीधी सीध में भी भलीभांति स्थिरता पूरी होने पर
उससे भी सीधी सीध स्पष्ट होगी,
ध्यान रहे,
जब तक सबसे सीधी सीध स्पष्ट न हो जाए, तब तक उत्तरोत्तर यह क्रम जारी ही रहे,
जब सबसे सीधी सीध में सबसे कम समय में >सबसे निकट के वर्तमान में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति पूर्ण होती है,
तब उस सबसे सीधी सीध में, सबसे कम
समय में, सबसे निकट वर्तमान में सबसे शुद्ध ज्ञानमात्र ही स्पष्ट है,
जब सबसे सीधी सीध में जहाँ सीध की अंतिम सीमा भी पूरी हो जाती है,
तब उस पूर्णता में न दो अंत हैं, न दो अंतों के
मध्य का अंतराल है, न संबंधित सीध है,
न ही वक्रता है,
इसलिए सीध नही, बल्कि
सीध की पूर्णता = ठीक जैसा है, वैसा ही|

26 September 2020

अनुत्तर सम्यक् मार्ग जरा भी अंधविश्वास पर आधारित नही है,
जरा भी कल्पना, परिकल्पना पर आधारित नही है, अनुत्तर सम्यक् मार्ग कोई स्थापित धर्मों की तरह अध्यारोपित कृत्रिमता का जाल नही है,
अनुत्तर सम्यक् मार्ग कोई दर्शन शास्त्र की तरह बौद्धिक व्यायाम भर नही है,
प्रत्यक्ष प्रायोगिक कसौटी में परिकल्पना से अभिप्रेरित वैज्ञानिक प्रयोगों से भी अधिक प्रत्यक्ष, स्पष्ट, प्रमाणिक, खरा व लाभप्रद है|
सामान्यतः जब कोई सीढ़ीदार मार्ग में चलता है,
जब तक नीचे वाली सीढ़ी में पैर भलीभाँति जम नही जाता, भलीभाँति स्थिरता पूरी नही हो जाती, तब तक उससे ऊपर वाली सीढ़ी पर पैर नही रखता, भलीभांति स्थिरता पूरी होने पर ही उससे ऊपर वाली सीढ़ीं ं पर पहले एक पैर रखता है, ऐसा नही कि दोनों पैर एक साथ रखता है, एक पैर नीचे वाली सीढ़ी में ही रहता है, और जब तक ऊपर वाली सीढ़ी में रखा हुआ पैर भलीभाँति जम नही जाता, नीचे वाली सीढ़ी पर रखा पैर नही उठाता, ऊपर वाली सीढ़ी पर रखा पैर
जब भलीभाँति जम जाता है, तभी नीचे वाले पैर को उठाता है, ऊपर वाली सीढ़ी पर जमा हुआ पैर नीचे वाले पैर को उठाने में बल की भूमिका निभाता है, और नीचे वाले पैर को उठाने में आसानी महसूस होती है, सहजता महसूस होती है,
जब कभी तुम सीढ़ी पर चढ़ो तो, इस संदर्भ में अवश्य ही यथा सहजता में सजग रहते हुए भलीभाँति अवलोकन करना,
उर्ध्वगमन संकेतार्थ व्यावहारिक क्रिया के उपरोक्त इस उदाहरण में सम्यक् मार्ग
में चलने के लिए क्रमशः उत्तरोत्तर स्थिरता का मापदंड पूरा करने के लिए सहज प्राकृतिक संकेत है,
ऋत् अभिप्रेरितों के लिए सीधे व सही मार्ग के लिए ही ऋत् अभिमुख संकेत है,
अन्य तो सापेक्षिक प्रपंच के वशीभूत परतंत्रता में हैं|
सामान्य व्यावहारिक क्रिया - कलापों में ठीक सीधे मार्ग के लिए सहज ही प्राकृतिक संकेत हैं,
अगर निर्दोष दृष्टि हो, सरलता हो,
तो यह सहज ही दिख जाता है,
पर अध्यारोपित दृष्टि में कदापि सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही हो सकता है, अध्यारोपित सापेक्ष ज्ञान, अध्यारोपित शास्त्रीय ज्ञान दंभ, दुराग्रह व अहंकार से बांधता है,
साधारण जनों के दैनिक क्रिया- कलाप मूर्छा में यंत्रवत् तल्लीनता में, तदात्म्यता में ही सम्पन्न होते हैं,
पर भलीभाँति ठीक -ठीक यथावत् स्पष्टता के निमित्त हुआ जाग्रत पुरुष जब चलता है,
तब उसकी दृष्टि बिल्कुल नासिका के अग्रभाग की ठीक सीध की दिशा में ही होती है,
जरा भी दांए अथवा बाएं नही, जरा भी ऊपर अथवा नीचे नही, नासिका के अग्रभाग की ठीक सीध की दिशा में सहज श्वास के ज्ञान की ठीक सीध की दिशा में ही अविचल , स्थिर होती है,
वहाँ सहज स्वाभाविक ठीक सीध में, पूर्ण केन्द्रीय दृष्टि होने से आगे- पीछे, दांए- बाएं, ऊपर नीचे सभी दिशाओं में भलीभाँति नियंत्रण रहता है,
जहाँअपने केन्द्र में रहते हुए,एक ही साथ हर दिशा का सम्यक् बोध बना रहता है, भलीभाँति पूरा संभलना बना रहता है,

ऊपर-. नीचे, दांए- बाएं, आगेे- पीछे
ये सभी दिशायें सापेक्षिक दबाव में भासित हैं,
पर नासिका के अग्रभाग के ठीक सीध की दिशा
(ठीक ४५ अंश के कोण में,) सापेक्षिक दबाव में नही है,
यह सभी सापेक्षिक दिशाओं का केन्द्र है, पूर्णता है, ठीक केन्द्र में दृष्टि होने से सहज ही पूरा सापेक्षिक वर्तुल एक साथ दिखता है,
(सार अर्थ में, पूर्ण सच्चाई के अर्थ में)
सम्यक् अर्थ में जाग्रत पुरुष जब भी चलता है,
यथा सहजता में सहज रहते हुए पूर्ण संतुलन के साथ मघ्यम गति में चलता है, न तेज, न धीमे,
और जब भी चलता है, सबसे पहले दाहिना पैर पहले रखता है, चलना इतना संतुलन में होता है, इतना अनुशासित होता है, व्यवस्थित होता है, कि कमर से ऊपर के सभी अंग यथा सहजता में स्थिर रहते हैं, जरा भी कंपन नही होता है,
स्मृति की सही दिशा में,सही अर्थ में जागरुकता पूर्ण रहती है,
सम्यक् अर्थ में जाग्रत पुरुष जब भी बैठता है, तो यथा सहजता में सीधा स्थिर होते हुए बैठता है,
जब पालथी मारकर पद्मासन में बैठता है, तब बायां पैर नीचे व दाहिना पैर उसके ऊपर होता है, रीढ़ की हड्डी व गर्दन की हड्डी यथा सहजता में (न अधिक ढीलेपन में और न ही अधिक सख्ती में) एक सीध में सीधे स्थिर रहती है,
बाहर से आसन में स्थिरता पूर्ण रहती है, और भीतर से ज्ञान मात्र की पूर्णता में भलीभाँति स्थिरता पूर्ण रहती है,
सम्यक् अर्थ में जाग्रत पुरूष जब भी (२४ घंटे में एक बार वह भी मध्याह्न में) भोजन करता है, तब न अधिक मात्रा में भोजन करता है, और न कम मात्रा में,
भोजन को भलीभाँति चबाने के बाद ही उसके द्वारा दूसरा कौर ग्रहण होता है, भोजन प्रक्रिया ठीक संतुलित मध्यम गति में ही होती है, ठीक संतुलन में, बिल्कुल अनुशासित ढंग में,
पूरे भोजन प्रक्रिया में भोजन के परिमाण, भोजन की गुणवत्ता, भोजन के रस, भोजन के स्वाद के प्रति भलीभाँति
ठीक -ठीक यथावत् स्पष्टता के निमित्त यथा सहजता में सजगता पूर्ण रहती है,
जिस कारण से भोजन की प्रक्रिया का, भोजन के रस का, भोजन के स्वाद का बस मात्र ज्ञान ही ग्रहण होता है,
पूर्ववत् अर्थ ग्रहण नही होता,
पूर्ववत् भोग भावनात्मक अर्थ ग्रहण नही होता, आसक्ति ग्रहण नही होती, तन्मयता ग्रहण नही होती,
भलीभाँति ठीक - ठीक यथार्थ स्पष्टता के निमित्त यथा सहजता में सजग रहने वाला अर्थात् सम्यक् अर्थ में जाग्रत पुरूष जब भी लेटता है,
भलीभाँति ठीक -ठीक यथा स्पष्टता के निमित्त ही यथा सहजता में पूर्ण यथा सजग रहते हुए जमीन में पीठ न लगाते हुए दांए करवट में लंबवत् होकर लेटता है,
सम्यक् अर्थ में पूर्ण जाग्रत पुरुष का उठना, बैठना, चलना, फिरना, बोलना आदि सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ण यथार्थ बोध में, पूर्ण यथा संतुलन में ही संपादित होता है, जरा भी मूर्छा, जरा भी प्रमाद नही
होता,
(पूर्ण यथार्थ बोधपूर्वक.......)
उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते हर क्षण, हर स्थिति, हर परिस्थिति में जिस क्षण जिस अर्थ में जो जैसा घट रहा है, वह ठीक उसी क्षण, ठीक उसी अर्थ में जो जैसा है, ठीक वैसा ही भलीभाँति पूर्णतः स्पष्ट हो, इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूरे होश में सजग रहो......
{अज्ञ जनों को उनके अपनी दृष्टिभ्रम में पूर्ववत् संबंधित अर्थ ही ग्रहण होता है, पर सम्यक् यथार्थ बोध में जाग्रत पुरुष
की दृष्टिकोण विशेष से मुक्ति होने से ऐसी सहज स्थिति में
बस ज्ञान मात्र ही (ज्ञात भर होना ही ग्रहण होता है,}
श्वास के जाने पर ही श्वास के आने के लिए दबाव बनता है, श्वास के आने व जाने के मध्य के अंतराल में ही दबाव बनता है, श्वास के आने व जाने के मध्य के अंतराल को स्थापित होने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में भलीभाँति संभलकर पुनः पुनः उपस्थित होते जाओ,
तो श्वास के साथ तदात्म्यता भंग हो जाएगी, पहले की अपेक्षा और होश,
और ताजगी, और स्फूर्ति, और सजगता, और सहजता,और सरलता,
और निर्दोषता, और शुद्धता, और पवित्रता, और पारदर्शिता, और स्पष्टता बढ़ेगी,
और साथ ही तदात्म्यता भंग होने से श्वास का पूर्ववत् आभास भी भासित नही होगा, बल्कि श्वास के संदर्भ में तथ्यगत् सच्चाई खुल जाएगी, और श्वास के संदर्भ में जो दबाव है, उस पर सहज ही नियंत्रण हो जाएगा...
पर यह इतने तक ही सीमित नही है,
यह तो बस आरंभिक अभ्यास में ही है, इससे भी सीधे उत्तरोत्तर सीधे से सीधे की स्थिति में उत्तरोत्तर सहजता है, सजगता है, सरलता है, ताजगी है, स्फूर्ति है, गति है, स्थिरता है, निर्मलता है, निर्दोषता है, निष्पापता है, शुद्धता है, पवित्रता है, पारदर्शिता है, स्पष्टता है |

27 September 2020

एक समय की बात है,
जब समुद्र मंथन भी नही हुआ था,
और तब तक देवताओं ने अमृत पान भी नहीं किया था,
इसलिए कहा जाता है, उस समय तक देवता अजर, अमर भी नहीं थे,
उसी काल में कालकेतु के नेतृत्व में असुरों ने देवताओं पर आक्रमण कर
दिया,
देवासुर संग्राम में दोनों ही पक्षों की बहुत हानि हुई, अपने-अपने पक्ष की हानि को देख,
दोनों ही पक्षों में एक संधि के तहत समझौता हुआ,
उस समझौते के अनुसार समुद्र मंथन का एक प्रस्ताव सामने आया, पहली बार दोनों ही पक्षों ने मिलकर समुद्र मंथन की तैयारी शुरू कर दी,
मंदराचल पर्वत को मथनी बनाया गया,
और उसे गहरे समुद्र में डाल दिया, उसी समय विष्णु ने विशाल कछुए का रूप धारण कर मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर ले लिया,
अब मंथन करने के लिए रस्सी का
कोई विकल्प न देख, उनमें से कुछ वासुकी नाग के पास गए, वासुकी नाग को
किसी प्रकार से इसके लिए तैयार किया गया,
वासुकी नाग ने शीघ्र ही मंदराचल पर्वत को अपने विशाल काय शरीर में लपेट लिया,
अब दोनों ही पक्षों में यह समस्या थी, कि समुद्र मंथन के लिए कौन सा पक्ष वासुकी नाग के सिर वाले भाग में रहे, और कौन सा पक्ष पूँछ वाले भाग में रहे,
देवताओं ने विचार किया, जब मंथन शुरू होगा,
उस समय घर्षण में असहनीय पीड़ा के दबाव में वासुकी नाग < dragon के मुख से भयंकर विष की झाग व ज्वाला अवश्य ही निकलेगी, इसमें अवश्य ही वह पक्ष
झुलसकर रह जाएगा, जो सिर वाले भाग की तरफ रहेगा,
देवता असुरों के अभिमान व दुराग्रह से परिचित थे,
उन्होंने एक युक्ति निकाली, और वे असुरों के पास गए, उन्होंने असुरों को कहा, देवता असुरों से श्रेष्ठ हैं, इसलिए वे शरीर के श्रेष्ठ भाग सिर वाले भाग की तरफ ही
लग सकते हैं,
यह सुनकर अभिमान व दंभ में चूर दुराग्रही असुर बौखला उठे,
और वे जिद करने लगे कि वे ही सिर वाले भाग की तरफ रहेंगे,
इस तरह देवता अपनी सूझबूझ में, अपनी चाल
में कामयाब हो गए,
यह कहानी सांकेतिक है, यहाँ इसे ऐतिहासिक साक्ष्य अथवा प्रमाण के आधार पर देखने की आवश्यकता नहीं है,
क्योंकि यह कहानी सही दिशा में,सही अर्थ में तुम्हारे विवेक वृद्धि
हेतु सांकेतिक अर्थ में ही अधिक प्रासंगिक है....
जहाँ असुरों के अहंकार, दंभ, दुराग्रह के संदर्भ में बात है, वहाँ संकेत स्पष्ट है...
अहंकार, दंभ व दुराग्रह के आवेग में विवेक दब कर रह जाता है, विवेक शून्य हो,अहंकार, दंभ, व दुराग्रह में
उन्मत्त असुर सिर वाले भाग की तरफ लग गए, और वासुकी नाग की भयंकर विष ज्वाला से झुलसकर रह गए,
इस कहानी में
देवताओं की सत्यता व ईमानदारी पर भी सवाल उठता है,
देवताओं के चरित्र में भी पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट नही है, देवताओं में भी छल व धोखाधड़ी का संकेत मिलता है,
असुरों के अहंकार व दुराग्रह की कमजोरी को देखते हुए, वे असुरों को चतुराई से,छल से धोखा देने में सफल हो गए,
और वासुकी नाग के पूँछ वाले भाग की तरफ लग गए, जिससे वे अग्निमय जहरीली झाग व ज्वाला से बच सके.....
असुरों की अपेक्षा देवता निःसंदेह किसी अर्थ में श्रेष्ठ हैं,
क्योंकि देवता असुरों की तरह देहाभिमानी नही हैं, दंभ व दुराग्रह के शिकार नहीं हैं, देवता असुरों की अपेक्षा
एक सीमा तक सरल हैं, सहज हैं, सजग हैं, विवेकशील हैं,
पर साधुता की पूर्णता में न तो अहंकार, दंभ व दुराग्रह ही रहता है,
और न ही छल व धोखाधड़ी ही,
वहाँ तो पूर्ण सरलता, सहजता, निश्छलता, निष्पापता,निर्दोषता की ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है,
इसलिए तो देवताओं से भी ज्येष्ठ व श्रेष्ठ स्थान,

सत्य निष्ठ, सत्यता > (ईमानदारी)से परिपूर्ण, पूर्ण सरल, सहज, निश्छल, निर्मल, निष्पाप व निर्दोष का है..
यहाँ पर आचरण के तीन तरह के स्तर हैं,
जिसमें साधुता में परिपूर्णतम् सम्यक् अभिसंप्रज्ञान् में जाग्रत का स्तर
लोक में देवताओं व असुरों से ज्येष्ठ व श्रेष्ठ है....

28 September 2020

|| अंततः जीत संभलने की ही है ||
गिर गए, तो गिरे ही मत पड़े रहो, फिर से नये होश में, नयी उमंग के साथ,
नयी आशा के साथ, और भलीभाँति, और सीधे व सही दिशा में संभलो,
हतोत्साहित नही होना,
क्योंकि अंततः जीत संभलने की ही है,
अगर गिरना नही होता, तो संभलना भी नही होता,
पर इसका अर्थ यह कदापि नही,
कि जानबूझकर गिरते रहो, इस तरह से भलीभाँति संभल जाओ, कि दुबारा गिरना न हो,
अपरिपक्व अवस्था में आरंभिक ध्यान अभ्यास में जितनी बार भी संभलना भंग होता है,
सीध भंग होती है, दिशा भंग होती है, दृष्टि भंग होती है, ध्यान भंग होता है, ज्ञान भंग होता है,
उतनी ही बार (हर बार) बिना कोई प्रमाद किए, बिना कोई विलंब किए फिर से संभलना है,
और जितनी बार भी संतुलन भंग होता है, स्थिति भंग होती है,
उतनी बार और यथा सहज शीघ्रता से और यथा सहजता में और सजग हो, और सीधे हो बार-बार संभलो,
उत्तरोत्तर शीघ्रता से शीघ्र, भलीभाँति से और भलीभाँति, सीधे से और सीधे, सही से और सही दिशा में, सीधी से और सीधी सीध में संभलते ही जाना है,
बिना कोई प्रमाद किए, यथा शीघ्र ज्ञान मात्र से और सीधे ज्ञान मात्र में संभलते ही जाना है,
तुम्हें हाथ दिए गए हैं, यह इस बात का प्राकृतिक संकेत है, कि तुम्हें भाग्य, देवता आदि के भरोसे ही नही बैठे रहना है,
सम्यक् समर्पण में पूरी ईमानदारी से, पूरी जिम्मेदारी से अंतिम सीमा तक अपनी तरफ से पूरी सत्यता, पूरी ईमानदारी से पूरी जिम्मेदारी से श्रम पूर्वक पूरा प्रयास करना आवश्यक है, अन्यथा तुम्हें हाथ ही नही दिए जाते,
हाँ जहाँ तुम्हारे हाथ असमर्थ हैं, वहाँ फिर सम्यक् समर्पण में पूरी तरह से छोड़ना तुम्हारे लिए बहुत ही आवश्यक है, सम्यक् समर्पण में तुम पर अवश्य ही कृपा होगी, और उस कृपा प्रसाद में तुम कृत्य, कृत्य हो, धन्य हो जाओगे........
{ नोट- यहाँ पर सम्यक् समर्पण का आशय किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण विशेष में अध्यारोपित लोक दृष्टि (गीता, पुराण,आगम आदि) के अनुसार कदापि नही है,
बल्कि बिना किसी अध्यारोप के
सहज ही जो उपस्थित है, वहाँ से अंत रहित सीधे व सही ओर ही है,
जरा भी सापेक्षिक दिशा में नही,
सम्यक् देशना किसी को भी सहमत कराने के उद्देश्य से नही है, सम्यक् संकेतार्थ यथार्थ ही कहा जाएगा, कदापि कभी भी आरोपित लोकदृष्टि से समझौता नही हो सकता, किसी के लिए भी निंदात्मक दृष्टिकोण नही,
पर हाँ सम्यक् न्यायपूर्वक सही को सही, गलत को गलत ही कहा जाएगा.....}
तुम्हें प्रकृतितः विवेक दिया गया है,
इसका सही दिशा में, सही अर्थ में पूरा सदुपयोग करो,
तुम्हें प्रकृतितः हृदय दिया गया है,
पूरे हृदय पूर्वक, पूरे सविनय निवेदन पूर्वक ,पूरी श्रद्धा से सही दिशा में पूर्णतः समर्पित रहो,
सार यही है, कि सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त पूर्णतः सम्यक् समर्पित रहते हुए, अंतिम सीमा तक पूरा प्रयास रहे,
जो तुम्हारे हाथ में है, उसे सम्यक् समर्पण में रहते हुए पूरी निष्ठा, पूरी ईमानदारी से पूरा करो, और जो तुम्हारे हाथ में नही है, उसे पूरी तरह से सम्यक् समर्पण में छोड़ दो, और सम्यक् समर्पण में
मात्र अंत रहित सही-सही ओर ही मात्र पूर्णतः समर्पण होता है, जरा भी सापेक्षिक प्रपंच की ओर नही, जरा भी कृत्रिमता की ओर नही, जरा भी अध्यारोप की ओर नही, जरा भी स्थापना की ओर नही,
सत्य अपनी सत्यता में यथावत्
(स्थिर) है, तभी सत्य, सत्य है,
जो सत्य निष्ठ हैं, उनकी मात्र सत्य में ही निष्ठा होती है, किसी बहरूपिये झूठ पर नही,
उनके व्यवहार में, उनके आचरण में स्पष्ट
पारदर्शिता रहती है, वे जैसा कहते है, वैसा ही करते हैं,
सत्यनिष्ठ का सम्पूर्ण व्यवहार सत्य व्यवहार में निष्ठित होता है, उससे जरा भी

इतर नही,
उनसे हेरा-फेरी, छिपाव-दुराव, अदला-बदली, झूठ, छल, धोखाधडी, लीला आदि की लीपा-पोती नही हो सकती,
ऐसे स्पष्ट पारदर्शी व्यवहार के कारण ही सच्चे, निश्छल व ईमानदार व्यक्ति पर बहुत ही गिरे हुए, बेईमान व झूठे का भी पूरा विश्वास होता है|
सत्य अपनी सत्यता में यथावत् है,
न किसी की एकता में एक है, न एक से बहुत हो गया है,
ऐसा कृत्रिम् व असत्य व्यवहार यथार्थ सत्य में कदापि नही,
फिर जो दिग्भ्रमित रहना चाहता है,
वह दिग्भ्रमित ही रहे, और जो सत्य स्पष्टता में रहना चाहता है, वह किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण के पूर्वाग्रह से मुक्त हो, सत्य की खोज में रहे|
सम्यक् समर्पण में कदापि गिरना नही होता है,
अहंकार विशिष्ट कर्ता भाव में ही गिरना होता है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त कदापि गिरना नही होता है |
किसी को अगर आरंभिक ध्यान अभ्यास में लगभग ५ मिनट तक लगातार हर श्वास जानने में आती है,
किसी कारण वश फिर ध्यान भंग हो जाता है,
तब वहाँ फिर से संभलना बहुत ही आवश्यक है,
इस प्रकार जब भी बार- बार ध्यान भंग होता है,
तब हर बार फिर से बार-बार संभलना बहुत ही आवश्यक है,
अगर हर बार ही फिर से संभलना शेष रह जाए, तो इस आंतरिक संधर्ष में अंततः संभलने की ही जीत है,
एक समय ऐसा भी आता है, जब १ घंटे तक हर श्वास निरंतर जानने में आती है,
और इस प्रकार इससे भी आगे इससे भी अधिक समय तक निरंतर स्थिरतापूर्वक जानना होता है....
अभ्यास से क्या नही संभव है,
आरंभ में यह लग सकता है,
कि जब ५ मिनट में ही स्थिति भंग हो जाती है, तो १ घंटे तक लगातार ज्ञान की कैसे स्थिति बन सकती है, यह तो असंभव है,
यह तो बहुत ही कठिन है, पर प्रमाद रहित, विलंब रहित हो, निरंतर सही ओर अभ्यासरत् होने पर कुछ भी कठिन नही,
हाँ अगर प्रमाद वश अभ्यासरत् नही रहोगे, तो यह जो कठिनाई लग रही है
यह लगती रहेगी,
पर हतोत्साहित नही होना है, अभ्यास से क्या नही संभव है,
जैसे किसी को पहले ५ मिनट तक ही निरंतर बिना चूके श्वास जानने में आती है,
पर और अभ्यासरत् होने पर उसे १ घंटे तक या उससे भी अधिक समय तक बिना चूके निरंतर हर श्वास जानने में आएगी,
और इसी प्रकार उत्तरोत्तर अभ्यासरत् होने पर उत्तरोत्तर बिना चूके निरंतर जानने की सीमा बढ़ती ही जाएगी,
विशुद्धतम् ज्ञान मात्र (की पूर्णता के) निमित्त जो सहज स्थिति है, उस सहज स्थिति में संभलना पूर्ण हो जाता है,
उससे पहले किसी न किसी
सीमा के बाद गिरना होता ही है,
सामान्य लोक व्यवहार की भाषा में दिए गए उक्त संदेश से प्रेरित रहना,और आचरित होना,
अवश्य ही लाभ होगा |

29 September 2020

एक बंद कुँवे में पड़े मेंढक के लिए वह बंद कुँआ ही उसका पूरा संसार है,
वही उसकी अंतिम सीमा है,
तुम जितना देख रहे हो, जितना जान रहे हो, जितना समझ रहे हो, क्या इतना ही है, या इससे भी आगे कुछ है,
जितना तुम देख रहे हो,जान रहे हो,
क्या यह देखना, यह जानना ही अंततः पूरा सच है,अगर नही है,
तो फिर पूरा सच क्या है ?
क्या तुम कभी इस अर्थ में संवेदनशील हुए हो, सामान्यतः जिस दृष्टिकोण से जो देख रहे हो, जितना देख रहे हो, जो जान रहे हो, जितना जान रहे हो, जो समझ रहे हो, जितना समझ रहे हो, वह सब सापेक्षिक वर्तुल के किसी एक कोण विशेष की एक सीमा तक ही सीमित है,
वह सभी सापेक्षिक कोणों के आर-पार का पूर्ण केन्द्रीय सत्य नही है,
पूर्ववत् सापेक्षिक दृष्टिकोण के रहते, कदापि कभी भी पूर्णतः पूर्ण सच स्पष्ट नही हो सकता,
सामान्यतः सारे धार्मिक, सारे दार्शनिक, सारे वैज्ञानिक पूर्ववत् सापेक्षिक दृष्टिकोण की सीमा में ही सीमित हैं,

सभी की सापेक्षिक वर्तुल के एक ही तल
में स्थिति है, पर उस सापेक्षिक वर्तुल में
कोण सबका अलग-अलग है,
हर कोई अपने कोण से ही देख रहा है, जान रहा है, समझ रहा है,
इसलिए इस संसार में कोई भी, किसी से
किसी भी बात में पूरी तरह से सहमत नही हो पाता, एक ही सापेक्षिक तल में सबकी स्थिति होने से किसी न किसी बात पर एक सीमा तक तो निकटता हो सकती है, सहमति हो सकती है, एक सीमा तक तो परस्पर समझौता हो सकता है, पर पूरी ईमानदारी में तुम अपनी ही बात पर पूर्णतः सहमत हो सकते हो, किसी दूसरे की बात पर तुम कभी भी पूर्ण सहमत नही हो सकते,
अगर हर एक की अलग-अलग सापेक्षिक वर्तुल में स्थिति होती, तो परस्पर संबंधित व्यवहार ही नही बन पाता,
सहमति व समझौता तो दूर की बात है,
वह तो गनीमत है, सबकी एक ही सापेक्षिक वर्तुल में स्थिति है, बस कोण ही अलग-अलग हैं, पर हैं, परस्पर एक- दूसरे के सापेक्षिक ही,
इसलिए परस्पर संबंधित व्यवहार संभव है, और इसलिए एक सीमा तक परस्पर सहमति, निकटता व समझौता संभव है|
(एक सीमा तक) तुम्हारी निजता तुम्हारे अपने ही कोण पर होने से है,
पर सापेक्षिक दबाव में तुम्हारे संबंधित होने से तुम्हारी अपनी पूरी निजता, पूरी स्वतंत्रता संभव नही है,
किसी भी कोण विशेष में होने से,
हो भी नही सकती,
क्योंकि सापेक्षिक दबाव में ही किसी भी कोण विशेष का होना (अस्तित्व) निर्भर है, इसलिए जब तक तुम्हारी किसी भी कोण विशेष में स्थिति है, तब तक सापेक्षिक दबाव स्वरूप असहजता बनी ही रहेगी,
(किसी भी कोण विशेष से देखने पर असहजता बनी ही रहेगी, दबाव बना ही रहेगा,)
निजता व्यक्तिगत् है, इसलिए भीड़ के पास अपनी निजता नही होती,
आपसी समझौता होता है,
किसी भी सापेक्षिक वर्तुल के किसी भी कोण विशेष से देखने पर सहजता संभव नही, दबाव स्वरूप असहजता का होना स्वाभाविक है,
पर केन्द्र से दिखने के निमित्त उपस्थित भर होने से सहज ही आर-पार से आर-पार का दिखना है, अर्थात् पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता ....
सब तरफ से < > सब तरफ, पूरी तरह से खुलकर पूर्ण स्पष्टता.....
असल में दिखने का आरंभ नही है,
पर किसी कोण विशेष से आबद्ध होने पर ही तुम्हें देखने का आरंभ लग रहा है,अपनी तरफ से देखने की भ्रान्ति हो रही है,पर असल में दिखना सब सापेक्षिक कोणों के आर-पार से हो रहा है, अंतहीन ओर से हो रहा है, इसीलिए अंतहीन ओर
जब समर्पण पूरा होता है, तब कोई अहम्
नही बचता, अपनी कोई निजता नही बचती, अपनी तरफ से कोई दृष्टि, कोई दृष्टिकोण नही बचता,
तब समर्पण की पूर्णता में सीधे ही अंतहीन ओर से दिखना होता है,
उसमें बस उपस्थित भर होने का निमित्त ही शेष रहता है,
तभी सब सीमाओं के आर-पार का,
सब अंतों के आर-पार का ज्ञान, दर्शन स्पष्ट है, उससे पहले कदापि नही|
पूरे जीवन में सर्वप्रथम व सर्वोपरि
महत्व, निष्ठा,श्रद्धा,समर्पण
अंतहीन सम्यक् यथार्थ ओर ही रहे|
अंत हीन ओर ही समर्पण को दो,
किसी भी अर्थ के पारिवारिक व सामाजिक > सांसारिक संबंधो को नही, सांसारिक अर्थों को नही, आरोपित लोकाचार को नही, आरोपित लोकदृष्टि को नही....
{नोट- समर्पण का जो आशय अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यक् सनातन धर्म का है,
उसका आशय कदापि अपेक्षित लोकदृष्टि में स्थापित (सामान्य लोकाचार के आरोपित, स्थापित हुए) किसी भी धार्मिक साहित्य (गीता,उपनिषद,पुराण,आगम आदि) की संबंधित शरणागति से नही है,
इसलिए सावधान, शुद्धि बनी रहे, पवित्रता बाधित न हो }
सामान्यतः कोई भी पूर्ववत् दृष्टिकोण के बंधन से मुक्त नही,
तुम्हारा देखना, तुम्हारा जानना, तुम्हारा सोचना,तुम्हारा समझना,तुम्हारा निर्णय सब कुछ पूर्ववत् सापेक्षिक दृष्टिकोण में ही है,
जिसे सामान्य जन धर्म कहता है, धर्म शास्त्र कहता है, ईश्वर कहता है, वह सब पूर्ववत् सापेक्षिक दृष्टिकोण में ही है,
जब तक पूर्ववत् सापेक्षिक दृष्टिकोण बना हुआ है, तब तक कदापि सीमा रहित सत्य स्पष्ट नही हो सकता|

उत्तरोत्तर जितनी ही दृष्टि सीधी से सीधी स्थिर होते जाती है,
उतनी ही दृष्टि में आरोपित वक्रता हटती जाती है,
और उतना ही दिखने व जानने का दायरा
भी बढ़ता जाता है|
उत्तरोत्तर जितना ही कम से कम समय में संभलकर अभी से अभी के निकट से निकट सीधे से सीधे वर्तमान
में उपस्थित होना हो पायेगा, उसी अनुपात में,उतना ही ज्ञान का, दर्शन का दायरा भी बढ़ता जाएगा,
सर्वप्रथम जिस सीध की दिशा में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है,
वह तुम्हारे सामान्य व्यावहारिक स्थिति के धरातल से सीधी सीध की दिशा है, उस सीधी सीध की दिशा में भलीभाँति स्थिरता पूरी होने पर उससे भी सीधी सीध की दिशा स्पष्ट होती है,
इसी प्रकार उत्तरोत्तर सीधी से सीधी सीध की दिशा में भलीभाँति स्थिरता पूरी होने पर जब सबसे सीधी सीध स्पष्ट हो पूरी हो जाती है, तब सम्पूर्णतः आरोपित वक्रता हट जाती है, सब सीमाओं के आर-पार का दिखना, ज्ञात होना स्पष्ट हो जाता है,
कुछ भी दिखना, कुछ भी जानना शेष नही रह जाता, हर दिखने की, हर जानने की पूर्ण निभ्रांत सच्चाई स्पष्ट हो जाती है,सारा दिग्भ्रम, सारा संशय, सारा संदेह, सारा अज्ञान हट जाता है,
सीधे ही सब अंतों के आर-पार का सीधा सत्य जैसा है,स्पष्ट हो जाता है,
अगर अभी तक तुम्हारी दृष्टि
जिस सीध की दिशा में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, उस सीध की दिशा में ही भलीभाँति स्थिर नही,
आरंभिक स्थिरता का निमित्त मापदंड
ही पूरा नही हुआ,
तो इस बात का खेद है,
क्योकि तब तक तुम सामान्य व्यावहारिक स्थूल दृष्टि के बंधन में ही हो,
दिग्भ्रमित ही हो, पूर्ववत् भव चक्र के दुःखद अज्ञानमय बंधन में ही पड़े हो,
दुःख, क्लेश, पीड़ा व शोक से ही आबद्ध हो, ऐसी स्थिति में,जो भी तुम देखोगे, जानोगे, सोचोगे, समझोगे वह सामान्य व्यावहारिक स्थूल दृष्टि की ही सीमा में होगा|
क्रमशः

30 September 2020

संबंधित ज्ञान का आधार दृष्टि है,
और दृष्टि का आधार स्मृति है,
इसलिए स्मृति का उत्तरोत्तर सम्यक् से सम्यक् अर्थ में, सम्यक् से सम्यक् दिशा में होना आवश्यक है,
जब तक स्मृति बिखरी हुई है, तब तक दृष्टि की स्थिरता असंभव हैं,
असंयम से, आचरण हीनता से स्मृति धुंधली व कमजोर हो जाती है,
सम्यक् आचरण ही स्मृति के लिए पोषण है,
सत्य, ब्रह्मचर्य आदि आचरण का पूर्ण परिपालन स्मृति की स्थिरता व स्पष्टता के लिए आधारीय बल है,
इसके बिना
स्मृति की सहज स्फूर्त स्थिरता व स्पष्ट पारदर्शिता कदापि नही हो सकती,......
बिना सम्यक् आचरण में उतरे सारी साधना ही व्यर्थ है,
यहाँ-वहाँ की व्यर्थ की स्मृति से हट कर सीधे ही श्वास की स्मृति
में आना जरूरी है,
और ध्यान रहे, श्वास के संदर्भ मे आने-जाने की स्मृति भंग नही हो, इस बात की यथा सजगता पूर्वक पूरी सावधानी रहे,
आरंभिक ध्यान अभ्यास में यह बहुत ही आवश्यक है,
जब तक श्वास के संदर्भ में तथ्यगत् सच्चाई नही स्पष्ट हो जाती,
तब तक अनवरत श्वास के संदर्भ में आने-जाने की स्मृति बनी ही रहे,
अगर ४५ मिनट भी श्वास के संदर्भ में अनवरत निरंतर आने-जाने की यथावत् सतत् स्मृति
बनी रह जाए,
तो दृष्टि की >बुद्धि की सूक्ष्मता स्पष्ट हो जाती है, अर्थात् सूक्ष्म दिव्य दृष्टि खुल जाती है,
* श्वास जितनी यथा सहज होगी, उतनी ही स्थिरता पूर्वक स्पष्टता
के लिए सहजता होगी, पूर्ण यथा सहजावस्था में ही पूर्ण स्थिरता पूर्वक यथावत् स्पष्टता है,
श्वास के आने-जाने की स्मृति में यथा सहजता पूर्वक यथा सजगता में रहना आवश्यक है,
क्योंकि उत्तरोत्तर सहज होने से उत्तरोत्तर सहजता बढ़ती है, और उत्तरोत्तर सजग होने से उत्तरोत्तर सजगता बढ़ती है,
सहजता के साथ सजगता इसलिए आवश्यक है, क्योंकि बिना सजगता के सहजता में संभलना नही होता है,

मूर्छा व प्रमाद घेर लेगा,
और स्पष्ट पारदर्शिता भी संभव नही है,
और सहजता इसलिए अनिवार्य है, क्योंकि सहजता में ही सजग होने में सहजता होती है,
बिना यथा सहजता के यथा सजगता में संभलना नही हो सकता,
यथा सहजता में यथा सजगता
और यथा सजगता में यथा सहजता होने से एक ऐसा संतुलन स्थापित होता है, जिसमें न तो यथा सहजता भंग होती है, और न ही यथा सजगता भंग होती है,
अभ्यास काल में ही संतुलन की मांग
के अनुसार ही
यह अनुपात सुनिश्चित (तय)करना है,
कि सहजता में कब, कितना, किस अनुपात में सजग होना है,
और सजगता में कब, कितना, किस अनुपात में सहज होना है,
संतुलन के निमित्त ही अर्थात्
जिस अनुपात से संतुलन बनता है, बस वही अनुपात रहे,
इस बात का पूरा ध्यान रहे,
अपनी तरफ से मनमाना अनुपात सुनिश्चित नही हो,
बल्कि संतुलन की मांग के अनुसार ही अनुपात सुनिश्चित (तय) हो,
अभ्यास काल में सहज होने के लिए सकारात्मक दबाव बनता ही है,
और उस सहजता में साधक को लगता है,
कि बिना किसी प्रयास के ही सीधे ध्यान के संदर्भ में संतुलन व स्थिति बन रही है, पर यह तभी तक लगता है,
जब तक अभ्यास के निमित्त होने से सकारात्मक दबाव का प्रभाव बना हुआ है,
जैसे किसी खिलौने में जितनी चाबी भरी जाती है, खिलौने को नाचने के लिए उतना ही दबाव बनता है, जब तक दबाव बना है, तभी तक वह खिलौना नाचता है,
अभ्यास काल में भी अभ्यास का सकारात्मक (धनात्मक) दबाव बनता है, उस सकारात्मक (धनात्मक) दबाव में ही साधक को अभ्यास में सहजता महसूस होती है,
साधक प्रमाद वश अपने को उस सहजता में ही छोड़ देता है, सजग नही होता,
इसलिए जैसे ही दबाव पूरा होता है, अभ्यास के निमित्त सकारात्मक दबाब के प्रभाव में बनी हुई सहजता भी भंग हो जाती है,
सहजता भंग होते ही
ध्यान के संदर्भ में जो संतुलन व यथास्थिति बनी हुई थी, वह भंग हो जाती है,
और फिर कहीं जाकर अगर निमित्त (साधक) संभलता
भी है,
तो फिर से पुनः सकारात्मक दबाव बनने तक लगभग उतने ही अभ्यास में फिर से अलग से उतरना पड़ता है,
जैसे कोई बालक गुड़िया में चाबी भरता है, और जब तक गुड़िया नाचते-नाचते दबाव को पूरा कर कही लुढ़क नही जाती, गिर नही जाती, तब तक बालक उसमें चाबी नही भरता, गिरने के बाद ही फिर से चाबी भरता है
इस तरह से बालक गुड़िया के लुढ़कने पर ही, गिरने पर ही बार-बार चाबी भरता रहता है,
(नोट-गुड़िया का उदाहरण संकेतार्थ दिशा बोध है,
सम्यक् अभ्यास के निमित्त होने से जो सकारात्मक (धनात्मक अर्थ में)दबाव बनता है, उससे इसकी कोई तुलना नही है, उपमा नही है,
बस तुम्हारी सापेक्षिक बुद्धि को समझाने के लिए ही एक सीमा तक संकेत अर्थ में इस दृष्टांत को दिया गया है,)
इस तरह बार - बार सहजता भंग होने से सकारात्मक दबाव का प्रभाव भी सामान्यतः एक सीमा तक ही रहता है,
सामान्यतः बढ़ नही पाता,
इसलिए तुम्हें चाहिए कि अभ्यास के निमित्त जो सहजता बन रही है, जो सजगता बन रही है, वह भंग न हो,
भंग होने से पहले ही अभ्यास के निमित्त और सीधे भलीभाँति संभल जाना है, उत्तरोत्तर अनवरत् प्रमाद रहित हो यह क्रम पूरा करते ही रहना है,
इस तरह से सहजता के लिए, सजगता के लिए उत्तरोत्तर सकारात्मक दबाव (धनात्मक बल) बढ़ता ही जाएगा, और उत्तरोत्तर उस बढ़ते हुए सकारात्मक दबाव के सकारात्मक प्रभाव से उत्तरोत्तर और सहजता व सजगता भी बढ़ती ही जाएगी|
ध्यान रहे, अगर सकारात्मक दबाव के भंग होने के बाद
अभ्यास के निमित्त संभल भी गये,
तो तब बहुत देर हो चुकी होती है,
क्योंकि सकारात्मक प्रभाव भंग होने के बाद

फिर दोबारा लगभग उसी धरातल से फिर से अतिरिक्त अभ्यास के निमित्त होना पड़ता है, इस तरह से सकारात्मक दबाव बढ़ नही पाता, लगभग एक सीमा तक ही रह जाता है,
और इस तरह पूर्ववत्
नकारात्मक दबाव बना ही रहता है,
(चूँकि किया गया अभ्यास कभी भी व्यर्थ नही जाता, कुछ न कुछ सकारात्मक दबाव तो रहता है, तभी तो फिर से अभ्यासरत् होने में कुछ न कुछ सहजता तो रहती ही है,)
पूर्व के दबाव में पूर्ववत आभास > (भव बंधन)
का होना स्वाभाविक ही है, जहाँ कभी भी आकाश व समय के समानान्तर क्रम का अतिक्रमण नही हो पाता,
अगर निमित्त (साधक) अभ्यास काल में सहजता के लिए जो दबाव बन रहा है, उसके प्रति संवेदनशील है, तो कब दबाव (सकारात्मक प्रभाव) पूरा हो रहा है, इसका भलीभाँति संज्ञान रहता है, और समय पर सहजता पूरी होने से पहले ही सजग हो अभ्यास के निमित्त संभल जाता है,
वह बालक की तरह प्रतीक्षा नही करता, जब गुड़िया भरी हुई चाबी के दबाव को पूरा कर लुढ़क कर गिर जाती है,
तभी बालक गुड़िया को दुबारा नचाने के लिए फिर से चाबी भरता है,
गुड़िया वाले बालक की तरह नही होना है,
सकारात्मक दबाव के प्रभाव को क्षीण होने से पहले ही संभल जाओ,
निरंतर समय रहते संभलते रहने से
उत्तरोत्तर सकारात्मक प्रभाव बढ़ता ही जाएगा,
ध्यान रहे, जब तक दबाव रहित पूर्ण सहजता न हो जाए, तब तक समय रहते उत्तरोत्तर संभलने का क्रम जारी ही रहे,
विशुद्धतम् मात्र ज्ञात भर होने में ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है, (आरोपित दृष्टा >ज्ञाता-> साक्षी भाव में नही,)
और पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में ही किसी भी तरह का कोई भ्रम नही है, कोई संशय नही है, कोई संदेह नही है,
कोई अज्ञानता नही है, कोई बंधन नही है, कोई दबाव नही है, कोई तनाव नही है, कोई दुख नही है,
कोई क्लेश नही है,
पूर्ण सम्यक् समाधान स्पष्ट है,
न कोई प्रश्न, न कोई समस्या |
सहज स्वाभाविक मूल अभीप्सा, मूल जिज्ञासा >> जो मात्र यथार्थ सत्य स्पष्टता के निमित्त है,
सहज स्वाभाविक मूल जिज्ञासा, मूल अभीप्सा के अर्थ में यथा सहज, यथा सजग संवेदनशील रहो,
यथार्थ सत्य स्पष्टता के निमित्त ही पूरा समर्पण हो,
तभी सम्यक् अर्थ में पूर्ण यथार्थ सत्य स्पष्ट हो सकता है,उससे पहले कदापि नही |

****
****

01 October 2020

किसी भी तरफ न देखते हुए,
नासिका के ठीक अग्र भाग की ठीक सीध में, ठीक सीधे सामने की ओर दृष्टि रखते हुए चलो,
जब भी चलो,ठीक सीध में, ठीक सामने ४५अंश के कोण में
ही दृष्टि रखते हुए चलो, यही तुम्हारा अपना मार्ग है,
यही सदाचारी भद्रजनों का ऋजुमार्ग है,
सदाचारी, कुलीन, भद्र जन अपने मार्ग से जरा भी इतर (इधर-उधर होकर) नही चलते,
अशिष्ट, उद्दंड, दुराचारी, दुष्ट दुर्जन की दृष्टि नकारात्मक दृष्टिकोण के अपेक्षित दबाव में चलायमान होती है,
इसलिए वे ठीक सीधे मार्ग
में न चलकर दोषयुक्त, जटिल व सापेक्षिक वक्र (टेढ़े) मार्ग में चलते हैं,
वे स्वयं दुखित व पीड़ित तो होते ही हैं, साथ ही दूसरों का
व्यवधान कर, दूसरों को भी दुःख व पीड़ा देते हैं|
बुद्धि का खुलना सकारात्मक दृष्टिकोण में भी है, और नकारात्मक दृष्टिकोण में भी है, सकारात्मक दृष्टिकोण से कोई ध्यान, तप आदि अभ्यास के निमित्त होता है,
तो सकारात्मक अर्थ में बुद्धि खुलती है,
कुशलता खुलती है,
और अगर कोई नकारात्मक दृष्टिकोण से योग,ध्यान, तप, व्रत, अनुष्ठान आदि अभ्यास में प्रवृत्त होता है,
तो नकारात्मक अर्थ में बुद्धि खुलती है, कुशलता खुलती है,
इसलिए एक जेब काटने वाला चोर इस तरह से कुशलतापूर्वक जेब काट लेता है,
कि भले व्यक्ति को पता भी नही चल पाता, कि कब उसकी जेब कट गई,
दुर्जन को अपने बुद्धिचातुर्य पर बहुत ही अभिमान होता है,
सीधा,साधा व्यक्ति उसके वाद-विवाद,दुराग्रह, तर्क, वितंडा आदि से दुखी रहता है,
वे कथा, प्रवचन आदि लोकाचार में बहुत ही कुशल होते हैं,
धन और नाम के लिए ही वे कथा-वार्ता,
प्रवचन, भाषण आदि कला में प्रशिक्षित होते हैं, यह उनका खानदानी पेशा है,
एक हत्यारा, एक चोर उनसे अच्छा है, क्योकि उसका चोर होना, हत्यारा होना छिपा नही है, पर छद्मवेश बहुत ही घातक धोखा है,
यह संसार का सच है, या तो बहुत ही भला व्यक्ति ध्यान आदि अभ्यास में तत्पर रहता है, या दुष्ट व्यक्ति ही,
सामान्य जन तो बस सामान्य जीवन जीने की औपचारिकता पूरी कर मर जाते हैं,
(बहुत भला ही व्यक्ति तो सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही मात्र सम्यक् धर्म साधना के निमित्त रहता है,)
भद्रजन सम्पूर्ण लोकैषणा से निरपेक्ष हो, भ्रम, संशय, दुखद अज्ञान से
मुक्ति के लिए ही धर्म साधना में तत्पर रहते हैं,
और दुर्जन धन,वैभव, मान-सम्मान,
पद, प्रतिष्ठा, यश,ऐश्वर्य, शक्ति, सत्ता, ईश्वरत्व आदि की प्राप्ति के लिए क्लेशपूर्वक जटिल साधना पद्धति में अग्रसर रहते हैं |
इसलिए अगर तुम्हें कोई तप, व्रत,अनुष्ठान आदि में अभिरत् दिखता है,
तो जरूरी नही, वह सकारात्मक दृष्टिकोण
में ही हो,
इसलिए खोज इतनी महत्वपूर्ण नही,
बल्कि किस दृष्टिकोण से वह खोज में है,
यह महत्वपूर्ण है,
आरंभ से ही ऋत् अभिप्रेरित ऋषि,मुनि भी तपश्चर्या में अभिरत् होते आए हैं,
और आसुरी प्रवृत्ति वाले भी,
पर आसुरी प्रवृत्ति वाले शक्ति, सत्ता के निमित्त हो,लोक का अहित ही करते हैं, शोषण ही करते हैं|
दो वर्गों से अलग जो एक तीसरा अधिसंख्य वर्ग भी है, जो आजीवन बस सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहता है,
अधिसंख्य सामान्य जन तपश्चर्या से डरते हैं,
सहजता के विरुद्घ कहकर, प्रकृति विरुद्ध कहकर बहाना बनाते हैं,
सम्यक् तपश्चर्या के अभाव में वे सकारात्मक प्रभाव को कभी भी पूरा नही कर पाते,
और एक औसत, सामान्य जीवन जीने की औपचारिकता को पूरा कर मर जाते हैं,
बस उनके लिए एक सीमा तक धन,वैभव,
यश, पद,प्रतिष्ठा, नाम हो जाए, इसी से वे खुश हैं|

जो दिग्भ्रमित रहना चाहता है, वह दिग्भ्रमित ही रहे,
पर जो दिग्भ्रम में नही रहना चाहते हैं,
जो धोखे में नही रहना चाहते,
यथार्थ सत्य स्पष्टता में रहना चाहते हैं,
वे अपेक्षित दृष्टिकोण के पूर्वाग्रह से अभिमुक्त
हो, उत्तरोत्तर सम्यक् संधान में पूरी
सत्यता पूर्वक, पूरी ईमानदारी से जिम्मेदार हो, अभितत्पर रहे|

02 October 2020

मात्र सही-सही ओर
ही घुटने टेककर, जमीन में नाक रखकर दंङवत् प्रणाम की मुद्रा में रहो,
पूरे हृदय से सविनय निवेदन की मुद्रा में रहो,पूरे द्रवित हृदय से , पूरे अश्रुपूर्ण हृदय से , पूरे प्रेमपूर्ण हृदय से, पूरे भावपूर्ण हृदय से, पूरी निश्छलता में,पूरे सरल चित्त हो, बाहर और भीतर से शुद्ध व पवित्र हो, निरंतर प्रार्थना में अभिरत् रहो,
सम्यक् उपासना में मात्र सही-सही ओर से
जरा भी इतर नही होना है,
जो कुछ भी सापेक्षता की सीमा में है,
कदापि उसकी उपासना न हो,
अध्यारोपित कृत्रिमता की उपासना कदापि नही हो, जो कुछ भी दृश्य, दर्शन व द्दष्टा की परिधि में है, उसके आगे कदापि समर्पण नही करना, मनुष्य द्वारा अथवा प्रकृतितः स्थापित किसी भी चिह्न, प्रतीक,
मूर्ति, पुस्तक, नाम,रूप आदि के आगे कदापि समर्पण नही करना,
जहाँ तक मन की पहुँच है, जहाँ तक बुद्धि
के निमित्त अर्थ ग्रहण होता है,
और जो भी आभास की सीमा है, उसके प्रति समर्पित नही होना,
किसी भी देवता, देवी, अवतार,अवतारी, ईश्वर, परमेश्वर, भगवान, आत्मा,परमात्मा, ब्रह्म,गाॅड, खुदा आदि अध्यारोपित मिथ्यात्व के आगे कदापि नमस्कार, प्रणाम, दंडवत व समर्पण नही
करना,
बस अंतरहित मात्र सही ओर ही
मात्र समर्पित होना,
बिना किसी आरोप, अध्यारोप के अंतरहित मात्र सही ओर ही 'जैसा है, वैसा ही' स्वीकार करते हुए,
समर्पित रहना, अपनी तरफ से कदापि ऐसा है, वैसा है, नही कहना,
अपनी तरफ से किसी भी दृष्टिकोण से, किसी भी अर्थ में कोई,भी आरोप, प्रत्यारोप या अध्यारोप नही करना, यह सबसे बड़ा अनर्थ है, सबसे बड़ा पाप है, सबसे बड़ा अपराध है,
यथार्थतः जैसा है, वैसा ही स्वीकार करना,
यथार्थतः जैसा है, वैसा ही स्पष्ट हो,
बस यही माँग हो, और बस इसी अर्थ में खोज हो,
(यह है, वह है, ऐसा है, वैसा है,
कहना, अहम्, त्वम्, सर्वम्, द्वैत-अद्वैत, एक, दो, एकता,अनेकता, समता, विषमता आदि कहना, किसी से एक है, कहना, एक से बहुत हो गया, कहना, सब में है, कहना, सब वही है, ककहना इत्यादि अध्यारोपित मिथ्यात्व की सीमा में ही है, जो यथार्थतःसत्य नही,)
यह सम्यक् उपासना के बारे में संक्षिप्त में कहा गया |
सम्यक्, समर्पण में,सम्यक् उपासना में लोकदृष्टि का लोकाचार का, लोकाचार के धर्मों का, कर्तव्यों का पूर्णतः उल्लंघन है, अतिक्रमण है, इसीलिए सम्यक् उपासना के लिए
सामान्य सांसारिक (लौकिक) व्यक्ति की योग्यता व पात्रता नही होती,
फिर जब तक शुद्धि पूरी नही होती,
इसका अनुकरण असंभव है,
बिना शुद्धि पूर्ण किए, कदापि अनुकरण न करें, कदापि नकल न करें, उससे पहले नकल करने पर निश्चित ही सामाजिक व मानसिक संतुलन बाधित होगा,
क्योंकि शुद्धि पूर्ण होने से पहले
जो कुछ भी तुम मानते हो, जानते हो, देखते हो, जिस दृष्टिकोण में, जिस अर्थ में,जहाँ कहीं भी तुम्हारी निष्ठा है, श्रद्धा है, समर्पण है, उस सबका पूर्णतः उल्लंघन होना, निषेध होना अति आवश्यक है,

(उदाहरण के लिए आत्मा, ब्रह्म, द्वैत-अद्वैत आदि सबकी पूर्णतः उपेक्षा व पूर्णतः निषेध होना ही शुद्धि के लिए आरंभिक संकेत है, और यह अति आवश्यक है,) और ऐसा होना तुम्हारे लिए असंभव है,
(तुम्हारी योग्यता में, पात्रता में असंभव है,)
उत्तरोत्तर जितना ही सम्यक् अभ्यास का निमित्त मापदंड पूरा होता है, उसी अनुपात में शुद्धि भी बढ़ती जाती है,
उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास का निमित्त मापदंड पूरा होने पर ही पूर्णतः शुद्धि है,
पूर्णतः शुद्धि होने पर फिर आरोप, प्रत्यारोप, अध्यारोप संभव नही,
तुलना संभव नही, अर्थ का अनर्थ संभव नही, पूर्ण शुद्धि में विशुद्ध ज्ञान मात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होने का निमित्त ही शेष रह जाता है,
इसलिए सम्यक् धर्म के मापदंड के अनुसार आरंभिक सीमा तक शुद्धि पूर्ण होने से पहले इसका अनुकरण अथवा नकल करना सामाजिक व मानसिक संतुलन को बाधित करेगा,
जो कुछ भी है, सबका पूर्णतः अर्थहीन होने पर, पूर्णतः महत्वहीन होने पर,
पूर्णतः,निषेध होने पर ही यथार्थ में जैसा है, ठीक वैसा स्पष्ट है, उससे पहले
कदापि नही,
सबके निषेध होने में जो सहज उपस्थित है, स्वीकार है, उससे पहले नही,)

02 October 2020

अगर अभी तुम्हारी दृष्टि में
सही में सत्य का महत्व नही है, सही में सत्य की खोज के लिए महत्व नही है|
अगर अभी तुम सही में सत्य के लिए प्यासे नही हो, अगर तुम्हारी दृष्टि में अभी धन का महत्व है, पद का महत्व है, प्रतिष्ठा का महत्व है, शक्ति प्रदर्शन का महत्व है, ऐश्वर्य का महत्व है, सत्ता का महत्व है,
तो तब तुम्हारी उसी अर्थ में माँग है, उसी अर्थ में खोज है,
तब सत्य की बात बस बात भर है,
ऐसे में तब सत्य की खोज
का प्रश्न ही नही होता |
बातें सत्य की होती हैं, सत्य की खोज की होती हैं,
पर महत्व धन, वैभव, पद का है, मान-सम्मान का है, यश,ऐश्वर्य, ईश्वरत्व प्राप्ति का है, शक्ति, सामर्थ्य, सत्ता का है,
इसलिए तुम्हारी असल में मांग भी उसी की है, खोज भी उसी की है,
सत्य की नही,
इसलिए तुम्हारी सत्य स्पष्टता के निमित्त अभीप्सा नही होती, जिज्ञासा नही होती, सत्य स्पष्टता के निमित्त ध्यान अभ्यास में प्रवृत्ति नही होती,
ध्यान अभ्यास के लिए निश्चिंतता नही बन पाती, स्थिरता नही बन पाती,
लोकैषणा के निमित्त जो तुम्हारी महत्व बुद्धि है,
उसने तुम्हारा विवेक जो हर लिया है, वैराग्य जो हर लिया है, निश्चिंतता जो हर ली है,
तब भला सत्य स्पष्टता के निमित्त खोज कहाँ हो सकती है,
क्योंकि तुम्हारी बुद्धि जिस अर्थ में जिसे महत्व देती है,
उसी अर्थ में तुम्हारी प्रवृत्ति होती है,उसी अर्थ में तुम्हारा रुझान होता है,उसी अर्थ में तुम्हारी खोज होती है,और उसी अर्थ में ही तुम्हारा पुरुषार्थ होता है, और उस अर्थ में ही तुम्हारी गति होती है,
तुम्हारे सम्यक् कल्याणार्थ भले ही कोई तुम्हें सत्य की खोज के लिए प्रेरित करे,
पर कोई जबरन तुम्हें सत्य की खोज के लिए बाध्य नही कर सकता,
तुम्हें जबरदस्ती चलाया तो नही जा सकता,
यह तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारी जिज्ञासा पर निर्भर है,
क्या सही में सत्य के लिए, सत्य की खोज के लिए पूरी सत्य निष्ठा से अभिप्रेरित हो,
अगर अभिप्रेरित हो,
तो तभी तुम्हारे लिए सही में सत्य का मार्ग खुल सकता है,
अन्यथा हमेशा दुविधाग्रस्त रहोगे, असमंजस में रहोगे,
सारा संसार लोकैषणा के निमित्त अर्थात् धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, यश,ऐश्वर्य, शक्ति, सामर्थ्य के पीछे दौड़ रहा है,
(इतना ही नही ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म आदि से
संबंधित सारा का सारा कृत्रिम अध्यारोप लोकैषणा का ही विकल्प है,)
तुम भी दौड़ रहे हो, प्रतियोगिता में तुम कहीं पिछड़ न जाओ,
तुम्हारी दौड़ भी जारी ही है,

इस अंधी दौड़-भाग में तुम्हारी निश्चिन्तता भंग है,
इस व्यर्थ की लगातार दौड़- भाग की चिंता में,
टेंशन में तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा विवेक इतना मंद पड़ गया है, कि उसका सार्थक असर तुम पर नही पड़ता,
पर हाँ इसमें तुम्हारा मन बहुत प्रबल हो गया है, ऐसी स्थिति में उसका प्रबल होना स्वाभाविक है,
हो भी क्यों नही,लोकैषणा के निमित्त ही उसका बल है, इस प्रबल, बलवान मन के प्रभाव में अब तुम्हें मन की ही आवाज़ सुनाई देती है, उसी से तुम अभिप्रेरित होते हो, संचालित होते हो, मन के वशीभूत ही तुम क्रियान्वित होते हो,
तुम्हारा मन जो तुम्हारा मंत्री बना हुआ है, जो तुम्हें मंत्रणा दे रहा है, तुम्हें समझा रहा है, उसमें तुम लोकैषणा के अर्थ में ही प्रवृत्त हो सकते हो, सत्य की खोज के अर्थ में नही,
यह धोखेबाज, धूर्त, चालाक मन ही तुम्हें यह सलाह देता है, कि सत्य क्या है, यह तो बाद में भी देखा जा जाएगा, सत्य कहीं जा नही रहा है,
हाँ अगर कहीं दौड़ में पिछड़ गए,
तो बहुत हानि हो जाएगी, बहुत घाटा हो जाएगा, सिर धुन के पछताना पड़ेगा..........
मरते दम तक तुम्हारी दौड़ जारी ही रहती है, पर आश्चर्य, कि किसी की भी दौड़ कभी पूरी नही होती, जीवन ऐसे ही व्यर्थ में विदा हो जाता है|
लोक प्रचलित तुम्हारे तथाकथित धर्म जो तुम्हें नाना धार्मिक अंधविश्वास में प्रेरित करते हैं, व्यर्थ के नाना जप, पूजा, पाठ, व्रत,यज्ञ,अनुष्ठान आदि के कृत्रिम अध्यारोपित सम्मोहन में बाँध तुम्हें दिग्भ्रमित करते हैं, सीधे रास्ते से भटकाते हैं, गुमराह करते हैं,
यह सब सत्य की खोज में बहुत बड़ी बाधा है,
पूर्व सुनिश्चित द्वैत-अद्वैत, आत्मा, माया, ब्रह्म आदि धार्मिक अंधविश्वास यथार्थ सत्य की खोज में सबसे बड़ी बाधा है,
धार्मिक अंधविश्वास का सम्मोहन सबसे अधिक प्रबल रहता है, इसका पूर्वाग्रह सबसे अधिक प्रबल रहता है,
एक चोर, एक डाकू, एक हत्यारा भले ही
सम्यक् उपदेश से सत्य की खोज में प्रेरित हो, पर धार्मिक अंधविश्वास से ग्रसित व्यक्ति सम्यक् अनुसंधान में अभिप्रेरित नही हो सकता, उसका यह जन्म तो व्यर्थ ही गया,
हाँ सम्यक् सत्संग के सकारात्मक प्रभाव से सम्यक् अनुसंधान में अभिप्रेरित हो सकता है, पर यह बहुत ही दुर्लभ है,
क्योकि सामान्यतः लोकदृष्टि में, लोक प्रचलन में जिसे सत्संग कहा जाता है, वह भी एक तरह का धार्मिक अंधविश्वास ही है,
सम्यक् अर्थ में सत्संग नही,
क्योकि वह तुम्हें सत्य की खोज में अभिप्रेरित नही करता है,
अपितु पूर्व सुनिश्चित अपेक्षित दृष्टिकोण में ही बाँधता है,
इस संसार में भरमाने वाले भेड़िए बहुत हैं, और अधिसंख्य तो इन्हीं के चंगुल
में फँसे हुए हैं,
(उनकी आँखों में धार्मिक अंधविश्वास की
पट्टी बँधी हैं,
जिससे उनकी अपनी विवेक दृष्टि बंद है,
इसलिए विवेक दृष्टि के बंद होने से सम्मोहन के वशीभूत वे वही मानते हैं,जो उन्हें कहा जाता है, इसमें वे विवश हैं,लाचार हैं,)
पर सीधी व सच्ची राह दिखाने वाला सच्चा चरवाहा बहुत ही दुर्लभ है,
भले ही हर कोई अपने-अपने दृष्टिकोण से अपने-अपने अर्थ में अंतिम सत्य की घोषणा कर रहा है,
पर असल में वह उसका अपना आरोपित दृष्टिकोण है, सत्य नही,
सारा सम्मोहन, सारी दिग्भ्रान्ति, सारा अज्ञान, सारा दुख
तुम्हारे आरोपित दृष्टिकोण का ही है,
जब तुम्हारी बुद्धिगत तुष्टि में पहले से ही सुनिश्चित है, कि क्या सत्य है,
तब फिर सत्य क्या है,इस संदर्भ में अभीप्सा का, जिज्ञासा का फिर अर्थ ही नही रह जाता है,
यह सत्य है, तुम्हारे द्वारा घोषित होते ही, तुम सत्य की खोज से वंचित हो जाते हो,
सत्य से वंचित हो जाते हो,
अपनी तरफ से नही, बल्कि सत्य से सत्य स्पष्टता के निमित्त जब सम्यक् समर्पण पूरा होगा >>
सम्यक् समर्पण में जब उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास का निमित्त पुरुषार्थ पूरा होगा,
तभी सम्मोहन रहित सत्य स्पष्ट हो सकता है, उससे पहले कदापि नही |
जन्म लेते ही तुम्हारा पहला महत्व है,
पहला धर्म है, पहला कर्तव्य है,
सत्य की खोज करना, तब तक न कोई पूर्वाग्रह है, न कोई मान्यता है,
कि सत्य ऐसा है,या वैसा है,

किसी दृष्टिकोण विशेष से नही, वरन सत्य से ही सत्य जैसा है,ठीक वैसा स्पष्ट हो, इस निमित्त से पूर्ण सम्यक् समर्पण >>पूर्ण सम्यक् समर्पण में उत्तरोत्तर सम्यक् ध्यान अभ्यास आदि सकारात्मक निमित्तों का पुरुषार्थ पूरा करना,
उससे पहले न कोई धर्म है, न कोई कर्तव्य,
और इसी में ही तुम्हारी पूरी ईमानदारी है,
इससे इतर बेईमानी है, धोखा है,
यथार्थ सत्य स्पष्ट हुए बिना ही जो तुमने किसी विशेष जाति, वर्ण, वर्ग, राष्ट्र, धर्म, कर्तव्य, संप्रदाय, संस्कृति, सभ्यता आदि से अपना एक मिथ्या परिचय बना रखा है, एक झूठी पहचान बना रखी है, इससे सावधान रहो, सजग रहो,
अगर इससे सजग नही हुए,
तो इस व्यर्थ के असहज भार को तुम आजीवन ढोते ही रह जाओगे,
और सत्य क्या है, इस अर्थ में कभी अभिप्रेरित व अग्रसर नही हो पाओगे,
ज्ञान मात्र के निमित्त उपस्थित भर होने में जो तुम्हारा वास्तविक परिचय है,
जो तुम्हारी असली पहचान है, कभी भी नही हो पाएगी.....
लोकदृष्टि का सापेक्षिक प्रपंच बहुत ही उलझाने वाला है|
कृत्रिम अध्यारोप के सम्मोहन में तुम किस कदर दिग्भ्रमित हो, गुमराह हो, धोखे में हो, तुम्हें दिखाई नही देता,
अध्यारोपित कृत्रिमता का सम्मोहन बहुत ही सूक्ष्म व प्रभावी है,
समय रहते अगर संभलना नही हो पाया, तो इससे तुम्हारी सबसे बड़ी हानि है, सबसे बड़ा धोखा है,
जिसमें यथार्थ सत्य से तुम चूक जाओगे, जिसके लिए तुमने जन्म लिया है,
इसलिए सबसे पहले..

03 October 2020

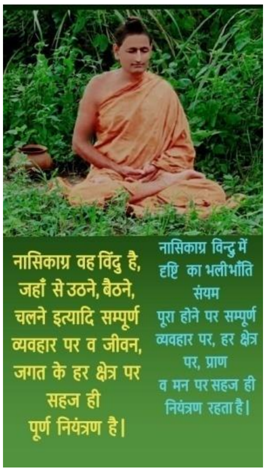

03 October 2020

एक छोटी सी काल्पनिक कहानी है,
किसी चौराहे पर पाँच अंधे बैठे थे,
थोड़ी ही देर में वहाँ से एक हाथी गुजरा,
अंधों ने चिंघाड़ की एक आहट सुनी, पास ही खड़े लोगों से उन्होंने पूछा यह क्या है,
पूछने पर
उनमें से एक ने कहा, कि यह हाथी है,
वे सब उस आहट की तरफ भागे पता लगाने के लिए, कि आखिर हाथी क्या होता है, महावत ने अंधों को आते देख हाथी को, वहीं रोक दिया,
इनमें से एक ने हाथी के पेट को छुआ और उसने अपने अंधे मित्रों से कहा,
मित्रो,
यह हाथी तो दीवार है,
इतने में एक अंधे ने वहाँ जाकर काफी टटोला तो पूँछ हाथ लग गई, और वहीं पूँछ में झूलते हुए बोलने लगा अरे मित्रो यह तो एक रस्सी है, दीवार कहाँ है, तीसरे अंधे ने भी खूब उछल-कूद मचाई पता करने के लिए

कि क्या है, उसने उछलकर झट से कान पकड़ लिए, और हाथी फड़फडा़ने लगा, उस अंधे को लगा कि यह सूप है, उसने अपने मित्रों से कहा अरे अंधो यह न दीवार है,
न रस्सी है, अरे यह तो सूप है,
चौथा संयोगवश सूंड की तरफ गया, उसकी लपक में हाथी की सूंड ही हाथ लगी,
हाथी ने सूंड हटाकर उसके कान में दे फुफकारी मारी, अंधा भय के मारे वही चिल्लाने लगा, सर्प, सर्प अरे यह तो साँप है, तुम तीनों जैसा कह रहे हो वैसा नही है,
यह सुनकर पाँचवा अंधा भय से कांपते हुए, अपनी लाठी से टटोलने लगा,
वह झुक कर हाथी के पैरों की तरफ गया, संयोगवश उसके हाथ पैर में लगे,उसे लगा कहीं ये खंबा तो नही है,
वह भी अपने चारों साथियों पर झिड़का, अरे यार तुमने तो डरा ही दिया,
कितना समझाया इतना मत पिया करो, तुम सब नशे की मदहोशी में हो, झांझ में हो,
जैसा तुम्हें लग रहा है, जैसा तुम कह रहे हो, वैसा कुछ नही है,
यह तो बस एक खंबा है,
इस प्रकार
पांचों आपस में अपनी - अपनी बात को लेकर बहस करने लगे, हर कोई अपने को ही सही साबित करने में लगा था, और दूसरे को गलत,
मताग्रह के प्रबल आवेग में
कोई किसी की बात कहाँ सुनता,
बात बढ़ते-
बढ़ते गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़े तक पहुँच गई,
और देखते ही देखते
आपस में लठ बाजी शुरू हो गई, दिखाई तो देता नही, किसकी लाठी किस पर पड़ रही है, दे दनादन......
मामला खून-खराबे में होता देख महावत व चौराहे में खड़े लोग इन अंधों के पास आये, उनके हाथों से लठ छीन कर उन्हें किसी तरह से शान्त कराया, महावत उनकी लाचारी देख रहा था,
हाथी के संबंध में इनको क्या कहें, फिर भी वह, बोला, अरे दिव्य चक्षुओ!
(अंधे व्यक्ति को दिव्य चक्षु कहना एक प्रचलित औपचारिक शिष्टाचार है, पर सम्यक् अर्थ में वह दिव्य चक्षु नही है,)
हाथी न दीवार है, न खंबा, और न साँप है, न रस्सी, और न ही सूप है, हाथी तो बस हाथी है
यह सुन उन अंधों ने कहा वे भी यही कह रहें हैं, कि हाथी....
...............................??
महावत ने वहीं अपना माथा पकड़ लिया, उसने देखा
इन्हें समझाने का कोई अर्थ नही,
आँख के बिना समाधान तो हो ही नही सकता,
अंधे होने की मूल समस्या तो
बनी ही हुई है......??
(काल्पनिक कथानक का यह सांकेतिक निरुपण समझाने के उद्देश्य से है,
यथा सत्य से इस कथानक की कोई तुलना नही)…….
कायिक चक्षु, दिव्य चक्षु, प्रज्ञा चक्षु, चक्षु के इन तीन भेद से परे
सम्यक् संप्रज्ञान चक्षु जब तक नही खुल जाता, तब तक किसी न किसी अर्थ में मतान्धता बनी ही रहती है,
और मतान्धता में ही
कोई अद्वैत कहता है, कोई विशिष्टाद्वैत कहता है,कोई द्वैताद्वैत कहता है, कोई शुद्धादैत कहता है, कोई द्वैत कहता है,
हर कोई अपने ही पक्ष को सही साबित करने में लगा है, और दूसरे पक्ष को गलत,
दिग्भ्रमित मूर्ख जन
मताग्रह के, दबाव में व्यर्थ के आपसी वाद-विवाद ,लड़ाई-झगड़े में उलझकर अपने अमूल्य समय को व्यर्थ कर यों ही अपनी जीवन आयु पूरी कर देते हैं,
इन मतान्ध, बेवकूफों को केवल अपने
मतों की चिन्ता है,अपने पक्षों की फिक्र है, आँख खोलने की नही,
आँख खुले बिना समाधान कदापि नही है, इसके लिए प्रत्यक्ष स्पष्टतः सम्यक् मार्ग है,
(अध्यारोपित कृत्रिम वेदान्त ज्ञान के सम्मोहन में दिग्भ्रमित कुछ मूर्ख जन कहते हैं, न पाप है, न पुण्य,
न शुभ है, न अशुभ,
जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, यह सब माया का खेल है,
जगत मिथ्या है, यह जो व्यवहार है, सत्य है ही नही, उसके प्रति क्या सजग रहना, कैसी व्यावहारिक सत्यता,
कैसी व्यावहारिक सत्यता का पालन, सब माया का कार्य है,

हर कोई मुक्त है ही, यह तो उसका स्वभाव है, अध्यारोपित शास्त्र प्रमाण के आधार पर अध्यारोपित ब्रह्म संबंधी कृत्रिम धारणा में भले ही वे अपनी आरोपित दिग्भ्रमित मान्यता में मुक्त हों,
पर यथार्थ के धरातल में नही,
ठीक भी है, कल्पित मान्यता को थोड़ी ही मुक्त होना है,
(मुक्त तो मान्यता से होना है,)
झट से किसी मतान्ध की नाक बंद कर दो, दबाव में वह फड़फड़ाने लगेगा, उसका सारा आरोपित झूठा ब्रह्म ज्ञान का नशा भी उतरने लगेगा,
अब जाकर उसकी कुछ मूर्छा भंग होने लगेगी, कुछ बेईमानी गिरने लगेगी,
कुछ झूठ गिरने लगेगा,
और वह सीधे व्यावहारिक धरातल जहाँ जी रहा है, उस
व्यवहारिक तल पर आ जाएगा, अपनी औकात में आ जाएगा,
तब फिर उसे कहो, अभी जिसे दबाव महसूस हो रहा है,दुख हो ,रहा है, उसे मुक्त कर दो, उस पर कृपा करो,
(ब्रह्म संबंधित मान्यता तो बस मान्यता है, काल्पनिक मान्यता को थोड़े ही मुक्त होना है,
(क्योंकि कल्पना में, मुक्ति की कल्पना करना स्वाभाविक है,)
पर व्यावहारिक धरातल में जिसे दुःख हो रहा है, उसे मुक्त करना कल्पना में नही हो सकता,
यद्यपि ऐसा कहना भी असल में अपेक्षित दृष्टिकोण में ही है,
इस संबंध में सत्य क्या है, यह प्रश्न सार्थक है |
यह जो कुछ भी आभास हो रहा है,
इसे कथित वेदान्तियों के दृष्टिकोण से न तो मिथ्या कहना है, और न ही अपनी तरफ से इसे सत्य कहना है,
(ऐसा नही कि इसका किसी भी अर्थ में कोई अस्तित्व है ही नही, कहीं, किसी न किसी अर्थ में इसका अस्तित्व तो है ही, तभी तो यह जिस अर्थ में है, उस अर्थ में भासित हो रहा,उन कथित वेदान्तियों को भी भासित हो रहा है,
भासित ही नही हो रहा है, वे इससे प्रभावित भी हैं,माया के झूठे बहाने से नही बच सकते,
जैसे बिल्ली को देखकर कबूतर आँख मींच के बैठ जाए,
कहे कि बिल्ली तो है ही नही, यह तो मिथ्या है,
इससे क्या कबूतर बच जाएगा,)
यह जो कुछ भी आभास हो रहा है, तुम कथित वेदान्तियों की तरह माया का बहाना मत बनाना,
यह जिस दृष्टिकोण से, जिस अर्थ में भासित है, इसे नजरअंदाज नहीं करना है, इसका प्रभाव है, माया का बहाना बनाकर, इसे यों ही मिथ्या कहकर, नजरअंदाज कर इसके प्रभाव से तुम ऐसे ही मुक्त नही हो सकते हो,
सम्यक् जिज्ञासा के आधार पर
मात्र ज्ञात भर होने के निमित्त यह स्वीकार हो,
कि यह जो भी आभास हो रहा है, यह जिस दृष्टिकोण से,जिस अर्थ में भासित हो रहा है, उस दृष्टिकोण से उस अर्थ में यह अपनी जगह का सत्य है,
लेकिन यह भलीभाँति स्पष्ट नही है,
इसलिए इस संदर्भ में सत्यता (सच्चाई) स्पष्ट नही है,
इस संदर्भ में पूरी सच्चाई खुले,
इसके लिए यह जैसा भासित हो रहा है,
ठीक वैसा ही भलीभाँति स्पष्ट हो,
इस निमित्त से वहाँ स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना है,
इस प्रकार से ही पूरी जिम्मेदारी से तुम उसका सामना करोगे,
यथा सहजता पूर्वक, यथा सजगता पूर्वक भलीभाँति ठीक ठीक स्पष्टता के निमित्त उसका सामना करोगे,
(यह जो आभास हो रहा है, बिना कोई आरोप हुए, अगर वैसा ही स्पष्ट हो जाए,)
तो उस संदर्भ में अवश्य ही सच्चाई खुलेगी,
और उस सच्चाई के धरातल से ही उत्तरोत्तर सम्यक् से सम्यक् अर्थ में, सम्यक् से सम्यक् दिशा स्पष्ट भी होगी, सम्यक् अर्थ में यथार्थ स्पष्टता का मार्ग स्पष्ट होगा,
तुम्हें कथित वेदांतियों की माया संबंधी कृत्रिम अध्यारोप के स्वसम्मोहन में ही दिग्भ्रमित नही रहना है, क्योंकि फिर प्रत्यक्षतः स्पष्टतः बढ़ना नही हो पाएगा, और पूर्वाग्रह के दबाव में सम्मोहन वश अपने
ही आरोपित मान्यता में बंद हो जाओगे,
(यहाँ कथित अर्थ में वेदांतियों व उनके अध्यारोपित कृत्रिम मत की निंदा नही है, तुम्हारे सम्यक् कल्याणार्थ
तुम्हारा सम्यक् दिशा में ,सम्यक् अर्थ में स्पष्टतः विवेक जाग्रत हो,
इस निमित्त से सम्यक् न्याय पूर्वक
सम्यक् जिज्ञासा में बाधक कथित वेदान्त के नकारात्मक पहलू से, नकारात्मक दृष्टिकोण से तुम्हें सावधान किया गया है,)

इसीलिए भलीभाँति अवलोकन किए बिना किसी भी तथ्य के संदर्भ में
अमुक शास्त्र ऐसा कह रहा है, अमुक परम्परा ऐसा कह रही है,
इस आधार पर पहले से ही सही अथवा गलत मत कहना,
अगर तुम बिना किसी पूर्वाग्रह के सम्यक् अर्थ में,सम्यक् दिशा में शोधरत हो,
तो तब तुम सम्यक् अर्थ में भलीभाँति स्पष्ट हुए बिना अपनी तरफ से आरोप करने की,निर्णय करने की शीघ्रता (जल्दबाजी) नही करोगे,
किसी भी तथ्य के संदर्भ में सम्यक् अर्थ में भलीभाँति स्पष्ट होने तक
धैर्य को भंग नही करोगे,
जिसे कथित वेदान्ती मिथ्या कहकर बचते हैं, उसका तथ्य पूर्वक सामना होगा,
माया का बहाना बनाना,
स्वयं की जिम्मेदारी से भागना है, स्वयं के
ईमानदार होने से भागना है,
ऐसी मिथ्या दृष्टि से जिम्मेदारी प्रभावित होती है, ईमानदारी प्रभावित होती है,
उत्तरोत्तर अभ्यास के निमित्त तत्परता
नही रह जाती है,
जिससे यथार्थ धरातल में
यथार्थ सत्य से चूक होना स्वाभाविक है
यथार्थ में
आँख खुले बिना कोई उपाय नही, कोई उपाय नही,
और उत्तरोत्तर सहजता के, सजगता के सम्यक् मापदंड पूरे किए बिना सम्यक् अर्थ में सम्यक् दिशा में दृष्टि नही खुल सकती,
माया का,प्रारब्ध का बहाना बना कर यों ही मतांध ही बने रहो, दिग्भ्रमित ही रहो,
तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य है|
उदाहरण के लिए जैसे अथातो ब्रह्म जिज्ञासा,
यह सम्यक् अर्थ में जिज्ञासा नही है, जिज्ञासा के नाम पर
यह ब्रह्म संबंधित मान्यता का आरोप है,
सहज स्वाभाविक जिज्ञासा मात्र सत्य की हो सकती है,
वह भी मात्र सत्य अर्थ में,
किसी भी संदर्भ में किसी भी आरोपित धारणा विशेष के अर्थ में नही,
फिर वह आरोपित ब्रह्म संबंधित धारणा ही क्यों न हो,
जो सहज स्वाभाविक जिज्ञासा नही है,
इसलिए सम्मोहन जनक कृत्रिम धारणा से सावधान रहो,
सम्मोहन जनक अध्यारोपित कृत्रिम शास्त्रों के जाल जंजाल से मुक्त रहो,
अपौरुषेय सम्यक् ऋत् सनातन धर्म से अभिप्रेरित रहो,
सहज स्वाभाविक मूल जिज्ञासा, मूल अभीप्सा के अर्थ में यथा सहज,यथा सजग संवेदनशील रहो,
यथा सहजता में बाहरी आँख बंद रखते हुए, भीतर से नासाग्र की ठीक सीध में जहाँ सहज श्वास का स्पष्ट आभास हो रहा है, वही श्वास के आभास में पूरी सावधानी के साथ निगरानी रखनी है, ताकि हर
श्वास की यथावत् जानकारी हो, जानकारी भंग न हो, सतत तेल धारावत जानकारी बनी रहे, इसके लिए पूरी सावधानी हो,
ज्ञान में स्थिरता एकटक चौकस निगरानी पर निर्भर है,
कम से कम पैंतालीस मिनट तक यथा सहजता पूर्वक, यथा सजगता पूर्वक एकटक निगरानी रहे,
निगरानी भंग न हो, जब तक निगरानी बनी हुई है, तभी तक जानकारी भी बनी हुई है, निगरानी भंग होते ही, ज्ञात होना भी भंग हो जाता है,
यह बात तुम्हें भलीभाँति ज्ञात होनी आवश्यक है, कि निगरानी पर ही ज्ञात होने में स्थिरता निर्भर है,
कम से कम पैंतालीस मिनट तक श्वास के ज्ञात भर होने में तैल धारावत एकटक चौकस निगरानी अगर बन गयी तो
इतने भर में, ज्ञात भर होना उत्तरोत्तर पहले की अपेक्षा बहुत ही स्थिरता व स्पष्टता पूर्वक हो जाएगा, जहाँ साथ ही दृष्टि की>
बुद्धि की सूक्ष्मता भी स्पष्ट होगी,
सूक्ष्मदृष्टि > सूक्ष्म बुद्धि के खुलने से, उसी के समानुपात में सूक्ष्म धारणा शक्ति भी खुलेगी,
उस सूक्ष्म धारणा शक्ति >सूक्ष्म संकल्प शक्ति में साधक
सूक्ष्म अंतराल (सूक्ष्म आकाश) में सूक्ष्म विद्युतीय शरीर में सघनित हो प्रत्यक्ष स्पष्टतः प्रवेश करने में समर्थ
है, यहाँ साधक ऋद्धिपाद से युक्त होता है, दिव्य शक्तियों
में निमित्त अधिकार प्राप्त करता है,
इससे भी सीधे होने पर सही ओर मे होने पर सम्यक् सम्प्रज्ञान का आयाम है .....

आरोपित वक्र दृष्टि कोण जब तक बना हुआ है, तभी तक किसी भी संदर्भ में भ्रान्ति है, संशय है, संदेह है,अज्ञान है,
आरोपित वक्र दृष्टिकोण के हटते ही निर्दोषता है, निष्पक्षता है, निश्छलता है, निष्पापता है, न कोई भ्रान्ति, न कोई संदेह, न कोई संशय न कोई अज्ञान और न ही कोई दुख,
पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता,
इसलिए अपनी तरफ, से कोई आरोपित दृष्टि नही हो,
बिना किसी माँग के, बिना किसी शर्त के, बिना किसी आग्रह के, बिना किसी अपेक्षा के,
सत्य से ही सत्य जैसा है, दिखने के निमित्त समर्पण पूरा होने पर ही सम्यक् अर्थ में यथार्थ स्पष्टता है, सम्यक् अर्थ में पूर्ण समाधान है |

04 October 2020

कई लोग शिकायत करते हैं,
सामान्यतया जब कभी भी ध्यान में बैठना होता है,
तब पूरी निश्चिंतता से ध्यान में बैठना नही हो पाता,
ध्यान से मन उचटने लगता है,और ध्यान में मन नही लगता, संसार का अपेक्षित दबाव मन को अपनी तरफ खींचने लगता है,
उनसे यही कहा जा सकता है,
कि अपनी दिनचर्या में २४ घंटे के अंतराल में कम से कम से कम
४ घंटे सम्यक् ध्यान अभ्यास में अवश्य रहो,
नियमित ध्यान अभ्यास में बैठो,
बैठते हुए, खड़े रहते हुए, चलते हुए हर परिस्थिति में ध्यान अभ्यास में ही जुटे रहो,मन की चिंता छोड़ों,
मन आदतों का गुलाम है,
भले ही मन अभी गलत आदतों का गुलाम है,
(परंतु गलत आदतों से हट कर)
नियमित ध्यान अभ्यास में बैठते रहने से मन आदतन ध्यान अभ्यास के निमित्त वशीभूत हो जाएगा,
तुम्हारी दृष्टि में वहीं का अधिक महत्व रहता है, जहाँ तुम अधिक समय बिताते हो, तब निश्चित ही तुम्हारे जीवन में वहाँ का प्रभाव अधिक रहता है,
उदाहरण के लिए जैसे १ घंटे में ही किसी कार्य के बदले लाभ (मुनाफे) में १००अरब रूपये आ रहे हों,
और अगर वह समय तुम्हारा ध्यान का समय हो, तो तुममें से कई कह सकते हैं,
अभी यह मौका हाथ से जाना नही चाहिए,
ध्यान तो बाद में भी हो जाएगा,
ध्यान कहीं भागा नही जा रहा,
फिर ध्यान हो जाएगा, अभी यह
मौका हाथ से निकल जाएगा, तब फिर कब मौका मिले,
इसी बात से पता चलता है, कि ध्यान अभ्यास को कौन कितना महत्व दे रहा है,
अगर कोई एक बार के ध्यान अभ्यास को छोड़ने के बदले
सम्पूर्ण भूमंडल का एकछत्र राज्य भी दे, तब भी अगर कोई
ध्यान अभ्यास से डिगे नही है,
तो समझ लो उसकी दृष्टि में ध्यान अभ्यास का कितना महत्व है,
अगर किसी भी अर्थ में कहीं कोई भ्रम, संशय, संदेह, अज्ञान बना हुआ है,
और ऐसी अज्ञानमय स्थिति में
सदा-सर्वदा के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का एकछत्र आधिपत्य भी मिल जाए, तो भला उसका क्या औचित्य है, क्या अर्थ है,क्या महत्व है,
कोई औचित्य नही, कोई अर्थ नही, कोई महत्व नहीं,
कुछ भी नही मिले, बस किसी भी अर्थ में कही कोई भ्रान्ति न रह जाए, कहीं कोई संशय न रह जाए, कही कोई संदेह न रह जाए, कहीं कोई अज्ञानता न रह जाए,
सही में जो भी सत्य है, जैसा भी सत्य है, स्पष्ट हो,
अगर यही मात्र लक्ष्य है, तब तो तुम्हारे
जन्म की सार्थकता है, और तब सम्यक् लक्ष्यार्थ ध्यान अभ्यास में पूर्ण निश्चिंतता संभव है,
हाँ अगर तुम धन,वैभव, मान-सम्मान,
यश-ऐश्वर्य, सत्ता,शक्ति, ईश्वरत्व प्राप्ति
को महत्व देते हो, तब अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में तुम्हारे मन का औपचारिक ध्यान अभ्यास से उचटना स्वाभाविक है,

भला जब तक धन,वैभव,मान-सम्मान, यश -ऐश्वर्य, सत्ता, शक्ति, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व प्राप्ति की भूख है,
तब तक कदापि यथार्थ सत्य स्पष्टता के लिए तड़प नही हो सकती,
शक्ति का उपासक कदापि सत्य का उपासक नही हो सकता,
लोकदृष्टि जो लक्ष्य है, वह सम्यक् दृष्टि का लक्ष्य नही है,और सम्यक् दृष्टि का जो लक्ष्य है, वह लोकदृष्टि का लक्ष्य नही है,
सम्यक् दृष्टि का लक्ष्य प्राप्ति का लक्ष्य नही है, अपितु सम्यक् यथार्थ स्पष्टता का है,
बस सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही बस सम्यक् यथार्थ ओर ही मात्र समर्पण हो|
शक्ति, सामर्थ्य, पद, प्रतिष्ठा, अधिकार व ऐश्वर्य के उपासक कदापि पवित्रतम् सम्यक् मार्ग में प्रविष्ट नही हो सकते,
परोक्षतः कोई भी भ्रान्ति में, धोखे में नही रहना चाहता, सत्य स्पष्टता में रहना चाहता है,
क्योंकि हो सकता है, जो जिस भ्रान्ति से मुक्त होना चाहता है, वह भ्रान्ति और वह जो मुक्त होना चाहता है, वह जो स्वयं अपने को जो मान रहा है,हो सकता है वह भी एक भ्रान्ति हो, इसलिए हर कोण से विकल्प खुला रखो, तभी किसी भी अर्थ में कोई भ्रान्ति न रहे, यह बात हो सकती है, स्वयं को सत्य स्पष्ट हो,
यह बात भी नही, बस सत्य स्पष्ट हो, किसे स्पष्ट हो इसका अर्थ नही, बस सत्य स्पष्टता ही हो,
जो कहते हैं स्वयं को सत्य स्पष्ट हो,
वे स्वयं के अर्थ को बचा रहे हैं,
इसलिए वहाँ समर्पण पूर्ण नही है,
समर्पण तभी पूर्ण है, जब स्वयं सत्य ही बचे,
सत्य के बचने पर स्वयं का बचना हो, तब भी ठीक है,
और अगर सत्य के बचने पर स्वयं का बचना न हो,
तब भी ठीक है, बस सत्य ही बचे, और बचा हुआ सत्य ही स्पष्ट हो,
क्योंकि किसी भी स्थिति में जो भी सत्य है, बचा ही रहेगा,(जो भी सत्य है, जैसा भी सत्य है, ठीक वैसा ही स्पष्ट हो, अन्य अर्थ में नही,)
इसलिए जो भी सत्य मात्र बचता है,
बस मात्र , सत्य ही स्पष्ट हो,
सम्यक् सत्य स्पष्टता में भ्रान्ति का अस्तित्व नही,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता में स्वयं के होने अथवा नही होने का कोई अर्थ नही है,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही निमित्त की भूमिका बस निमित्त अर्थ में स्पष्ट है, होने अथवा नही होने के अर्थ में नही,
प्रति दिन में कोई १धंटा, २ घंटा ध्यान में बैठने से संसार के नकारात्मक अपेक्षित प्रभाव से तुम मुक्त नही हो सकते,
अगर २० घंटे भी संसार में रहते हो, तो कम से कम ४ घंटे ध्यान अभ्यास में अवश्य ही बिताओ,
और धीरे-धीरे ध्यान अभ्यास में बैठने के समय अनुपात को बढ़ाते जाओ, ध्यान में मन लगे या न लगे समय -,समय पर नियमित ध्यान अभ्यास में अवश्य बैठो,
भले ही कितना ही मन उचटे, यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए कम से कम उस उच्चाटन को ही धैर्यपूर्वक सहन करो, कुछ भी नही,तो वह उच्चाटन ही भलीभाँति ज्ञात होता रहे, यह भी ध्यान ही है, एक बार भी उच्चाटन भलीभाँति ज्ञात हो गया, तो फिर उच्चाटन हावी नही हो सकता,
जो भी तुम्हें प्रभावित कर रहा है, उसका भलीभाँति ठीक-ठीक ज्ञान नही होने से उसका प्रभाव तुम पर हावी है, इसलिए भलीभाँति ठीक -ठीक ज्ञान स्पष्ट हो,इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहो,
बचने की कोशिश मत करो,
इसमें समाधान नही है,
हाँ काम, क्रोध आदि नकारात्मक उद्वेग उत्पन्न हो तो,
उसका सीधे सामना मत करो,
क्योंकि अगर तुम्हें लगता हो, कि तुम्हारे पास अभी इन प्रबल आवेगों को सहन व वहन करने की पर्याप्त क्षमता नही है, तो सीधे सामना मत करो, क्योंकि अगर भलीभाँति ठीक -ठीक स्पष्टता के निमित्त अगर उन प्रबल नकारात्मक आवेगों में संभल नही सकते तो,
तो वहाँ उन नकारात्मक प्रभाव में बह जाओगे,
प्रबल नकारात्मक प्रभाव के प्रति साक्षी पूर्वक सजग होने की बात दर्शन शास्त्र तक ही सीमित है, प्रत्यक्ष प्रायोगिक धरातल में नही,
क्योंकि द्रष्टा हो> साक्षी हो सजग होना अलग से आरोपित है, और जो आरोपित है, वह कृत्रिम है, सहज नही,
प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव को लेकर है,
इसलिए यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः यथा सजग होने की बात वहाँ हो ही नही सकती,
बिना किसी आरोपित भाव (द्रष्टा > साक्षी) के बस केवल ज्ञात भर होने के निमित्त ही यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः यथा सजग होने की बात हो सकती है,
और किसी भी संदर्भ में यथार्थतः सच्चाई की बात हो सकती है,

मात्र ज्ञात भर होने के निमित्त कहीं भी ध्यान बँटा हुआ नही रहता, ध्यान अंतराल रहित व अखंड रहता है,
चूंकि ऊर्जा का भी ध्यान की दिशा व दशा में अनुगमन है, इसलिए मात्र ज्ञात भर होने में ध्यान अंतराल रहित अखंड होने से ऊर्जा भी अंतराल रहित अखंड रहती है,
और ज्ञात भर होने के सहज स्वभाव से इतर अलग से दृष्टा > साक्षी का आरोप होते ही ध्यान बँट जाता है,
ध्यान के बँटते ही ऊर्जा भी बँट जाती है,
खंडित ध्यान में, खंडित ऊर्जा में प्रबल नकारात्मक आवेगों का सीधा सामना करने की सक्षमता नही होती,
इसलिए बिना कोई विलंब किए सीधे ही यथा सहजता पूर्वक श्वास के ज्ञान में आ जाओ,
भले ही अभी सीधे ही विशुद्धतः ज्ञान मात्र के निमित्त तुम्हारी
उपस्थिति नही हो सकती,
पर श्वास के सामान्यतः ज्ञात होने का अवलंबन तुम्हारी उपस्थिति तुम्हारे सहन व वहन करने की क्षमता के अनुरूप है,
इसलिए बिना कोई विलंब किए यथा सहजता पूर्वक पूरी तरह से श्वास के ज्ञात होने में आ जाओ, और वहाँ तुम पूरी तरह से सुरक्षित हो, संरक्षित हो,
यथा सहजता पूर्वक श्वास के ज्ञान के अवलंबन में
प्रबल से प्रबल नकारात्मक प्रभाव भी यथा सहजता पूर्वक सहन व वहन हो जाता है, गिरना नही हो पाता,
और यथा सहजता पूर्वक श्वास के ज्ञान के अंतर्गत
सहज ही उसकी यथावत् सच्चाई भी स्पष्ट हो जाती है,
किसी भी संदर्भ में यथावत् सच्चाई खुलने पर उस संदर्भ में जो आकर्षण व प्रभाव है, वह नही रह जाता,
क्योंकि श्वास की सहज सामान्य प्रकृति ही कुछ ऐसी है,श्वास का सहज सामान्य स्वरूप ही कुछ ऐसा है,
कि उसके अनुसार यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग होने से कितना भी प्रबल नकारात्मक प्रभाव हो, वह नकारात्मक प्रभाव भी उसकी पूरी सच्चाई के साथ अर्थ हीन हो जाता है....

04 October 2020

पुनः पुनः विषय भोग की इच्छा इस बात का प्रमाण है, कि भोग के तल पर तृप्ति नही,
एक बार शांत गहरे ध्यान में उतर जाओ, शान्त होने मे जो तृप्ति है, वह भोगने में नही....
" भोग > अतृप्ति > पुनः भोगने की इच्छा > पुनः भोग"
भोग के तल पर, भोक्ता के तल पर यह एक ऐसा अंतहीन सापेक्षिक वर्तुल है,
जहाँ सुख की खोज में दिग्भ्रमित अज्ञ जन सदा अतृप्त व
अशांत ही बने रहते है,
भोक्ता भाव से साक्षी भाव श्रेष्ठ है, और साक्षी भाव से ज्ञान मात्र....
भोक्ता भाव में भोग में तदात्म्यता रहती है, तल्लीनता रहती है,
साक्षी भाव में
भोग के साथ तदात्म्यता तो नही रहती,
पर पृथक दृष्टा भाव का आरोप रहता है,
पर ज्ञान मात्र में न तो पृथक दृष्टा भाव का आरोप है, और न ही भोग में तन्मयता,
पूरे होश में सजग रहने पर संबंधित भोग में ज्ञान मात्र के निमित्त ही
उपस्थिति होती है, तब न भोक्ता भाव ग्रहण होता है, न ही भोग भावना ही ग्रहण होती,है, बस विशुद्ध ज्ञात भर होना ही ग्रहण होता है,
संबंधित विषय भोग में तदात्म्य होने पर तल्लीन होने पर ही
भोक्ता भाव का आरोप होता है, भोग
भावना ग्रहण होती है,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही उपस्थिति होने पर ही पूरा का पूरा होश, पूरी की पूरी सजगता होती है,
इसलिए ज्ञान मात्र में ही भोग की पूर्ण सार सच्चाई का स्पष्ट होना पूर्णतः स्वाभाविक है, न कि भोक्ता अथवा साक्षी भाव में,
पूरे के पूरे होश में पूरी तरह सजग होने में न तो भोक्ता भाव का आरोप होता है,
और न ही साक्षी भाव का ही आरोप होता है, सहज ही सीधे ज्ञान मात्र ही स्पष्ट है,
ज्ञान मात्र में " पवित्र " ज्ञान मात्र अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होना ही ग्रहण है,
जरा भी संबंधित अर्थ ग्रहण नही है,
ज्ञान मात्र में ही परिपूर्ण आप्त तृप्ति है,
तदात्म्यता में नही,
ज्ञान मात्र की पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,

जहाँ किसी भी अर्थ में कोई दिग्भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई संदेह नही, कोई अज्ञान नही, कोई अपूर्णता नही, कोई बंधन नही, कोई दुख नही, कोई क्लेश नही...

05 October 2020

धर्म आँख है, ,धर्म दिशा है, धर्म आचरण है,
बल है, गति है|
.** विश्व भर में जहाँ कहीं भी किसी भी अर्थ में नैतिकता है, मानवता है, उसका आधार पवित्र सद्धर्म ही है!
**धर्म व्यापक है, सार्वभौमिक है, सार्वजनिक है,
अध्यारोपित संप्रदाय वाद से मुक्त है, किसी भी अर्थ के मिथक व मिथ्या दृष्टि से सर्वथा मुक्त है,
सभी धर्मों के मूल में ऋत् (स्वभाव धर्म) का ही संकेत है |
भले ही तुम्हारी शारीरिक बनावट, तुम्हारा देखना, सुनना इत्यादि
ऐन्द्रिक व्यवहार ही समय, आकाश के समानान्तर क्रम
में व्यवस्थित है, परंतु ज्ञान इस प्रभाव से मुक्त है,
स्थिर पवित्र ज्ञान का आश्रय इस पूर्ववत आभास के समानान्तर क्रम के बंधन से मुक्त करता है, (संक्षेप में समानान्तर क्रम का यहाँ संकेत किया है)
(एक सेकेण्ड के बीतने पर जो एक सेकेण्ड उत्पन्न होता है, तो सेकेण्ड के तल पर समानान्तर क्रम में एक वर्तुल पूरा होता है, इसी तरह सेकेण्ड के तल पर समानान्तर क्रम के साठ वर्तुल पूरा होने पर एक मिनट का एक वर्तुल बनता है,(अर्थात् सेकेण्ड के तल समान्तर क्रम के साठ वर्तुल पूरा होने पर जो दबाव बनता है,
उसमें एक मिनट का वर्तुल बनेगा,) उसी तरह एक मिनट के साठ वर्तुल पूरा होने पर एक घण्टे का एक वर्तुल बनता है इसी प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर वर्ष, सदी, सहस्त्राब्दि, युग, कल्प, मनवन्तर, परार्ध इससे भी स्थूल से स्थूल प्रकरण में यह बात है , यही बात क्रमशः सेकेण्ड से कम समय के परपेक्ष्य में उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म होते क्रम में लागू है|
जहाँ सेकेण्ड के सेकेण्ड की जगह पर, मिनट के मिनट की जगह पर, घण्टे के घण्टे की जगह पर इससे भी स्थूलतर होते क्रम में आगे से आगे क्रमशः उत्तरोत्तर समानान्तर क्रम का वर्तुल यथावत् है,
इसी तरह पदार्थ के संदर्भ में परमाणु के बीतने पर उसी के समानान्तर क्रम में जो परमाणु उत्पन्न होता है, परमाणु
के स्तर पर यह एक वर्तुल पूरा हुआ, इसी प्रकार परमाणु
के स्तर पर कई वर्तुल पूरा होने पर पदार्थ का पदार्थ के तल पर वर्तुल बनता है,
परमाणु के परमाणु की जगह पर, पदार्थ के पदार्थ की जगह पर,व परमाणु से सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर पर व पदार्थ
से भी स्थूल से स्थूल स्तर पर
समानान्तर क्रम का वर्तुल यथावत् है, जहाँ यह प्राकृतिक ज्यामिति का स्वरूप सुनिश्चित है,)
**** श्वास के जाने पर अब जो श्वास आ रही है, श्वास के संदर्भ में यह एक वर्तुल पूरा हुआ,
समान्य जन सापेक्षिक वर्तुल के इस पूर्ववत आभास
के बंधन में ही अपनी जीवन आयु पूरी कर देते हैं,
कुछ सम्यक् निष्ठ, सम्यक् जिज्ञासु जन ही इस सापेक्षिक वर्तुल के पूर्ववत् आभास के बंधन से मुक्त हो,यथा सहज
स्थिति में होते हैं,
*** श्वसन प्रक्रिया के प्रति जितना ही यथा सहजता में
रहते हुए यथा सजग होते हैं,
उतना ही उसकी जानकारी और स्थिरता पूर्वक भलीभाँति ठीक-ठीक स्पष्ट होती है,
श्वसन प्रक्रिया के प्रति यथा सहजता में यथा सजगता जब
पूरी होती है, तब श्वास अपनी पूर्ण यथा सहजता में होती है,
तब श्वास के संदर्भ में कोई तनाव,
कोई दबाव, कोई असहजता, कोई भारीपन जरा भी महसूस नही होता,
बल्कि उसी तल पर पूर्ण यथा सहज हुयी श्वास की
यथा सहजता में स्थिरतापूर्वक भलीभाँति ठीक-ठीक
यथावत् जानकारी स्पष्ट रहती है,
श्वास के आने, जाने के मध्य के अंतराल में उससे भी और सीधे, उससे भी और सूक्ष्म स्तर में बीतने और उत्पन्न होने का समानान्तर क्रम जारी है, और इस सूक्ष्म स्तर के बीतने और उत्पन्न होने के मध्य के अंतराल में उससे भी सूक्ष्म बीतने और उत्पन्न होने का समानान्तर क्रम जारी है, उत्तरोत्तर क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते स्तर में यह क्रम जारी ही रहता है,
श्वास के जाने पर ही श्वास के आने के लिए दबाव बनता है, यह दबाव यहीं से संबंधित नही है, उससे भी गहरे, उससे भी सूक्ष्म स्तर में उससे भी मध्य के अंतराल में बीतने पर उत्पन्न होने से है,
और उस सूक्ष्म स्तर में भी बीतने पर उत्पन्न होने के लिए जो दबाव बन रहा है, वह दबाव भी वहीं से संबंधित

नही है, बल्कि उससे भी सीधे उससे भी सूक्ष्म स्तर में, उसके भी मध्य के अंतराल में बहुत सूक्ष्म स्तर पर बीतने पर के दबाव पर निर्भर है, यही बात क्रमशः उत्तरोत्तर है,
इस प्रकार दबाव का मूल सबसे सूक्ष्म स्तर पर ही सिद्ध होता है,
सत्यता पूर्वक , ईमानदारी व तत्परता पूर्वक उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास के निमित्त उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म, मध्य से मध्य के अंतराल में स्पष्टतः प्रत्यक्ष प्रवेश व स्थिति होती जाती है,
और उतना ही भलीभाँति ठीक-ठीक स्पष्टता के निमित्त पूर्व के दबाव पर भी नियंत्रण होता जाता है,
पूर्व का यह दबाव बहुत ही बहुत ही सघन > pacKd है,
अरबों परमाणु बमों (Atom bomb)के विस्फोट से जो दबाव बनता है,
उससे अधिक यह जो दबाव है,
उस पर भी नियंत्रण हो जाता है, ऐसा नही कि वहाँ कोई नियंत्रण कर रहा है, भलीभाँति ठीक-ठीक यथावत्,स्पष्टता के निमित्त होने में सहज ही नियंत्रण है,
जहाँ निमित्त, निमित्त अर्थ में दिव्य शक्तियों से युक्त होता है,
सम्पूर्ण ऋद्धियों, सम्पूर्ण कला, व सम्पूर्ण सिद्धियों से सम्पन्न होता है,
वहाँ सहन और वहन करने की क्षमता- स्फूर्ति इतनी अधिक होती है, कि एक सेकेण्ड के अरबवें भाग से भी कम समय में अरबों प्रकाश वर्ष से भी अधिक की दूरी
तय होना संभव हो जाता है,(अधिकांश अल्पज्ञ भौतिक वैज्ञानिक प्रकाश की गति से अधिक किसी की भी गति को नही मानते, स्थूल सापेक्षिक दृष्टिभ्रम में ऐसा भासित होना स्वाभाविक है,)
यह द्वितीय ध्यान (शुक्ल ध्यान)
स्थिति की विशेषता है, सापेक्षिक भावनीय भावनाओं के पूर्ण होते ही राग, द्वेष, मोह भी अवलंबन के नही रहने पर निरुद्ध हो जाता है |
इससे भी आगे जब संबंधित ज्ञान के संदर्भ में यथा सहजता, यथा सजगता का मापदंड पूरा हो जाता है,
तब समय, आकाश, दूरी, गति व दबाव पर पूर्णतः सहज नियंत्रण हो जाता है, और (जहाँ) संबंधित ज्ञान से संबंध का आरोप भंग होने से विशुद्धतः सहज ज्ञान मात्र ही शेष स्पष्ट है|
साधक का लोकैषणा के अर्थ में दृष्टिकोण न हो, सम्यक् ज्ञान के निमित्त ही सम्यक् सत्य स्पष्टता के निमित्त ही मात्र लक्ष्य हो, कुछ होने, कुछ बनने, कुछ पाने के अर्थ में लक्ष्य नही हो, ऋद्धि, सिद्धि, मान, सम्मान, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य अथवा शक्ति लाभ आदि के लिए साधना का लक्ष्य कदापि न हो |
** सत्य के संदर्भ में अपनी तरफ से कोई भी पूर्व सुनिश्चित मान्यता
कि सत्य ऐसा है, या वैसा है, नही हो,
और कोई आग्रह कि सत्य ऐसा हो, या वैसा हो इत्यादि कदापि न हो |
पवित्र सम्यक् मार्ग में शक्ति का साधक कदापि प्रवेश नही कर सकता, किसी भी अर्थ के मिथ्यात्व व मिथ्या दृष्टि का प्रवेश परम् परम् पवित्रतम् विशुद्धतम् मार्ग में कदापि नही,
बिना किसी माँग, बिना किसी शर्त, बिना किसी समझौता, व अपेक्षा के मात्र यथा सत्य स्पष्टता के निमित्त पूरा सहज समर्पण हो, मात्र यथा सत्य स्पष्टता में सही अर्थ में कल्याण के निमित्त पूरा-पूरा न्याय है, यह सम्यक् आप्त पुरुष का आप्त प्रमाणित वचन है,सत्य प्रतिज्ञा है....

05 October 2020

06 October 2020

दर्शन (दिखना) सीधे अनंत से ही है,
जो बिना किसी स्थापना के सहज ही उपस्थित है, (सापेक्षिक दबाव में नही है,)
पर दृष्टि सीधे अनंत से नही है,
अपितु स्थापित है,
सापेक्षिक दबाव में आरोपित किसी एक कोण विशेष से उसका आरंभ है,
(तुम्हारा किसी कोण विशेष से संबंधित होना ही अवरोध है,)
ध्यान रहे,
दर्शन व दृष्टि का सूक्ष्म अंतर स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
दृष्टि आरोपित है, किसी कोण विशेष से है,
पर 'दर्शन मात्र' का होना आरोपित नही है, सहज उपस्थित है, किसी कोण विशेष से आबद्ध नही,
जब तक दृष्टि विशेष का आरोप है,
तब तक कदापि यथावत् दर्शन स्पष्ट नही है, सापेक्षिक आभास ही है,
किसी कोण विशेष से (होने से) जो दृष्टि है,
वह सापेक्षिक दबाव स्वरूप वक्रता में है, इसलिए जब तक तुम दृष्टा हो,
तब तक जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह दर्शन के नाम पर सापेक्षिक आभास (परोक्षतः सीमित आंशिक दर्शन) है,
न कि स्पष्टतः प्रत्यक्ष सम्यक् दर्शन,
दर्शन मात्र में तुम्हारी भूमिका बस उपस्थित भर की है,
इसमें जरा भी अपेक्षित < आरोपित दृष्टिकोण नही है, जरा भी किसी दृष्टि विशेष का आरोप नही है, स्थापना नही है,
इसलिए सहज उपस्थित दर्शन मात्र में निमित्त की बस उपस्थित भर होने की मात्र निमित्त भूमिका होने से निभ्रांत यथार्थ स्पष्टता स्वाभाविक है|
किसी कोण विशेष में ही किसी दृष्टि विशेष का आरोप स्वाभाविक है,
जहाँ दृष्टि है, वहाँ दृष्टा का आरोप स्वाभाविक है, ज्ञाता का आरोप स्वाभाविक है, साक्षी का आरोप स्वाभाविक है, कर्ता का आरोप स्वाभाविक है, अहंकार का आरोप स्वाभाविक है, आत्म भाव भावना का आरोप स्वाभाविक है,
अपेक्षित पूर्वाग्रह का, मताग्रह का आरोप स्वाभाविक है, परिणाम स्वरूप दिग्भ्रम का होना स्वाभाविक है|
लोकदृष्टि का मार्ग, लोकदृष्टि का धर्म सापेक्षिक है, सम्यक् नही,
सापेक्षिक मार्ग में, सापेक्षिक धर्म में ही दृष्टा का साक्षी का,अहंकार आदि आरोप का मिथ्या महिमामंडन है, जहाँ अध्यारोपित गीता,उपनिषद,पुराण,आगम आदि लोकाचार की पुस्तकें इसके लिए प्रमाण हैं,(गीता आदि अध्यारोपित शास्त्र प्रमाण एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त हैं
पर इससे भी सीधे व सही ओर पूर्ण केन्द्रीय संतुलन के निमित्त फिर अनुत्तर सम्यक् मार्ग का ही उपदेश है,)
पर अनुत्तर सम्यक् मार्ग, अनुत्तर, लोकोत्तर सम्यक् धर्म इससे भी सीधे व सही ओर है, इससे परे....... परिशुद्ध है,पवित्रम् है,
अपौरुषेय पवित्रतम् सम्यक् सनातन सद्धर्म के अनुसार दृष्टा का होना, साक्षी का होना, अहंकार आदि कृत्रिमता का होना यह सब आरोप की ही सीमा में है,
यथार्थतः सत्य नही,
अनुत्तर सम्यक् धर्म पवित्रतम् है,
किसी भी अध्यारोपित शास्त्र प्रमाण का
अवलंबन नही,
सत्य धर्म, यथावत् सत्यता के धर्म में होने से ही प्रमाणित है, इसलिए तभी सत्य धर्म है, आरोप से,अध्यारोप से कदापि नही....
यहाँ पर बार-बार लोक प्रचलित अध्यारोपित शास्त्रों का उनके स्तर के आधार पर न्यायसंगत उल्लेख तुम्हें सजग करने के लिए, सावधान करने के लिए है, क्योकि लोकदृष्टि में अध्यारोपित शास्त्रों का महत्व बुद्धि < सम्मोहन
बहुत ही प्रबलता से पूर्वाग्रह में बाँधता है,मताग्रह में बाँधता है,
जिसके दबाव में सहज स्फूर्त स्वविवेक दब कर रह जाता है,
सत्य जानने की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा दबकर रह जाती है,
इसलिए.....
समझदार के लिए इशारा काफी है....

07 October 2020

सामान्यतया जब भी कोई चलता है,

उसकी दृष्टि नाक के अग्रभाग की दिशा में लगभग ४५ अंश के कोण पर ही होती है, तभी उसके चलने में संतुलन बनता है, और तभी उसके चलने की स्थिति होती है, तब
ध्यान के लिए यह संकेत बहुत ही महत्वपूर्ण है...
इस संकेत के प्रति संवेदनशील रहो,
सम्यक् अर्थ में ध्यान का यह सबसे सहज व्यावहारिक संकेत है,
योग से संतुलन, व संतुलन से स्थिति का इससे सहज व्यावहारिक संकेत नही है....
सामान्यतः बैठते हुए, चलते हुए, या खड़े रहकर
ध्यान अभ्यास होता है,
यहाँ अभी चलते हुए ध्यान अभ्यास के बारे में संक्षिप्त में बताया जा रहा है,
आरंभिक ध्यान अभ्यासी के,लिए यह अधिक अनुकूल है, मन की चंचलता, दृष्टि की चंचलता का शान्त होना चलित ध्यान अभ्यास में सरलता से संभव है,
चलित ध्यान का अभ्यास बहुत ही आवश्यक है,
चलित ध्यान के लिए साधक नासिकाग्र की ठीक सीध में दृष्टि रखते हुए स्थिर, संतुलित मध्यम गति में चलता है,
नासिकाग्र की ठीक सीध से जरा भी इधर-उधर दृष्टि न हो, सीधे ठीक सामने नासिकाग्र की ठीक सीध की दिशा में ही दृष्टि हो, इस बात के लिए पूरी सावधानी रखता है,
स्थिर,संतुलित मध्यम गति में चलते समय
दो तरह का केन्द्रीकरण है,
(१) संतुलित मध्यम गति में चलते हुए कौन सा कदम कब उठ रहा है,
यह भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात हो,
इस बात के लिए चलित ध्यान का साधक यथा सहजतापूर्वक पूर्णतः सजग रहता है,
जरा सी भी चूक न हो, इस बात के लिए पूरा सावधान रहता है,
(२) संतुलित मध्यम गति में चलते हुए कौन सी श्वास अथवा प्रश्वास कब चल रही है, यह भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात हो,
इस बात के लिए चलित ध्यान का साधक यथा सहजतापूर्वक पूर्णतः सजग रहता है,
जरा सी भी चूक न हो, इस बात के लिए पूरा सावधान रहता है,
साधक अपनी यथा स्थिति के अनुसार दोनों में किसी का भी चुनाव कर सकता है, पर श्वास-प्रश्वास के प्रति यथा सहजतापूर्वक सजग रहना अधिक सहज है, स्वाभाविक है, सीधे है, केन्द्रीय है,
इस संदर्भ में फिर भी संतुलन की मांग के अनुसार ही चयन हो,
ध्यान रहे, चलित ध्यान का अभ्यास कम से कम ४५ मिनट तक अवश्य हो, वह भी सुरक्षित स्थान पर, जहाँ दुर्घटना की संभावना हो, वहाँ नही...
सामान्यतया जब तुम चलते हो,
सहज स्वाभाविक योग घटित हो रहा है,
बस कमी है,तो बस बोध की,
इसलिए अलग से तुम्हें योग युक्त होने की जरूरत नही है, बस वहाँ पूरे बोधपूर्वक भलीभाँति संभलते हुए
स्थिरता को पूरा करना है,
सामान्यतया जब तुम चलते हो, तुम्हारी दृष्टि नासाग्र की दिशा में होते हुए चलने की प्रक्रिया के संज्ञान की दिशा में ही होती है, तभी चलने में संतुलन बनता है,
यह सहज स्वाभाविक योग है.......
पर यह योग की पूर्णता नही है,इसलिए अलग से योग युक्त न होकर उसी सहज स्वाभाविक योग में भलीभाँति संभलना है,
भलीभाँति संभलने पर ही उससे
और सही दिशा में,और सीधे, और कम समय अंतराल में, और अभी के निकट वर्तमान में संभलकर उपस्थिति होने के लिए सकारात्मक दबाव बनता है,
उत्तरोत्तर भलीभाँति संभलने का यह क्रम जारी ही रहे, जब तक कि मात्र ज्ञान अर्थात् केवल बस ज्ञात भर होने की ठीक सीध में दृष्टि भलीभाँति स्थिर न हो जाए....
दृष्टि का ठीक मात्र ज्ञान अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होने की ठीक सीध में होना ही
सम्यक् अर्थ में योग की पूर्णता है..
लोक प्रचलित सभी योग पद्धतियाँ अध्यारोपित होने से कृत्रिम् है, उसमें चलने से कोई भी कभी न कभी "योग" भ्रष्ट होता ही है, पर मात्र ज्ञान की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता से भ्रष्ट होने का अर्थ ही नही...

08 October 2020

कच्चा घड़ा आग में तपना नही चाहता, वह अपनी परिस्थितिगत् प्रकृति के अनुसार गीला व कच्चा ही रहना चाहता है,

पर कुम्हार जानता है, पानी भरने के जिस काम के लिए इसे बनाया गया है, अगर इसमें पानी डाल दिया जाएगा,
तो यह थोड़ी ही देर में पानी में ही गलकर टूट जाएगा,
इसलिए कुम्हार उसे उसकी गीले व कच्चे रहने की प्रकृति के विपरीत उसे तपती हुई आग की भट्टी में डालकर भलीभाँति तपाकर पक्का करता है, और उसे उपयोग के योग्य बनाता है,
सामान्यतया तुम भी अपने मन की प्रकृति के अनुसार ही जीना चाहते है, पर सही यथार्थ ज्ञान को धारण करने की पात्रता के लिए जो तुम्हारा मनुष्य जन्म हुआ है,
जो तुम्हारे सही कल्याण के उद्देश्य से है,
वह पूरा नही हुआ, तो निश्चित ही महाहानि है,
फिर तुम्हारा यह मनुष्य जन्म व्यर्थ है,
सामान्यतः तुम्हारा मन की प्रकृति के अनुसार रहना,
तुम्हारे सही यथार्थ ज्ञान को धारण करनें की पात्रता के लिए अवरोध है,
मन की प्रकृति उसके अधोगमन प्रवृत्ति में है,
इसलिए मनमुखी व्यक्ति की उर्ध्व गति नही होती है,
प्रवृत्ति अनुसार अधोगमन ही होता है,
卐 इसलिए सम्यक् अनुशासन का महत्व अनिवार्यतः आवश्यक है,
सम्यक् अनुशासन की शरण में ही साधक
मन की अधोगामी प्रवृत्ति के विपरीत उर्ध्वगामी हो भलीभाँति परिपक्व होता है, इसके बिना उसका उद्धार नही है |
मन मुखी व्यक्ति अनुशासन को सहजता के विरुद्ध कहकर शोषण व दमन कहकर निंदा करता है, विरोध करता है,
वह अपने मन के ऊपर किसी का अनुशासन स्वीकार करना नही चाहता है, वह अपने अपरिपक्व विवेक के अनुसार मनमाना ही चलना चाहता है,
कई मनमुखी अपनी स्वेच्छिक प्रवृत्ति को पुष्ट करने के लिए
बुद्ध का उदाहरण लेते हैं, कि बुद्ध का कोई गुरु नही था,
बुद्ध ने किसी परंपरा का पालन नही किया,
बुद्ध ने किसी अनुशासन को नही माना,
यह बात सही है, कि बोध< बुद्ध होने पर बुद्ध का कोई शास्ता नही हो सकता,
पर बोध होने से पूर्व सिद्धार्थ ने भी आलार कालाम व रामपुत्त का पूरी निष्ठा व पूरी ईमानदारी से अनुशासन स्वीकार किया, और वहाँ के निर्धारित साधनात्मक मापदंडों को पूरी निष्ठा, पूरी ईमानदारी से पूरा किया,
यद्यपि आलार कालाम व रामपुत्त दोनों को सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही था,
वे पूर्व की प्रचलित साधना परम्परा के ही निर्वाहक थे, उसमें भी उनकी प्रायोगिक सिद्धता पूर्ण नही थी,
उन्होंने तो बस परम्परा का निर्वाह भर किया था,
और उसी प्रचलित साधना परम्परा को उन्होंने सिद्धार्थ को थमा दिया,
सत्य पिपासु सिद्धार्थ ने देखा,
कि बिना इसे भलीभाँति परखे, इसे ऐसे छोड़ देना भी सही निष्ठा व ईमानदारी के अनुसार न्यायोचित नही है,
इसलिए सिद्धार्थ ने पूरी निष्ठा, पूरी ईमानदारी से उसे भलीभाँति स्वीकार कर, उसे भलीभाँति आचरण में उतारा,
भलीभाँति आचरण में उतारने पर फिर भी पूर्णतः सम्यक् समाधान नही हुआ,
आलार कालाम व रामपुत्त ने जब यह देखा, कि इतनी निष्ठा व ईमानदारी तो उनकी अपनी भी नही है,
जब सिद्धार्थ जैसे नैष्ठिक व ईमानदार साधक को इस परम्परा से समाधान नही हुआ, तो निश्चित ही उनकी साधनात्मक पद्धति में कही न कहीं, कोई न कोई अवश्य ही कमी है,
यह देख उन्होंने सिद्धार्थ से अनुमोदन किया, वे कहीं अन्यत्र जाकर अपनी आगे की खोज जारी रखें, पूर्णतः समाधान होने पर उनका भी मार्ग दर्शन करें,
भले ही सिद्धार्थ को वहाँ समाधान नही हुआ, पर वहाँ रहकर सिद्धार्थ ने अनुशासन का, निष्ठा का, ईमानदारी का,आचरण का मापदंड पूरा किया,
अगर उस निमित्त से ये मापदंड पूरे नही होते,
तो सिद्धार्थ को आगे चलकर
दुःख समुदय, दुःख निरोध के दृष्टिकोण में बोध नही होता,
भले ही उस जन्म में सिद्धार्थ (जो आगे चलकर बुद्ध) को
दुःख समुदय, दुःख निरोध का अपेक्षित दृष्टिकोण रह गया, पर उस दृष्टिकोण में भी मनुष्य जाति के प्रचलित इतिहास में खोज का, निष्ठा का, ईमानदारी का, आचरण का ऐसा उदाहरण दूसरा नही है,
जो आरंभिक साधकों के लिए निश्चित ही प्रेरणा दायक है, उस दृष्टिकोण में भी पूरी निष्ठा, पूरी ईमानदारी पूरा आचरण का मापदंड पूरा होने से शाक्य मुनि को भविष्य में
उससे आगे अब कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित हुए बिना, सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त अवश्य ही मापदंड पूरा होगा,

यह अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार सिद्ध है|
सम्यक् गुरु की खोज कर,उसके सम्यक् अनुशासन में
निर्धारित निष्ठा, ईमानदारी, वफादारी, विनय, आचरण,अभ्यास का मापदंड पूरा करना हर अपरिपक्व साधक का अहोभाग्य है,
पूरी निष्ठा, पूरी ईमानदारी, पूरे आचरण से सम्यक् अनुशासन स्वीकार किए बिना मन की अधोगामी प्रवृत्ति पर नियंत्रण संभव नही, हर आरंभिक साधक के लिए तो यह प्राथमिक अनिवार्यता है,
(मनमुखी अगर अपनी जगह पर ईमानदार भी है,
तो एक सीमा तक ही उसे अपरिपक्व सिद्धि मिल सकती है,
समाज में आज के परिपेक्ष्य में, ऋत् अभिप्रेरित श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है, शुद्धि व पवित्रता भंग हुई है,
इसके लिए नित्से, फ्रायड आदि रुग्ण मानसिकता वाले मनोवैज्ञानिकों व दार्शनिकों का नकारात्मक प्रभाव एक अर्थ में जिम्मेदार है,
उन्हीं से अभिप्रेरित < उन्हीं में से एक जोरबा द बुद्धा के नाम व आदर्श पर एक ऐसा दार्शनिक भी था,
जिसके ऋत् असंगत > न्याय असंगत साहित्य से समाज में स्वेच्छाचारिता > आचरण हीनता आई है,
ज्ञान, दर्शन और चरित्र के स्तर पर गिरावट आई है,
उसका अपना कोई आप्त प्रमाण नही, उसके पास अपेक्षित दृष्टिकोण में अन्यों का लिया हुआ उधार ही था,
जहाँ अपेक्षित दृष्टिकोण से उसका अन्यों के दर्शन में, साहित्य में बोलना,
न तो अन्यों के साथ न्याय था,
और न उसके व्यक्तिगत् के साथ न्याय था, यह उदाहरण निंदात्मक दृष्टिकोण से नही है, बल्कि तुम्हें सावधान करने के लिए है,
इस तरह का कोई भी भाष्यकार कभी भी ईमानदार नही हो सकता |
सम्यक् सिद्ध की भूमिका के लिए तैयारी तो सम्यक् अनुशासन के बिना कदापि संभव नही,
तुम्हारा अपना अपेक्षित दृष्टिकोण तुम्हारी जगह पर है,
दूसरों का अपेक्षित दृष्टिकोण उनकी जगह पर है,
कम से कम अपने अपेक्षित दृष्टिकोण को दूसरों के अपेक्षित दृष्टिकोण पर आरोपित तो मत करो,
अपने अपेक्षित दृष्टिकोण के कारण बेईमान तो तुम पहले से ही हो,
दूसरे के अपेक्षित दृष्टिकोण पर अपना अपेक्षित दृष्टिकोण आरोपित कर,तुलना कर जो कुछ भी तुम सिद्ध करते हो, वह सब अर्थ का अनर्थ ही है, वह अपेक्षित दृष्टिकोण में और अपेक्षित दृष्टिकोण है, बेईमानी में और बेईमानी है, इसलिए सावधान,
कम से कम अपने ही अपेक्षित दृष्टिकोण की मर्यादा में रहो, कम से कम बेईमानी की एक सीमा में रहो, और बेईमान तो मत बनो,
पर ये दार्शनिक व भाष्यकार नही मानेंगे.....
अगर अभी तक तुम आप्त प्रमाणित नही हो, तो निश्चित ही अपेक्षित दृष्टिकोण के दोष से ग्रसित हो,
ऐसी स्थिति में दूसरों के संबंध में कहने का तुम्हारा अधिकार नही,
ऐसी स्थिति में तुम्हें उपदेष्टा बनकर लोक को दिग्भ्रमित नही करना चाहिए,
ऐसी स्थिति में तुम्हें एकांत वनवास ग्रहण कर आप्त प्रमाणित होने तक सम्यक् सद्धर्म अनुशासन के सम्यक् साधनात्मक मापदंडों का निमित्त पूरा करना चाहिए|
सम्यक् सद्धर्म का सम्यक् अनुशासन पूर्ण है,
इसमें उपरोक्त दिए गए उदाहरण स्वरूप आलार कालाम व रामपुत्त के धर्म अनुशासन की तरह अपरिपक्वता नही है,
इसमें निर्धारित मापदंड अपौरुषेय ऋत् प्रेरित हैं,
मनमुखी नहीं, सम्यक् विधि मुख हैं,
इससे इतर जितने भी साधनात्मक मापदंड है,
वे सब अपेक्षित दृष्टिकोण की सीमा में निर्धारित हैं,
बस सम्यक् यथार्थ धर्म ही किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण के दोष से सर्वथा मुक्त है,
सम्यक् अनुशासन में उत्तरोत्तर सम्यक् साधनात्मक मापदंडों का निमित्त पूरा करो.......
** तथ्य की तरफ से बस केवल ज्ञात भर होना ही स्पष्ट है,
संबंधित अर्थ तुम ग्रहण करते हो, यह तुम्हारा रोग है, तथ्य का नही,
तथ्य की तरफ से कोई धोखा नही, कोई दिग्भ्रम नही, कोई भ्रान्ति नही,
तथ्य अपनी तथ्यता में निभ्रांत स्पष्ट है,
तथ्य की तरफ से न ज्ञाता का आरोप है, न दृष्टा का आरोप है, न भोक्ता का आरोप है, न कर्ता का आरोप है, न साक्षी का आरोप है, न अहम् का, न अस्मिता का.....
तथ्य की तरफ से कोई भी आरोप नही,
ज्ञात भर होने के अर्थ में ही उपस्थिति है, स्थिरता है, स्थिति है,
अलग से उपस्थिति का, स्थिरता का, स्थिति का आरोप नही ....
क्रमशः

09 October 2020

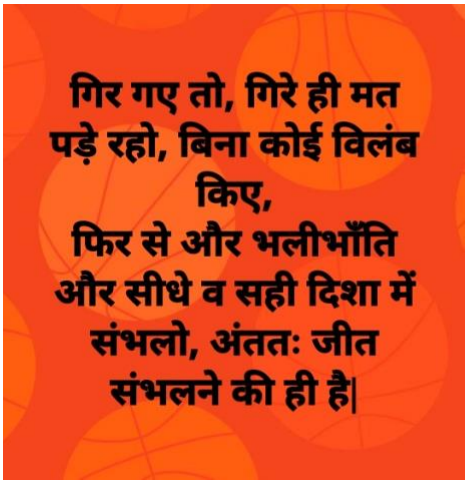

09 October 2020

बाहर कहाँ खोजते हो, सच्चाई तो भीतर से > अंतर में ही स्पष्ट है,
इसलिए भीतर से > अंतर में ही खोजो,
(श्वास का) ज्ञान कोई बाहर नही,
श्वास (क्रिया)भले ही बाहर से चल रही है,
पर उसका ज्ञान भीतर से > अंतर में ही हो रहा है,
ज्ञान किस सीध की दिशा में, कहाँ हो रहा है, यह शोध का विषय है,
क्योंकि जहाँ ज्ञान हो रहा है,
वहीं सच्चाई भी स्पष्ट है,
इसलिए अगर दिग्भ्रम से मुक्ति चाहिए, सत्य जानना है, तो ज्ञान का अनुसंधान
आवश्यक है,
यथार्थतः सत्य स्पष्टता के लिए पूरी तरह से बहिर्मुखी दृष्टिकोण से अनिमित्त हो,
अंतर्मुखी हो जाओ,
इसलिए बाहर की व्यर्थ दौड़-धूप छोड़,
यथा सहजता पूर्वक आँख को बंदकर, यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए, भीतर से > अंतर में
जिस सीध की > जिस दिशा
(नासिकाग्र की ठीक सीध की दिशा) में जहाँ श्वास का ज्ञान हो रहा है,
ठीक उस सीध की दिशा में वहीं रहो,
निरंतर ठीक उस सीध में > वहाँ रहने से जब ('ज्ञान मात्र') भलीभाँति जैसा है, ठीक वैसा स्पष्ट होता है,
तब ही पूर्णतः < पूर्ण' सत्य स्पष्ट है|
नासिकाग्र की ठीक सीध में ही भीतर से > अंतर में ज्ञान का केन्द्र है,अर्थात् ज्ञात भर होना ही पूर्णतः स्पष्ट है,
ज्ञात भर होना ही बस पूर्णतः स्पष्ट होने पर यथार्थ सच्चाई स्पष्ट है,
उससे जरा भी इतर होने पर नही,
जरा भी इतर होने पर फिर सापेक्षिक दबाव में सापेक्षिक < संबंधित अर्थ ग्रहण है, ज्ञान मात्र का स्पष्ट होना नही है|
नोट- बाहर-भीतर कहना सापेक्षिक है,
यहाँ सापेक्षता में भीतर नही कहा गया है,
इसलिए यहाँ भीतर नही बल्कि
भीतर से > अंतर कहा है, यह एक सांकेतिक भाषा है, सही दिशा में एक संकेत भर है, हर संकेत लक्ष्य की दिशा में संकेत भर होता है, लक्ष्य नही,
इसलिए संकेत को बस संकेत ही रहने दो, संकेत की दिशा में दर्शन के निमित्त रहो,
संकेत का अभिप्रयोजन तभी पूर्ण है,
अगर यह सावधानी नही होगी,
तो सापेक्षिक दबाव स्वरूप < सापेक्षिक प्रपंच के जाल में फंस कर उलझे रह सकते हो, इसलिए सावधान |

10 October 2020

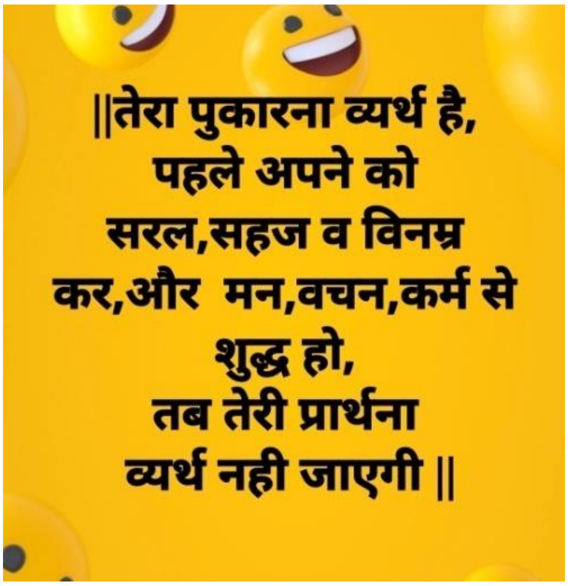

10 October 2020

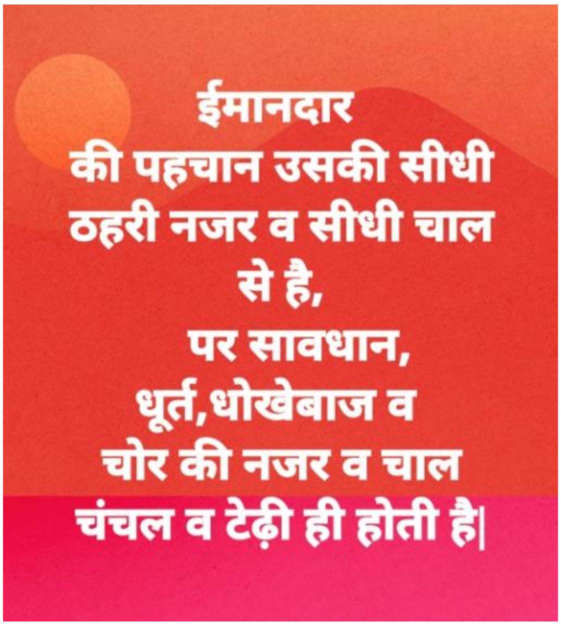

10 October 2020

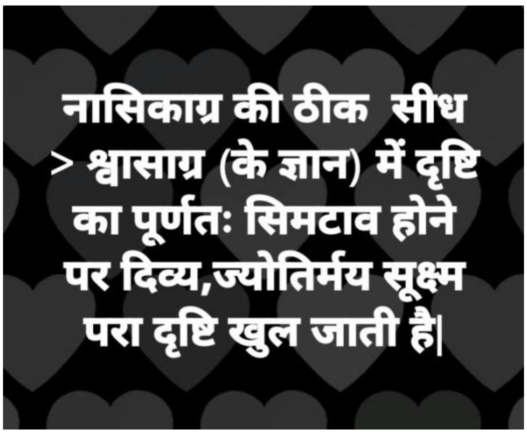

10 October 2020

अगर अभी तुम युवा हो,
और अगर ऐसा सोचते हो,
कि अरे बुढापा अभी तो बुढ़ापा आने में काफी देर है,
पर समय बीतते भला क्या देर लगती है,
समय बहुत ईमानदार है, अपने ठीक समय में उपस्थित होने में समय से अधिक
नैष्ठिक (ईमानदार) कोई नही,
समय न किसी को धोखा देता है, और न ही किसी के धोखे में रहता है,
(नैष्ठिकता, ईमानदारी के संदर्भ में तुम्हें समय के इस गुण से अवश्य ही अभिप्रेरित होना चाहिए, जिस समय तुम एक क्वांटा सेकेण्ड के असंख्य-असंख्य-असंख्य भाग से भी बहुत ही कम समय के ज्ञान के साथ उपस्थित होने के बराबर ईमानदार हो जाओगे, इतना ही नही सबसे सूक्ष्म समय के बराबर ईमानदार हो जाओगे,
तब तुम्हारा यथार्थ सत्य स्पष्टता के निमित्त जन्म लेने का उद्देश्य पूरा हो जाएगा,
तब तक नही, अभी फिलहाल श्वास के बराबर ही ईमानदार हो जाओ,
अभी के लिए तो इतना ही पर्याप्त है,
इसके आगे की ईमानदारी तो बाद की बात है, श्वास के बराबर ईमानदारी का सामान्य तात्पर्य यहाँ श्वास के आने-जाने के ज्ञात होने के साथ ही ठीक समय पर निरंतर उपस्थित होना है,
जब तक कि श्वास से भी अधिक ईमानदारी न हो जाए, तब तक अनवरत् निरंतर ही श्वास के ज्ञान के ठीक साथ ही उपस्थित होते रहना है,)
यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में खोए बुढ़ापा कब आ गया तुम्हें उसका पता भी नही चल पाएगा,मृत्यु की घड़ी कब आ गई
पता भी नही चल पाएगा,
बुढ़ापा व मृत्यु की घड़ी का उस समय वह कल का दिन आज का ही दिन होगा,
अभी का ही समय होगा,
जब भी होता है, आज और अभी ही होता है, कल का तो मूर्खों का बहाना है, इसलिए कल आने वाला बुढ़ापा व मृत्यु का संकेत आज अभी ही घटा लो,
और सजग हो जाओ, समय रहते
समय की सार्थकता को पूर्ण कर लो,
समय रहते अगर यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हुआ, तो यह जन्म दुखद अज्ञानता में ही व्यर्थ चला गया, दिग्भ्रान्ति में, धोखे में ही व्यर्थ चला गया,
इससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नही, कोई छलावा नही, कोई धोखा नही,
इससे बड़ी कोई हानि नही, इससे बड़ी कोई वंचना नही, इससे बड़ा कोई खोना नही,
जो कुछ भी बीतते हुए समय के अधीन है,उसके प्रति मोह का होना,
ममत्व का होना, आसक्ति का होना
दुःखद अज्ञानपूर्ण है, हर सुंदरता के पीछे कुरूपता छिपी हुयी है,
हर खिले हुए को अंततः मुरझाना ही है,
इस संसार में ऐसा कुछ भी नही,
जो नित्य हो, स्थाई हो, स्थिर हो,
कि जिसमें पूर्णतः निश्चिंत हो स्थिरता पूर्वक स्थित हुआ जाए,
बाहर के संसार में तो ऐसा बिलकुल भी नही,
पर हाँ तुम्हारे अंतर में ऐसा कुछ है,
जो संबंधित व्यवहार की तरह, संबंधित आभास की तरह बीतता नही,
वह है, विशुद्धतः ज्ञान मात्र,
हाँ ज्ञान मात्र (बस ज्ञात भर होना)
कदापि संबंधित आभास की तरह बीतधर्मी नही है,
ज्ञान मात्र की पूर्णता में न बीतना होता है, न उत्पन्न होना होता है, और न ही मध्य का अंतराल होता है,
ज्ञान मात्र की पूर्णता नित्य है,स्थाई है, स्थिर है, हर आरंभ के आरंभ होने से पहले ज्ञान मात्र ही है,
और हर अंत के होने पर भी अकृत्रिम् ज्ञान मात्र ही शेष है,
संबंधित दृष्टा भाव से < ज्ञाता भाव से अनिमित्त हो, बस दर्शन मात्र < ज्ञान मात्र (ज्ञात भर होने) के निमित्त (बस उपस्थित भर) हो जाओ,
ज्ञान मात्र में इस प्रकार से भलीभाँति स्थित हो जाओ, कि ज्ञान मात्र अर्थात् ज्ञात भर होना ही रह जाए,

इससे इतर कुछ भी नही,
ज्ञान मात्र स्पष्टता में जो तरो ताजगी है, जो जीवंतता है,जो होश है,जो सजगता है, जो सहज स्फूर्ति है, वह किसी भी संबंधित आभास में नही है,
ज्ञान मात्र निमित्त उपस्थित भर होने में जो अपरिमित,अंतहीन सहज शान्ति है, सुकून है, वह किसी भी संबंधित आभास में नही है,
वैसे भी ऐसा कुछ नही, जो ज्ञान मात्र से शून्य हो,
हर संबंधित आभास का आरंभ, अंत व सार ज्ञान मात्र ही है |
मूर्खों की दृष्टि संबंधित अर्थ में होती है, उनकी दृष्टि संबंधित अर्थ के जाल में ही जीवन पर्यंत उलझी रहती है,
परन्तु धीरवंत, कुशल व्यक्ति की दृष्टि उसके सार ज्ञान मात्र में ही रहती है, उससे जरा भी इतर सापेक्षिक अर्थ में नही होती,
जब तक जरा भी धारणात्मक अर्थ ग्रहण है, जरा भी भावनात्मक अर्थ ग्रहण है,
जरा भी रागात्मक अर्थ ग्रहण है,
तब तक विशुद्धतः ज्ञान मात्र स्पष्ट नही है,
जब तक जरा भी सापेक्षिक & संबंधित अर्थ ग्रहण हो रहा है, तब तक विशुद्धतः ज्ञान मात्र स्पष्ट नही है,
जब तक जरा भी तुलनात्मक & उपमात्मक अर्थ ग्रहण है, तब तक विशुद्धतः ज्ञान मात्र स्पष्ट नही है,
जब तक पूर्ववत् & अपेक्षित दृष्टिकोण बना हुआ है, तब तक विशुद्धतः ज्ञान मात्र शेष नही है|
आठों पहर (चौबीसों घंटे) यथा सहजता पूर्वक भलीभाँति पूरे होश में सजग रहो, ताकि जब, जिस समय जो हो रहा है, जैसा हो रहा है, तब,उस समय भलीभाँति वैसा ही यथावत् ठीक-ठीक ज्ञात होता रहे, जब तक कि पूर्णतः भलीभाँति यथावत् स्पष्ट नही होता,
तब तक ज्ञान मात्र शेष नही रह जाता,
और जब तक ज्ञान मात्र शेष नही रह जाता, तब तक यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता|
किसी भी संदर्भ का जब तक भलीभाँति पूर्णतः यथावत् स्पष्टीकरण नही हो जाता, तब तक उस संदर्भ में ज्ञान मात्र अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होना शेष स्पष्ट नही हो सकता,
अर्थात् उस संदर्भ में जब तक ज्ञान मात्र शेष नही रह जाता, तब तक उस संदर्भ की पूर्णतः सत्यता स्पष्ट नही हो सकती,(अर्थात् पूर्णतः सच्चाई खुल नही सकती,)
किसी भी संदर्भ में जब तक पूर्णतः सच्चाई खुल नही जाती, तब तक उस संदर्भ में दिग्भ्रम बना ही रहता है, धोखा बना ही रहता है,
संशय, संदेह, दुविधा व अज्ञान बना ही रहता है|
यहाँ-वहाँ के संदर्भ से श्वास का संदर्भ नासाग्र की सीध में है, सीधे है, सामने है, केन्द्र में है,और जो आठों पहर कभी भी सहज ही उपलब्ध है,
इसलिए यहाँ-वहाँ के संदर्भ की अपेक्षा श्वास के यथावत् भलीभाँति ठीक-ठीक ज्ञात होने में यथा सहजता पूर्वक भलीभाँति पूरे होश में सजग रहना है,
जब श्वास के संदर्भ में भलीभाँति यथावत् ठीक-ठीक स्पष्टीकरण हो जाएगा,
तब श्वास के संदर्भ में ज्ञान मात्र अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होना ही शेष रह जाएगा,
जब श्वास के संदर्भ में ज्ञान मात्र शेष रह जाएगा,
तब श्वास के संदर्भ में भलीभाँति पूर्णतः सच्चाई खुल जाएगी,
श्वास के संदर्भ में पूर्णतः सच्चाई का खुलना अर्थात् सीधे सामने की केन्द्रीय सच्चाई का खुलना है,
जो ज्ञान मात्र से इतर जो कुछ भी सम्पूर्ण व्यवहार है, उसकी पूर्णतः सार सच्चाई है,
जहाँ फिर यहाँ-वहाँ किसी भी संदर्भ के संबंध में कोई भी दिग्भ्रम,संशय, संदेह, अज्ञान नही रह जाता है,
यह आरंभिक स्तर के संबंधित अर्थ की सत्यता है, यहीं पर आरंभिक अभ्यास का निमित्त पूरा होता है,
इससे आगे फिर द्वितीय साधना अभ्यास के निमित्त का आरंभ होता है,
जहाँ प्राथमिक अभ्यास के निमित्त होने से भी सीधे
चित्त के संदर्भ में > जहाँ मूलतः विज्ञान (मूलतः आभास) के संदर्भ में ज्ञात भर होना है,
इतना ही नही,
फिर उससे भी सीधे चतुर्थ व अंतिम साधना अभ्यास का निमित्त है,
जहाँ सीधे ही मूलतः बीज स्वभाव के संदर्भ में ज्ञात भर होना है,
यही अंतिम साधन सिद्ध अवस्था है,|
जिससे परे ही
ज्ञान मात्र की पूर्णता में ही मात्र सहज सिद्धता है......

11 October 2020

इंद्रियों को भलीभाँति संयत रखो,
और अपनी अमूल्य जीवन ऊर्जा को बचाओ,
असंयमित जीवन शैली में ऊर्जा का ह्रास होता है,
नकारात्मकता (ऋणात्मकता) में प्रवृत्त होने से ऊर्जा का
ह्रास होता है,
अमूल्य ऊर्जा को सकारात्मक (धनात्मक) निमित्तों में लगाकर उसे बढ़ाओ,
ऊर्जा का संरक्षण व संवर्धन अध्यारोप से सर्वथा मुक्त अकृत्रिम ध्यान अभ्यास
के निमित्त होने में है,
ज्ञान मात्र अर्थात् ज्ञात भर होने में ऊर्जा का पूर्ण संरक्षण व पूर्ण संवर्धन है...
नाम जप से एक सीमा तक एकाग्रता बनती है,
पर नाम जप व अन्य अध्यारोपित कृत्रिम साधना पद्धतियों में अंतराल होने से ध्यान बँटकर बिखरता है,
पूर्ण स्थिरता नही बन पाती,
चूँकि ध्यान की दिशा में ही ऊर्जा की भी दिशा होती है,
इसलिए ध्यान के बँटने पर साथ ही ऊर्जा भी बँटकर बिखर जाती है,
ऊर्जा का पूर्ण संरक्षण व पूर्ण संवर्धन नही हो पाता,
पर ज्ञान मात्र अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होने में अंतराल नही होने से ऊर्जा बँटकर नही विखर
पाती, ऊर्जा का पूर्ण संरक्षण व पूर्ण संवर्धन होता है....
अज्ञानी जन भावित भावनाओं के सम्मोहन में जीते है, और मर जाते है,
अज्ञानता में जन्म लेना, अज्ञानता में
जीना, अज्ञानता में ही मर जाना, और फिर से पूर्ववत अज्ञानता में ही जन्म लेना...
अहो अज्ञ जनों का यह कैसा दुर्भाग्य, यह कैसी मूर्खता....
जो बार-बार इस दुखद अज्ञानता को दोहरा रहे हैं,
न उन्हें इसका आरंभ ही दिखता है, न ही अंत...
इस दुखद अज्ञान चक्र में पड़े रहने के लिए कहीं कोई ईश्वर अथवा भाग्य जिम्मेदार नही है,
मूर्ख अपनी मूर्खता के (निमित्त)कारण से ही जिम्मेदार हैं,
अपनी जिम्मेदारी को पूरी ईमानदारी से स्वीकार करो,
सम्यक् समाधान के निमित्त तुम्हारा सम्यक् प्रयत्न जारी
रहे,अवश्य ही तुम्हें लाभ होगा,
पूरी सत्यता से (.पूरी ईमानदारी से) सम्यक् स्पष्टता के निमित्त
सम्यक् अर्थ में जब तक समर्पण पूर्ण नही होगा,
तब तक कदापि भ्रम, संशय,अज्ञान से मुक्ति नही,
दुःख से मुक्ति नही,
पूर्णतः सम्यक् दिशा में पूर्णतः समर्पित रहते हुए अपनी तरफ से पूरा निमित्त प्रयास जारी रहे,
जब तुम्हारा अपनी तरफ से देखना नही होगा,
बल्कि सत्य से ही सत्य जैसा है, ठीक वैसा ही
' (यथावत् ')
दिखने के निमित्त पूर्ण समर्पण होगा,
अर्थात्
मात्र सत्य से ही मात्र सत्य स्पष्टता के निमित्त जब समर्पण पूर्ण होगा, तभी ' यथावत् ' सत्य जैसा है, वैसा स्पष्ट होगा, उससे पहले नही,
जब तक अपनी तरफ से देखना हो रहा है, अपनी तरफ से जानना हो रहा है, तब तक अपनी तरफ से अध्यारोप होना स्वाभाविक है, मिलावट होना स्वाभाविक है, अपना दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है,
और तब तक जिस सत्य का तुम्हें दृष्टिभ्रम हो रहा है,दिग्भ्रम हो रहा है,
सत्य के संदर्भ में वह तुम्हारा अपना दृष्टिकोण है, वह तुम्हारा अपनी तरफ से निर्मित कृत्रिम सत्य है,
यथावत् सत्य नही,
अपना ही बनाया हुआ कृत्रिम सत्य तुम्हें स्वसम्मोहन में बाँधे है,
सारा का सारा सम्मोहन अध्यारोपित कृत्रिमता का है,
यथावत् सत्य की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में जरा भी सम्मोहन संभव नही, जरा भी भ्रम, जरा भी संशय, जरा भी संदेह, जरा भी अज्ञानता संभव नही,

धार्मिक हों,चाहे दार्शनिक हों, चाहे वैज्ञानिक हों, सबका अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से कोई भी मुक्त नही,
लोक में जितने धर्म हैं, जितने दर्शन हैं, जितनी खोजें हैं, वे सब अध्यारोपित अपेक्षित दृष्टिकोण से प्रभावित है,
मात्र सत्य से ही मात्र सत्य जैसा है, वैसा ही यथावत् स्पष्टता के निमित्त समर्पण पूर्ण होने पर जरा भी अपनी तरफ से देखना,
अपनी तरफ से जानना, अपनी तरफ से करना शेष नही रह जाता, जरा भी आरोपित दृष्टिकोण शेष नही रह जाता,
सीधे ही, सहज ही मात्र सत्य से मात्र सत्य जैसा है वैसा स्पष्ट है,
सारा का सारा सम्मोहन आरोपित दृष्टि का है, आरोपित दृष्टिकोण का है,
दृष्टा कहो, साक्षी कहो, आत्मा कहो, ब्रह्म कहो, कुछ भी कहो,
वह सब आरोपित दृष्टिकोण ही है, यथावत् सत्य नही..
दृष्टिकोण शेष रहते सम्यक् यथार्थतः
पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता कदापि संभव नही है, यथावत् सम्यक् दर्शन के निमित्त ही यथावत् सम्यक् दर्शन स्पष्ट है,
सारे दृष्टिकोण एक ही सापेक्षिक वर्तुल के विभिन्न कोण हैं,
सापेक्षिक दबाव में ही जिनका अस्तित्व भासित है, जिनकी स्थिति भासित है,
पूर्ण केन्द्रीय सम्यक् दर्शन सापेक्षिक वर्तुल का भाग नही है,
पूर्ण केन्द्रीय सम्यक् दर्शन सापेक्षिक दबाव में सिद्ध नही है, बल्कि पूर्ण सहजता में सहज ही सिद्ध है,
हर कोण का अपने उसी सापेक्षिक वर्तुल में सापेक्षिक दबाव में अपना विरोधी पक्ष है,पर सभी कोण निर्विरोधतः अपने केन्द्र पूर्णता की ओर अभिमुख हो समर्पित हैं,
किसी कोण विशेष से संबंधित हो देखने में
ही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है,
इसलिए दृष्टिकोण विशेष से देखने के निमित्त नही,
बल्कि पूर्ण केन्द्रीय सम्यक् यथार्थ दर्शन से ही दर्शन मात्र के निमित्त रहो,
तभी सही अर्थ में पूरा कल्याण है,
असल में सीधे केवल दर्शन ही हो रहा है,
अपनी तरफ से देखना सहज स्वभाव से नही है, बल्कि सापेक्षिक दबाव में आरोपित है,
अगर दृष्टिकोण शेष रहते तुम कोई भी खोज कर रहे हो,
तो वह हर खोज दृष्टिकोण से प्रभावित होकर है,
वह कभी भी पूर्ण खोज नही हो सकती, वह कभी भी पूर्णतः विशुद्ध, पूर्णतः सत्य खोज नही हो सकती वह सदा अपूर्ण ही रहेगी,
जब तक दृष्टिकोण शेष है, तब तक अपनी तरफ से आरोप होना,मिलावट
होना स्वाभाविक है,
बस सीधे ही मात्र दर्शन के निमित्त भलीभाँति स्थिरता रहे,
मात्र दर्शन > मात्र ज्ञान के निमित्त भलीभाँति स्थिरता हो, सारा अभ्यास ही
इस निमित्त से है,
मात्र ज्ञान के निमित्त मात्र दर्शन में भलीभाँति स्थिरता पूर्ण हो, न तो मात्र दर्शन भंग हो, न ही मात्र ज्ञान भंग हो..
मात्र दर्शन भंग होते ही मात्र ज्ञान भी भंग हो जात है,
मात्र दर्शन से ही मात्र ज्ञान में भलीभाँति संभलना पूरा है,
जब तक मात्र ज्ञान के निमित्त मात्र दर्शन बना हुआ है, तभी तक भलीभाँति स्थिरता पूर्वक संभलना बना हुआ है,
तुम कुछ भी कहो, उदाहरण के लिए जैसे जब तुम एक कहते हो, तब तुम किसी की एकता में मिला कर के ही एक कहते हो,
बिना मिलाए तुम एक कह ही नही सकते, तुमने एक कहा, उससे पहले ही तुम्हारे तरफ मिलावट हो चुकी,
दूसरे अंत की सापेक्षता में मिलाने पर ही तुम एक कह पाते हो,
यद्यपि यह मिलावट बहुत ही गहरे अवचेतन के तल में हो रही है, यंत्रवत् तदात्म्यता में तुम्हें कुछ भी स्पष्ट नही, सब कुछ धुंधला, धुंधला सा है,
तुम्हें अपनी मिलावट का पता नही चल पाता,
तुम्हारे ध्यान में इतनी गहराई है ही नही, कि तुम्हें तुम्हारी ही
बेईमानी का पर्दाफ़ाश हो सके,
और तुम ईमानदार हो सको,
ज्ञान मात्र अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में सहज ही
भलीभाँति नियंत्रण है, अलग से कोई नियंत्रण करने वाला नही है,
तुम्हारे संभलने की, व संभलकर उपस्थित होने की गति (रफ्तार)
इतनी मंद है, गिरने के बाद जब तुम संभलते हो, तभी तुम्हें पता चलता है,
अब पता चलने से कुछ नही हो सकता है, समय पर संभलना हो जाता, समय पर पता चलता तो, दिग्भ्रमित होने से बच जाते...
पता भी चले तो कैसे,

यंत्रवत् तल्लीनता में जैसे कोई उठ कर चल देता है, उसे यह पता ही नही चलता कि कब चलना आरंभ किया, कब कौन सा कदम पहले उठा, दाहिना की बायां, तब मिलावट तो तुम्हारे बहुत ही गहरे अवचेतन तल पर हो रही है, सामान्यतः तुम्हें इसका पता नही चलता,
तुम जब संभलते हो, संभलने पर जब तुम्हें पता चलता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है,
सापेक्षिक दबाव में जो दृष्टि आरोपित होती है, उस आरोपित दृष्टि में ही तुम्हें
१२३४५६.....१+१=२ आदि भासित होता है,
सहज स्वभाव में न एक सिद्ध होता है, न दो, न समता सिद्ध होती है, न विषमता, न द्वैत सिद्ध होता है, न अद्वैत,
तथ्यगत् दर्शन में जो जिस जगह पर जिस अर्थ में है, वह उसी जगह पर उसी अर्थ में दिख रहा है, जरा भी अंतर नही,
जरा भी अन्य अर्थ का आरोप नही, जरा भी मिलावट नही,
तुम समता कहो, या विषमता, द्वैत कहो,या अद्वैत, साकार कहो, या निराकार,
यहाँ तक कि जो कुछ भी विरोधाभास है, सब तुलनात्मक दृष्टिकोण में है,
द्वैत-अद्वैत आदि सापेक्षिक प्रपंच की सारी बातें दूसरे अंत के सापेक्ष तुलना में कही जाती है, तुलना के लिए दूसरे अंत का होना जरूरी है, दूसरे अंत की सापेक्षता में ही तुलना में अपना पक्ष सिद्ध होता है, साथ ही विपक्ष भी,
तुलनात्मक दृष्टिकोण में ही जो जिस जगह में है, जिस अर्थ में है, उसकी अपनी शुद्धि भंग होती है, पर यह शुद्धि भंग होना तथ्य के तल पर नही, तुम्हारे आरोपित दृष्टि में तुम्हारी ही दृष्टि की शुद्धि भंग होना है,
जो जिस अर्थ में जिस जगह में है, उसे उसी अर्थ में उसी जगह पर रहने दो, उसी अर्थ में उसी जगह में रहने से उसकी विशुद्धि है,
किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ से मिलाकर मत देखो, इससे उसका अर्थ प्रभावित होता है, उसकी शुद्धता प्रभावित होती है,
पर असल में तथ्य की नही, तुम्हारी दृष्टि की शुद्धि भंग होती है,इसमें तुम्हारी ही हानि है,
हे समन्वय वादियों अल्लाह को अल्लाह ही रहने दो, ईश्वर को ईश्वर, समझौता कर आपस में मत मिलाओ, अर्थ का अनर्थ मत करो, नही तो न अल्लाह का अर्थ रह जाएगा, न ही ईश्वर का, जो जिस अपेक्षित दृष्टिकोण में कहा गया है, अल्लाह, ईश्वर, द्वैत-अद्वैत आदि जो कुछ भी तुम कहो, उसे उसी अपेक्षित दृष्टिकोण में रहने दो, दूसरे अपेक्षित दृष्टिकोण की सापेक्षता में तुलना करके <
(समझौता करके, समन्वय करके) अर्थ का अनर्थ मत करो, उस अर्थ की शुद्धि भंग मत करो,
इसके बाद ही फिर इसके आगे की शुद्धि है, उस शुद्धता में फिर तो कोई अपेक्षित दृष्टिकोण ही नही रह जाता है, तो तुलना की तो कोई बात ही नही,
न द्वैत, न अद्वैत, न साकार, न निराकार,
न सगुण, न निर्गुण, न समता, न विषमता, न एक, न दो इत्यादि
बस सम्यक् यथार्थ अर्थात् सही में जैसा है, वैसा |
सम्यक् यथार्थ ओर ही निष्ठा हो, उपासना हो,समर्पण हो,
पर कदापि सापेक्षिक अंत की ओर नही,
पर तुम तुलनात्मक दृष्टिकोण की अपनी बेईमानी से बाज नही आते, जन्मों-जन्मों से तुम मिलाते आये हो, जन्मों- जन्मों से मिलाने की आदत इतनी गहराई से है, इतनी प्रबलता से है, कि तुम अपनी तरफ से मिलावट करने में आदतन मजबूर हो जाते हो, यह तुम्हारे लिए स्वभाव बन गया है,गुण धर्म बन गया है,
तुम अपनी आरोपित दृष्टि की धारणा में जो अर्थ जिस स्थान में है, उस अर्थ को उस स्थान से अन्य अर्थ की समानता के तल पर ले आते हो, मूर्खों के समाज मे भला बनने के लिए समन्वय स्थापित करते हो,
पर असल में यह तुम्हारी अपेक्षित,तुलनात्मक दृष्टिकोण की स्थापना है, यह तुम्हारा आरोप भर है, यथार्थतः सत्य नही,
और अपने ही आरोप से तुम ही दिग्भ्रमित होते हो, तुम्हारे मिलाने से तथ्य में कुछ मिलता नही, तथ्य की कोई शुद्धता भंग नही होती,
तथ्य की यथावतता में कोई अंतर नही आ जाता,(अगर कोई मूर्ख अपने खयाल मे
आकाश को चादर की तरह लपेटे, तो क्या
इससे आकाश में कोई अंतर आ जाएगा,)
असल में जो जिस जगह पर, जिस अर्थ में है, वह उसी जगह पर उसी अर्थ में यथावत् स्थिर है,कायम है,
विशुद्ध है,
तुम्हारी मिथ्या दृष्टि से, मिथ्या धारणा से, मिथ्या आरोप से, (झूठे शिर्क से) तथ्य की यथावत् तथ्यता
में जरा भी अंतर नही आता,
पर हाँ तुम जरूर अपनी आरोपित दृष्टि में ही अपनी बेईमानी से, अपने ही आरोप के स्वसम्मोहन में स्वसम्मोहित हो दिग्भ्रमित अवश्य हो जाते हो, पथभ्रष्ट अवश्य हो जाते हो, इसमें तुम्हारी ही हानि है,
यथावत् सत्य की नही, तुम्हारा ही धोखा, तुम्हें धोखा दे जाता है, इस धोखे में जहाँ यथावत् सत्य दर्शन से तुम वंचित रहते हो, भ्रम, संशय, संदेह, अज्ञानता, दुख के दलदल में फंसे रहते हो..

(तुम्हारे शरीक करने से ही तुम नापाकी में हो,गुमराही में हो,
ला शरीक नजरिये में ही तुम्हारी पाकीजगी है, मुहम्मदियों के अपेक्षित दृष्टिकोण में जो अल्लाह है, उसमें शरीक करना ही शिर्कपरस्ती नही है,
यह मोटे तौर का शिर्क है,जो मोमिन कहलाने वालों की नजर में सबसे बड़ा गुनाह है, पर गुनाह की शुरुआत तो इससे भी बारीक शिर्क से है,
जो जिस अर्थ में है, उसमें अलग से शामिल करना, मिलाना यह बहुत बारीक शिर्क है,
जिसमें अक्सर मोमिन कहलाने वाले भी नापाक हैं, शिर्क परस्ती में हैं,
भले ही यह शिर्क परस्ती उनके लिए मायने नही रखती,
क्योंकि मुहम्मदियों के लिए दुर्भाग्य,
कि उनके दीन में, अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म का सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही है, मिथ्या दृष्टि के प्रबल मताग्रह में कदापि अपौरुषेय अकृत्रिम् अनुत्तर सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही हो सकता,
धोखा सत्य का नही, दोष सत्य का नही, सत्य अपनी जगह पर पूर्ण सहजता से स्थिर है, जैसा है, ठीक वैसा ही है,
तुम अपने ही द्वारा आरोपित दृष्टिकोण के दिग्भ्रम में धोखे में हो,
अगर निर्दोषता पूरी है, तो सीधे ही सत्य जैसा है, वैसा स्पष्ट है,
जरा भी घुमाव-फिराव है ही नही..
अधिक क्या कहना,
पाँच अंधे व हाथी का दृष्टांत संकेत अर्थ में तुम्हारे लिए संभलने के संकेतार्थ दिशा है,
तुम्हारे परम्परागत् प्रचलित शास्त्रों में समता का बहुत ही महिमा मंडन है, समदृष्टि की बहुत ही महिमा है, एक की, एकता की बहुत ही महिमा है, पर असल में वह सापेक्षिक दबाव में प्रभावित दोष युक्त दृष्टि ही है,
पूर्ण निर्दोष सम्यक् दर्शन नही,
पूर्ण निर्दोष सम्यक् दर्शन < पूर्णतः यथावत् दर्शन है, जिसमें उच्च, निम्न, सम, विषम कोई भी सापेक्षिक दृष्टिकोण का दोष नही है....
यही पूर्ण निर्दोषता है.....

12 October 2020

12 October 2020

12 October 2020

12 October 2020

सामान्यतया रेखा गणित के नियम के अनुसार
किन्हीं दो बिन्दुओं को आपस में मिलाने वाली रेखा को 'एक सीध में ' कहा जाता है,
पर यह नियम किसी कोण विशेष से < (एक सीध के आरंभ से) देखने पर ही सत्य प्रतीत होता है,
पूर्ण केन्द्रीय दर्शन से नही |
किसी कोण विशेष से अर्थात् किसी एक अंत से देखने पर ही एक सीध में होने की भ्रान्ति होती है,
किसी कोण विशेष से <
(किसी एक सीध के आरंभ से) देखने पर ही दृष्टा भाव में अर्थात् अपनी तरफ से देखना होता है,
दर्शन मात्र के निमित्त जब (निमित्त की) उपस्थिति भर होती है, तब दृष्टा भाव अर्थात् अपनी तरफ से देखना नही होता है, तब सीधे ही मात्र दर्शन भर होता है,
तब न एक सीध में होने की भ्रान्ति होती है, और न ही यहाँ- वहाँ व सब जगह होने की भ्रान्ति ही होती है,
परंतु सामान्यतः तुम्हारा अपनी तरफ से देखना बना ही हुआ है,
सामान्य व्यक्ति जब भी देखता है,
तो किसी न किसी कोण से ही देखता है,
सामान्यतः उसी में उसका जन्म होता है, मृत्यु पर्यंत उसी में वह जीता है, और उसी में मर जाता है, सामान्यतः वह इस संकीर्णता से कभी भी मुक्त नही हो पाता,
चाहे कोई धार्मिक हो, चाहे कोई दार्शनिक हो, या चाहे कोई वैज्ञानिक हो,
सब किसी न किसी कोण विशेष से ही आबद्ध हैं, किसी न किसी अपेक्षित दृष्टिकोण विशेष से ही आबद्ध हैं,
उनका ज्ञान, उनका दर्शन, उनका शोध
सब परोक्षतः सीमित, सापेक्षिक आभास में ही होता है|
सामान्यतः तुम जिसे सीधा कहते हो,
वह वक्र है, यह वक्रता सापेक्षिक दबाव से है, बीतने पर उत्पन्न होने के लिए जो दबाव
बनता है, उस दबाव में ही वक्रता में अंतराल स्थापित होता है,
जहाँ सामान्यतः तुम्हें एक सीध में सीधे होने की भ्रान्ति का होना स्वाभाविक है, इस भ्रान्ति के होने के कारण ही
इसलिए तुम्हें नासाग्र के ठीक सीध की बात कही जाती है, जहाँ नासिकाग्र की ठीक सीध में श्वास का आभास हो रहा है,
ठीक उस सीध में भलीभाँति स्थिरता पूर्वक संयम की बात कही जाती है,
भलीभाँति स्थिरता पूर्वक संयम पूरा होने पर फिर वहाँ किसी भी सीध का अर्थ नही रह जाता है....
जब तक सीध का आभाास हो रहा है, तभी तक वक्रता का भी आभास हो रहा है....
तुम देख रहे हो, तो वहाँ उस देखने का आरंभ है, अगर देखने का आरंभ है,
तो अंत भी है, आरंभ व अंत है,
तो आरंभ व अंत के बीच की सीध भी अवश्य ही है,
मात्र दर्शन की पूर्णता में न तो आरंभ है,
और न ही अंत है,
और न ही आरंभ व अंत के बीच की सीध ही है,
एक सीधी सीध में ही आदि-अंत का आभास हो रहा है,
आदि-अंत की धारणा के सापेक्ष ही अनादि- अनंत की भी धारणा है,
इसलिए न आदि, न अंत,

न अनादि, न अनन्त,
न सीधा, न वक्र, न यह, न वह, न यहाँ, न वहाँ,
और न ही सर्वत्र अर्थात् सब जगह की बात है,
यह सब अज्ञानियों का दृष्टि भ्रम है, दिग्भ्रम है,
किसी एक कोण विशेष से देखने पर ही उस कोण विशेष से एक सीध का आरंभ हो रहा है,
उस एक सीध के आरंभ होने पर ही, यह सब सापेक्षिक प्रपंच सत्य प्रतीत हो रहा है...

13 October 2020

13 October 2020
जो जिस अर्थ में है,
उसी अर्थ में अर्थ युक्त है,उसी अर्थ में शुद्ध है, अस्तित्वमान है,
अन्य अर्थ का अन्य अर्थ में परिचय तो अज्ञ मनुष्यों ने दिया है, और यही अध्यारोप है, कृत्रिम् है,
जो अर्थ का अनर्थ है,
दर्शन मात्र में तथ्य की यथावत् तथ्यता स्पष्ट है, इसलिए दर्शन मात्र के निमित्त रहो|
इस लोक के लिए बड़ा ही दुर्भाग्य है,
कि लोक प्रचलित,लोक प्रतिष्ठित नाना प्रकार के अध्यारोपित धर्मशास्त्र अर्थ के अनर्थ के ही पोषक हैं, अर्थ के अनर्थ के ही प्रचार-प्रसार के माध्यम है,
संरक्षण-संवर्धन के माध्यम हैं,
(ऐसा नही कि अध्यारोपित धर्मशास्त्र बिल्कुल व्यर्थ हैं,
साधारण जन समुदाय के उनके स्तर के अनुसार अध्यारोपित धर्मशास्त्र भी एक सीमा तक अवश्य ही
विकास व संतुलन के निमित्त हैं,
सम्यक् देशना में सम्यक् जिज्ञासुओं को ही अध्यारोपित धर्म शास्त्र के प्रति सावधान किया गया है, क्योंकि अध्यारोप ही सम्यक् शोध के लिए बाधक है,
जो सम्यक् शोध के अर्थ में संवेदनशील नही हैं, ऐसे मंद विवेकी साधारण जनों को
कोई भी अध्यारोपित परंपरा पकड़ा दो,
उन्हें तो बस आँख मूँद कर उसे ढोना है, और दूसरे तक पहुँचाना है,)
मनुष्यता के इतिहास में आस्तिकों व नास्तिकों के मध्य परस्पर मतभेद, विरोधाभास व वाद-विवाद आरंभ से ही है, इसमें भी आस्तिकों में अर्थात् वैदिकों,पौराणिको, वेदान्तियों,ईसाईयों, मुहम्मदियों आदि के मध्य भी परस्पर मतभेद, विरोधाभास व वाद-विवाद है,
सबका अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है, इसलिए परस्पर मतभेद, विरोधाभास व वाद-विवाद स्वाभाविक है,
हर कोई अपने ही द्वारा अध्यारोपित दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन में अपना ही अध्यारोपित दृष्टिकोण देख रहा है,
स्वसम्मोहन के वशीभूत हर कोई अपने ही अपेक्षित दृष्टिकोण का सत्य देख रहा है,
यथार्थतः सत्य नही,
सापेक्षिक वर्तुल का हर कोण का भले ही अपना विरोधी पक्ष है, पर वे सभी कोण अपने पूर्ण केन्द्र ओर ही अभिमुख हो समर्पित है, इसमें इनमें परस्पर कोई मतभेद व विरोधाभास नही,
चाहे आस्तिक हो, या नास्तिक, कोई भी हो हर किसी को पूर्ण केन्द्रीय सत्य ही पूर्ण सहज समर्पण में सहज स्वीकृत है,
जब तक पूर्ण केन्द्रीय सत्य स्पष्ट नही होता, तब तक आस्तिक की आस्तिकता हो, या नास्तिक की नास्तिकता दोनों ही अपूर्ण हैं, क्योंकि (दोनों की) आस्तिकता अथवा नास्तिकता अपेक्षित दृष्टिकोण में ही है, जो सम्यक् यथार्थ दर्शन नही है,

सम्यक् यथार्थ दर्शन में आस्तिकता व नास्तिकता के नकारात्मक अर्थ का पूर्णतः अंत है, और सकारात्मक अर्थ की पूर्णतः पूर्णता है,
अपौरुषेय सनातन धर्म ही है,
जो मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म है, (यहाँ सनातन धर्म कहने का आशय प्रचलित हिन्दू धर्म से नही है,)
सहज स्वभाव का धर्म है,
सहज ज्ञान मात्र (के) निमित्त सहज उपस्थित भर होना,
जो सभी स्थापित धर्मों की भावनीय भावनाओ का मूल आधार है,
सभी भावनीय भावनाओ के पूर्ण
होने पर अंततः सम्यक् कल्याणार्थ सभी को अपने मूल आधारीय धर्म
अर्थात् मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव के धर्म अर्थात्
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म में आना स्वाभाविक है, इसके बिना सम्यक् अर्थ में कल्याण नही, सम्यक् अर्थ में उद्धार नही,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म की ही सदा सर्वदा जय है,
अपौरुषेय सनातन धर्म न ही किसी आसमानी फरिश्ते के द्वारा किसी नबी पर वही उतारने से है,
और न ही किसी अवतारी अथवा
स्वघोषित अवतार द्वारा (यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति ..... -गीता-) स्थापित होने से है,
ग्लानि अथवा पुनः स्थापना कृत्रिमता की होती है, सहज उपस्थित सम्यक् यथार्थ ज्ञान मात्र की नही,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म की न कभी ग्लानि होती है, न ही कभी पुनः स्थापना होती है,
ऐसी मिथ्या दृष्टि तो बस स्थापित हुए सापेक्षिक कृत्रिम् धर्म के संबंध में ही संभव है, और अध्यारोपित दृष्टिकोण से ग्रसित ही इस तरह धर्म की स्थापना की बात कर सकता है,
अनुत्तर सम्यक् धर्म के संदर्भ में कदापि नही,
उठने, बैठने, चलने, इत्यादि सम्पूर्ण व्यवहार का ज्ञान (मालूम होना) ही आधार है, बिना ज्ञान के व्यवहार ही संभव नही,
जन्म,मृत्यु, भाव,अभाव हर स्थिति, परिस्थिति में सहज सिद्ध नित्य ज्ञान मात्र का किसी भी क्षण, किसी भी काल में कदापि अभाव नही है, निमित्त मात्र का कदापि अभाव नही है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म
कदापि किसी के द्वारा स्थापित नही है, सदा से सदा-सर्वदा तक सहज ही नित्य उपस्थित है, इसलिए किसी के भी द्वारा स्थापित होने का प्रश्न ही नही उठता, अर्थात् सम्यक् सनातन धर्म अपौरुषेय है, अध्यारोप रहित है,अकृत्रिम् है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म में न ही कोई किसी का अवतार है, न ही कोई किसी का अवतारी, न ही कोई रसूल है,
न ही कोई नबी, न कोई किसी का अंश है, न अंशी,
न ही कोई घोषित ईश्वर है, न ही कोई घोषणा करने वाला मिथ्या ईश्वर है,
और न ही कोई दार्शनिक < सैद्धांतिक ब्रह्म आदि ही,
न ही कोई सिद्धांत विशेष है, न ही कोई मत विशेष है, न ही कोई पक्ष विशेष ही,
यह सब मिथ्या सापेक्षिक प्रपंच अपौरुषेय सम्यक् धर्म में कदापि नही है|
सहज स्वभाव का धर्म है, सहज ही सम्यक् यथार्थ ज्ञानमात्र (के) निमित्त (निमित्त की)
सहज उपस्थिति भर होना,
इससे जरा सा भी इतर होने पर (कृत्रिमता की) स्थापना हो जाती है, जो भी आरोपित है, जो भी स्थापना में है,
वह अपौरुषेय अकृत्रिम् सनातन धर्म नही है, बल्कि अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित
कृत्रिम् धर्म है,
अपौरुषेय ज्ञानमात्र से इतर सापेक्षिक दबाब स्वरूप सापेक्षिक प्रपंच के जाल में लोकदृष्टि में सम्मोहित दिग्भ्रमित
मूर्ख जन ही उलझे रहते हैं|

14 October 2020

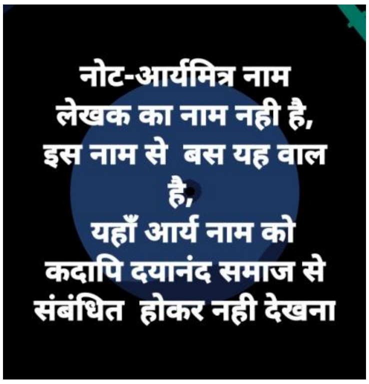

14 October 2020

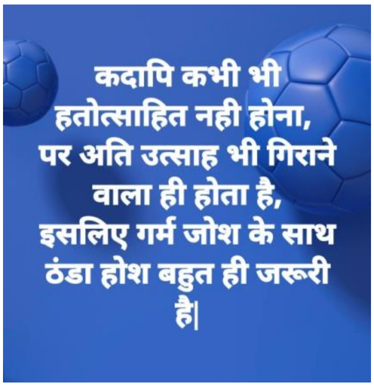

14 October 2020

14 October 2020

राष्ट्र वाद राजनीति से प्रेरित है,
पर धर्म सत्य,न्याय, करुणा व कल्याण भावना से अभिप्रेरित है, राष्ट्र की सीमा है, पर धर्म की सीमा नही,धर्म सार्वभौमिक है,
राष्ट्र समुदाय विशेष के लिए है,
पर धर्म मनुष्य मात्र के लिए है,
राष्ट्र अगर धर्म सापेक्ष है, धर्म अभिप्रेरित है, धर्म संचालित है, धर्म अनुशासित है,
तो वह राष्ट्र एक मजबूत लोहे के किले की तरह सुदृढ़ रहता है, सुरक्षित रहता है,संरक्षित रहता है,
धर्म से राष्ट्र है, न कि राष्ट्र से धर्म ,
धर्म है, तभी राष्ट्र भी है,
धर्म निरपेक्षता राष्ट्र के लिए घातक है,
राजनीति व विज्ञान में धर्म का अनुशासन होना बहुत ही आवश्यक है, अन्यथा राजनीति का निरंकुश,स्वछंद व भ्रष्ट होना स्वाभाविक है,
धर्म का पालन, सुरक्षा व प्रचार-प्रसार जन-जन का कर्तव्य है,
धर्म की शुद्धि व रक्षा में अगर गर्दन भी कटवाना पड़े तो सहर्ष स्वीकार हो,
सत्य की खोज में, धर्म के पालन में, धर्म की शुद्धि व पवित्रता में,
धर्म की सुरक्षा व प्रचार-प्रसार में सर्वस्व भी न्योछावर करना पड़े तो सहर्ष
स्वीकार हो,
जो सत्य की खोज में, धर्म के पालन, शुद्धि व पवित्रता में तत्पर नही,
वह व्यर्थ ही पृथ्वी का भार बढ़ाने वाला है,
उसे जीवित रहने का अधिकार नही,
{पहले के समय की वीरगाथाओं के अनुसार सामान्यतः युद्ध भूमि में शत्रु के समक्ष समझौता करने वाले, समर्पण करने वाले,युद्ध भूमि से पीठ कर भागने वाले कायर "रणछोड़" को दोष पाए जाने पर उसी के पक्ष वाले
नैष्ठिक योद्धा जीवित नही छोड़ते थे, उसे मार डालते थे,

कहीं, कहीं तो सामान्यतः एक नैष्ठिक वीर योद्धा संग्राम भूमि में पहुँचकर कदापि शत्रु के समक्ष न ही समर्पण करता था,
न ही कोई समझौता,
या तो यथा धर्मपूर्वक वीरगति को प्राप्त होता था,
या तो युद्ध में विजय श्री को ही प्राप्त करता था,
(कुछ अपवादों को छोड़) तीसरा विकल्प नही था,}
आज के युवा को धर्म व राष्ट् रक्षा हेतु प्राचीन काल के शौर्य, पराक्रम व वीर भाव से सकारात्मक अर्थ में अभिप्रेरित कराना आवश्यक है,
और साथ ही महिलाओं के लिए लोक व्यावहारिक सतियों (सावित्री आदि) का आदर्श होना आवश्यक है, न कि अनार्य (बाजारू) संस्कृति......
(अन्यथा आसुरि व अनार्य धर्म की दासता झेलने के लिए तैयार रहो,)
साथ ही इतिहास प्रसिद्ध पृथु, हरिश्चंद्र, मान्धाता, शिवि, रघु आदि के
आरंभिक स्तर के व्यावहारिक धर्म पालन से अभिप्रेरित रहना चाहिए,
रामायण, जय (महाभारत),
पुराण आदि में कितना शुद्ध इतिहास है,
और कितना काल्पनिक है,
इस बात का विवेक स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है, वरना अंधविश्वास से प्रेरित होना सत्य की खोज में बहुत बड़ी बाधा है,)
इन सबसे बढ़कर है,यथार्थतः सत्य दिशा
में शोधरत् रहना, क्योंकि यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही है, तो सब कुछ व्यर्थ है,
सारा व्यावहारिक धर्म पालन, सारा आचरण, सारी साधना, सारा पुरुषार्थ, सारा अभ्यास ही यथार्थ सत्य स्पष्टता के निमित्त है,
(यथार्थ सत्य दिशा में खोज के लिए सामान्य वीरता नही परम् वीरता
आवश्यक है, वरना
मूर्छा, प्रमाद, राग,द्वेष, मोह आदि आंतरिक शत्रु के समक्ष समर्पण हो सकता है)
यथार्थतः सत्य की खोज करने वाले के लिए कोई भी लोक कर्तव्य नही,
सत्य की खोज करना ही उसका पहला धर्म है, पहला कर्तव्य है,
पर हर कोई सीधे ही सत्य की खोज में तत्पर नही हो सकता,
अधिसंख्य साधारण जन जो सीधे सत्य की खोज में प्रयत्न शील नही है, उनके स्तर के अनुसार
व्यावहारिक धर्म का पालन, शुद्ध लौकिक कर्तव्य, शुद्ध लोकाचार का
पालन बहुत ही अनिवार्य है,
इसलिए भी क्योंकि सत्य की खोज के लिए यह एक आरंभिक तैयारी भी है,
शुद्ध लोक धर्म की व्यावहारिक सत्यता का मापदंड पूरा होने पर ही यथार्थ सत्य दिशा में शोध के लिए सहज स्फूर्त जिज्ञासा हो सकती है, यथा सत्यता, निष्ठा (ईमानदारी) व योग्यता हो सकती है,उससे पहले नही,
आज धर्म की शुद्धि भंग है, धर्म की शुद्धि भंग होने से ही पारिवारिक व सामाजिक
नैतिकता व मर्यादित आचार- व्यवहार इससे प्रभावित है,
धर्म की शुदि भंग होने से ही राष्ट्र दासता, भष्टाचार व अनाचार का शिकार होता है,
सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में ही राष्ट् की सुरक्षा, विकास निर्भर है, राजनैतिक शुद्धि व संतुलन निर्भर है,
धर्म की शरण में ही सुरक्षा है, विकास है,संतुलन है, स्थिति है,
भलीभाँति रक्षा किया हुआ धर्म ही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा रक्षा कवच है,
तुम धर्म की रक्षा करो, पालन करो, धर्म से तुम्हारी रक्षा है, तुम्हारा पालन है|
विश्व भर में जहाँ कहीं भी नैतिकता है,
उसका आधार सद्धर्म ही है|

15 October 2020

15 October 2020

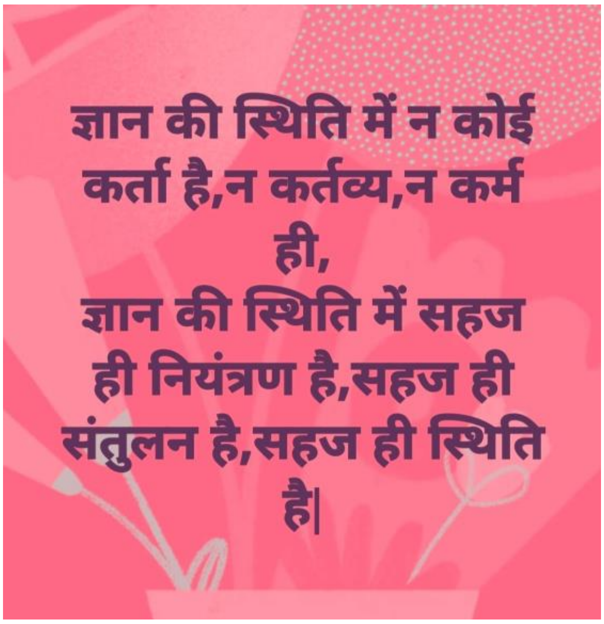

15 October 2020

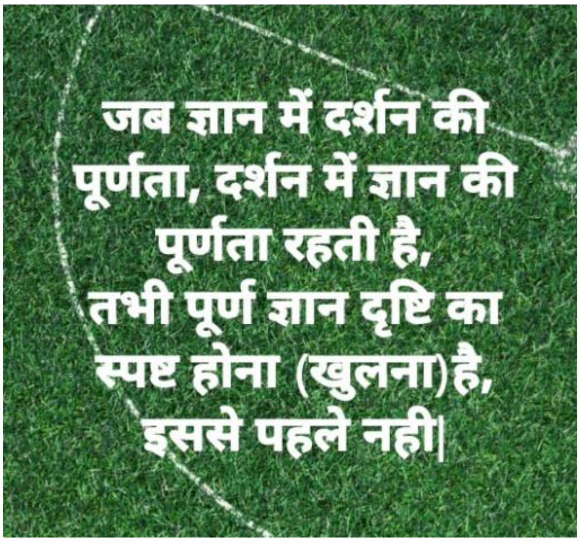

15 October 2020

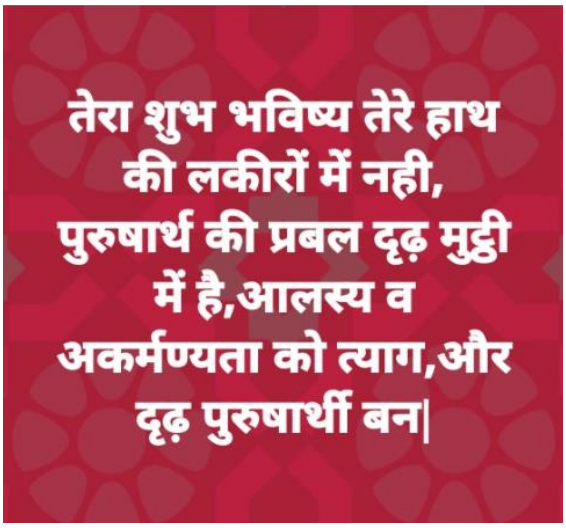

16 October 2020

16 October 2020

16 October 2020

कभी भी कदापि असत्य भाषण नही करना,
यथा सहजता पूर्वक नासाग्र की सीध में ४५ अंश के कोण में नजर (दृष्टि) रखते हुए, विनम्रता पूर्वक संतुलित मध्यम वाणी में सदैव मृदु व सत्य ही बोलना,
झूठ बोलने से लोकाचार की हानि तो है ही, सामाजिक हानि तो है ही,
पर इससे व्यक्तिगत् हानि सबसे अधिक है,
क्योंकि झूठ बोलने से आन्तरिक शुद्धता नष्ट होती है, आंतरिक पवित्रता नष्ट होती है,
आंतरिक शुद्धता, आंतरिक पवित्रता ही दृष्टि की भलीभाँति स्थिरता के लिए आधारीय बल है,
झूठ बोलने वाले के लिए यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है, कि उसके पास ध्यान में स्थिर होने के लिए बल नही होता,
असत्य बोलने वाले में कदापि सम्यक् सत्य के लिए सहज स्फूर्त अभीप्सा, सहज स्फूर्त जिज्ञासा नही जग सकती,
झूठा व्यक्ति दूसरों को तो धोखा देता ही है,
स्वयं को भी धोखा देता है,
झूठा व्यक्ति दूसरों का विश्वास तो खोता ही है,साथ ही स्वयं से भी विश्वास खोता है,
अर्थात् झूठे व्यक्ति को स्वयं पर भी विश्वास नही हो पाता, स्वयं से भी भरोसा गिर जाता है,
जो स्वयं की नजरों से गिर जाए,
फिर भला उसे कौन उठा सकता है,
यह सबसे बड़ी व्यावहारिक हानि है,
व्यवहार में असत्य बोलने वाला कदापि कभी भी सम्यक् निष्ठ नही हो सकता,
व्यावहारिक सत्यता, व्यावहारिक पारदर्शिता ही सम्यक् निष्ठ होने के लिए बल है,
व्यावहारिक सत्यता का, व्यावहारिक पारदर्शिता का मापदंड पूर्ण हुए बिना कदापि सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही हो सकता,
सुई की छेद से भले ही हाथी निकल जाए,
(जो संभव नही)
पर कदापि मिथ्या दृष्टि रखने वाला, मिथ्या बोलने वाला पवित्र सम्यक् मार्ग में प्रविष्ट नही हो सकता |

किसी भी संदर्भ में, किसी भी अर्थ में कदापि मिथ्या वादन न हो,
मिथ्या दृष्टि न हो, मिथ्या आचरण न हो,
झूठा व्यक्ति किसी का भी विश्वास पात्र नही हो सकता,
किसी के लिए भी भरोसे योग्य नही हो सकता,
झूठ बोलने वाले का विवेक दब कर रह जाता है,
झूठ बोलने से आन्तरिक पवित्रता गिरती है, > मानसिक पवित्रता गिरती है, संकल्प शक्ति गिरती है,
आन्तरिक पवित्रता का, > मानसिक पवित्रता का बल ही दृष्टि की स्थिरता के लिए > ध्यान की स्थिरता के लिए बल है,
इसलिए सत्य बोलना, सत्य निष्ठ होना, कितना महत्वपूर्ण है, यह ज्ञात होना तुम्हारे लिए बहुत ही आवश्यक है,
सत्य निष्ठा नैतिकता का आधार तो है ही,
बिना सत्य निष्ठ हुए, कदापि यथार्थतः सत्य का मार्ग स्पष्ट नही हो सकता,
सत्य बोलना समाज में नैतिक औपचारिकता की पूर्ति तक ही सीमित नही है, सत्य बोलना, सत्य निष्ठ होना साधनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है|

17 October 2020

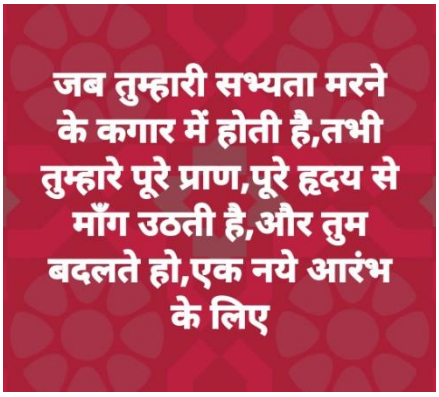

17 October 2020

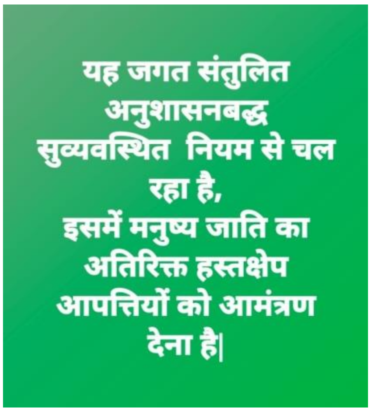

17 October 2020

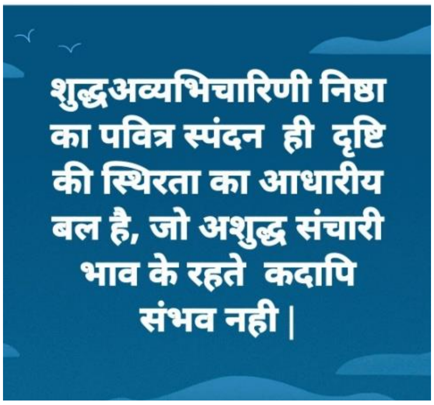

17 October 2020

|| अनुशासनबद्घ सहज संतुलित श्वास,
अनुशासनबद्ध सहज संतुलित जीवन का आधार है, जिस प्रकार से तुम्हारी श्वास चल रही है, उसी के आधार पर उसी प्रकार तुम्हारा जीवन भी चल रहा है ||
अगर जीवन में सहजता चाहिए, संतुलन चाहिए,
तो श्वास का सहज व संतुलित होना आवश्यक है,
और श्वास में पूर्ण सहजता व संतुलन तभी संभव है, जब दृष्टि नासाग्र के ठीक सीध में > श्वास के अग्र भाग के ज्ञान की ठीक सीध में बस ज्ञात भर होने के निमित्त भलीभाँति स्थिर हो जाती है,
श्वास के प्रति बस सहज रहने पर, सजग रहने पर श्वास का अनुशासनबद्ध सहज संतुलित होना स्वाभाविक है,
सहज होना,सजग होना कोई आरोपित क्रिया नही है, कि जिसमें प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव बने,
अपनी तरफ से श्वास (क्रिया) को अनुशासनबद्ध ,सहज संतुलित करने की अपेक्षा बस केवल ज्ञात भर होने के निमित्त ही क्रिया (श्वास) के प्रति यथा सहज रहो, यथा सजग रहो,
ज्ञात भर होने के निमित्त सहज ही श्वास अनुशासनबद्ध
सहज संतुलित हो जाती है,अलग से कुछ भी करने में क्रिया ही है,
और जहाँ क्रिया है, वहाँ दबाव में प्रतिक्रिया अवश्य ही है,
इसलिए अलग से कुछ भी करने से कभी भी पूर्णतः संतुलन स्थापित नही हो सकता,
ज्ञान भर होना क्रिया नही है, और इसलिए क्रिया नही है, तो प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव बनने का प्रश्न ही नही,
दबाव नही होने से सहज ही सहजता पूर्ण है, सहज ही पूर्ण संतुलन है,
ज्ञात भर होने के निमित्त दृष्टि के पूर्ण सहज संतुलन पर ही,
श्वास का पूर्ण सहज संतुलन निर्भर है,
और श्वास के पूर्ण सहज संतुलन पर ही,
जीवन का पूर्ण सहज संतुलन निर्भर है...
ज्ञान मात्र के निमित्त दृष्टि का पूर्णतः सहज संतुलन में होना,
दृष्टि की पूर्णतः अपनी सहज स्वाभाविक सीध में होने से ही है,
इसलिए दृष्टि पूर्णतः अपनी सहज स्वाभाविक सीध में स्थित हो
यह आवश्यक है....
उठते, बैठते, चलते हर व्यावहारिक प्रक्रिया में जो यथा संतुलन व
स्थिति बन रही है, उसका आधार
दृष्टि का उसके सहज स्वाभाविक सीध पर होना निर्भर है, अगर दृष्टि सहज स्वाभाविक सीध में न हो, तो, उठने, बैठने, चलने इत्यादि व्यवहार में संतुलन नही बन सकता, स्थिति नही बन सकती,
सहज स्वाभाविक सीध में दृष्टि है ही, पर कमी है, पूर्णतः सहज स्थिरता की.....
सहज स्वाभाविक ठीक सीध में दृष्टि भलीभाँति स्थिर नही है,
इसका क्या कारण है...
इसका कारण है,
शराब,बीड़ी,सिगरेट, हुक्का,तम्बाकू,गुटखा, पान,सुपारी, चरस, गाँजा,अफीम,धतूरा, ताड़ी,महुआ,स्मैक,हेरोइन, चाय,काफी आदि नशे का सेवन करना, झूठ बोलना,चोरी, हिंसा,
व्यभिचार, छल,धूर्तता, धोखाधड़ी, दंभ,दुराग्रह, ईर्ष्या, राग,द्वेष, मोह, काम, क्रोध, लोभ,मद,मत्सर, मूर्छा,प्रमाद, अहंकार,अभिमान आदि नकारात्मक (ऋणात्मक) दबाव के प्रभाव में आकर ही दृष्टि अपनी
ठीक सहज स्वाभाविक सीध में भलीभाँति पूर्णतः स्थिर न होकर चंचल है,चलायमान है......
इसलिए
व्यावहारिक धरातल में इससे बस केवल जीने की औपचारिकता
ही पूरी हो सकती है,
पर इससे जीवन का पूर्ण केन्द्रीय संतुलन नही बन सकता,
जीवन का पूर्ण केन्द्रीय संतुलन
दृष्टि की अपनी ठीक सहज स्वाभाविक सीध में भलीभाँति स्थिर होने में ही है...
घबराने की बात नही है,
नकारात्मकता > (ऋणात्मकता) से पूर्णतः अनिमित्त हो, उसकी अपेक्षा उत्तरोत्तर धनात्मक अर्थ में जो सकारात्मक से सकारात्मक है,
उसके निमित्त होकर >>>>

>>> नासाग्र ज्ञान की ठीक सीध में श्वास के अग्र भाग के ज्ञान की ठीक सीध में दृष्टि का भलीभाँति संयम पूर्ण करना अनिवार्यतः आवश्यक है,
भलीभाँति संयम पूरा होने पर दृष्टि ठीक अपनी सहज स्वाभाविक सीध में पूरी यथा सहजता में भलीभाँति स्थिर हो जाती है,
कुसंग,नशा,मिथ्या वादन,व्यभिचार, चोरी, हिसा, छल आदि नकारात्मकता (ऋणात्मक)से पूर्णतः अनिमित्त हो,
उसकी अपेक्षा उत्तरोत्तर सकारात्मकता (धनात्मकता) के निमित्त स्थिर रहो, यही दृष्टि के पूर्णतः सहज संयम के लिए बल है |

18 October 2020

जब तक अपेक्षित दृष्टिकोण बना हुआ है, तब तक
सम्यक् यथार्थ सत्य कदापि स्पष्ट नही हो सकता,
सबका अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है, सबका अपना-अपना अपेक्षित मापदंड है, अपने-अपने निर्धारित मूल्य हैं, अपना-अपना तराजू है, अपने-अपने निर्धारित बाँट हैं,
इसलिए परस्पर मतभेद का होना,
विरोधाभास का होना स्वाभाविक है,
हर कोई अपने को सही ठहराता है,
दूसरे को गलत,
सापेक्षिक वर्तुल के तल पर ऐसी भ्रांति होना स्वाभाविक है, सापेक्षिक वर्तुल के जिस कोण विशेष में जो स्थित है,
वह उसी कोण विशेष से देखता है,
उस कोण विशेष से वह अपने को सही व दूसरे को गलत पाता है, पर उस सापेक्षिक वर्तुल के केन्द्र से
सभी कोणों की आर-पार की सच्चाई स्पष्ट है,
अपौरुषेय सनातन ऋत् धर्म के अनुसार कर्म के निमित्त, कर्म में निमित्त (पुरुष) का निमित्त अधिकार है,
और कर्म फल के निमित्त, निमित्त का कर्म फल में भी निमित्त अधिकार है,
कर्म के निमित्त होने पर > कर्म के निमित्त कर्म के होने पर जो दबाव बनता है, उस दबाव में
फल का होना सुनिश्चित है,
हाँ उस दबाव में निमित्त अर्थ में निमित्त कारण की भूमिका निमित्त कारण के अर्थ मे अपनी जगह पर सुनिश्चित है,
मूल निमित्त कारण (सम्यक् ईश्वर) की भूमिका स्पष्ट न होने से ही किसी दृष्टा विशेष, साक्षी विशेष, कर्ता विशेष, धर्ता विशेष, हर्ता विशेष संबंधित मिथ्या ईश्वर की धारणा अज्ञ जनों की दृष्टि में प्रविष्ट है,
कर्म फल में निमित्त कारण की भूमिका अंत रहित सही-सही ओर ही से है,
कर्म व कर्म फल का अर्पण अंत रहित सही-सही ओर
होने से ही कर्म व कर्म फल की शुद्धि है,
अन्यथा न कर्म शुद्ध है,और न ही कर्म फल शुद्ध है, अशुद्ध कर्म व कर्म फल बंधन कारक है|

18 October 2020

19 October 2020

जहाँ भी तुम देखते हो, सबसे पहले उसका बस केवल ज्ञान भर (ज्ञात भर होना) ही होता है, (बुद्धिगत् अर्थ का हस्तक्षेप नही,)
पर मूर्छा वश प्रमाद में तुम्हारी संभलने की गति (रफ्तार) बहुत ही मंद होने से

उस ज्ञान भर (बस ज्ञात भर) होने में तुम संभल नही पाते,
बुद्धि का हस्तक्षेप हो जाने के बाद ही तुम संभल पाते हो,
तब भला संभलने का क्या औचित्य,
समय पर संभलने पर ही समय की सार्थकता है,
इसलिए अब जो भी तुम देख रहे हो,
वह प्रत्यक्ष सत्यता नही, वरन बुद्धिगत् अध्यारोप का सापेक्षिक आभास है,
आरंभ में ज्ञान मात्र ही है,
आरंभ में बुद्धि का हस्तक्षेप नही है, सारा अध्यारोप ही अपेक्षित बुद्धि से प्रेरित है,
किसी भी संबंध में बुद्धिगत् निर्णय होने पर ही उस संबंध में संबंध स्थापित होता है,
और यह संबंध ही संसार है,
और संबंध रहित होना सम्यक् संन्यास |
अध्यारोपित धर्मशास्त्रों में आत्मा की पूर्व सुनिश्चित परम्परागत् धारणा है,
निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थिति मात्र की भूमिका स्पष्ट न होने से ही आत्मा की (आत्मा ऐसी है, या वैसी इत्यादि) अध्यारोपित धारणा उत्पन्न होती है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म के अनुसार आत्मा संबंधित अध्यारोप नही है,
(गीता आदि स्मृति ग्रंथों में ही आत्मा संबंधित अध्यारोपित धारणा है, अपौरुषेय ऋत् धर्म में नही,)
लोक दृष्टि में ही आत्मा का बहुत ही प्रबल अध्यारोप है,
चूँकि तुम्हारा देखना, जानना, समझना सब अध्यारोपित लोकदृष्टि के सम्मोहन में है, इसलिए संकेत अर्थ के प्रति तुम्हें बहुत ही सावधानी पूर्वक संभले रहने की आवश्यकता है, कि संकेत बस (लक्ष्य की ओर) संकेत भर ही रहे, लक्ष्य नही,
आत्मा को बस संकेत अर्थ में ही लेना है, जिस संकेत की दिशा >>>>>>>>>>>>>
>>>>>निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की जो भूमिका है,उसी दिशा में है,
आत्मा की अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टि अहंकार में बाँधती है,
कर्ता भाव, दृष्टा भाव , साक्षी भाव के आरोप में बाँधती है,
जहाँ कदापि ज्ञान मात्र का संकेत स्पष्ट नही है, इसलिए सावधान!!!
** न आत्मा का पक्ष,
न अनात्मा का पक्ष,
केन्द्र में आने पर ही सम्यक् न्याय है|
अध्यारोप के रहते कदापि सम्यक् स्पष्टता नही....
आत्मा कहने का तात्पर्य कदापि लोक प्रचलित अध्यारोपित परम्परागत् धारणा के अर्थ में नही लेना है,
वरना अर्थ का अनर्थ हो जाएगा,
यहाँ आत्मा संबंधित संकेतार्थ उदाहरण तुम्हें सजग करने के लिए ही दिया गया है,
तुम्हारे तथाकथित धर्म शास्त्र तुम्हें "संकेतार्थ तात्पर्य" के प्रति सजग नही करते,
अध्यारोपित दृष्टिकोण के प्रति सावधान नही करते,
बल्कि तुम्हें अध्यारोपित दृष्टिकोण में बाँधते हैं,और उस अध्यारोपित दृष्टिकोण में भावित हो, भावनात्मक स्वसम्मोहन वश तुम अपने लिए संबंधित मत बना लेते हो, अपेक्षित पक्ष स्थापित होता है, फिर जिसे तुम
बस ढोने में विवश हो, मजबूर हो,लाचार हो, उत्तरोत्तर सम्यक् शोध के लिए न तुम्हारे पास समय है, न महत्व, न अभीप्सा है, न ही जिज्ञासा, यह बहुत बड़ी हानि है, बहुत बड़ा दुर्भाग्य है|
क्रमशः

20 October 2020

20 October 2020

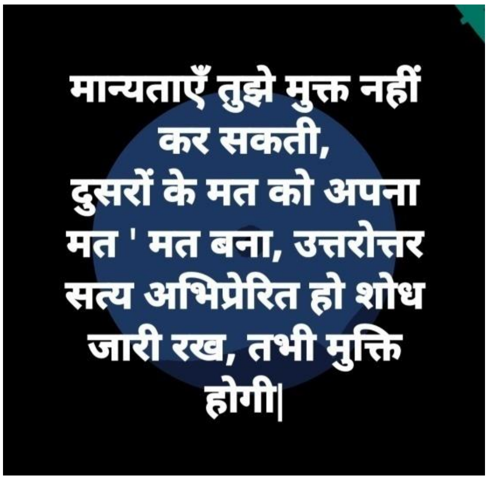

20 October 2020

अपनी तरफ से तुलनात्मक दृष्टिकोण को रोकना नही है,
यथा सहजतापूर्वक उसके प्रति सजग रहना है, सावधान रहना है,
जब तक व्यवहारिक स्थिति है, तब तक तुलनात्मक दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है,
उत्तरोत्तर विकास के दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही आवश्यक है, जहाँ सकारात्मक अर्थ मे इसका सदुपयोग है,
कोई भी मत न पूरी तरह से शुद्ध है, न पूरी तरह से अशुद्ध, हर पक्ष में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पहलू हैं,
विवेकवान नकारात्मक पहलू से सावधान रहता है, और सकारात्मक पहलू से अभिप्रेरित,
सामान्य हिंदू सामान्यतः सर्व ईश्वर वाद (pantheism) पर विश्वास करता है, अर्थात्
जो कुछ भी है, वह ईश्वर का ही प्रकाशन है, (जो कुछ भी है, उस रूप में ईश्वर ही प्रकाशित है,)
सब कुछ ईश्वर का ही प्रदर्शन है, सब कुछ ईश्वर का ही व्यक्तिकरण है, प्रकटीकरण है,
जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर ही है, < ईश्वर का ही रूप है,
हिन्दुओं में कुछ जो अपेक्षाकृत और विकसित हैं, वे panentheism पर विश्वास करते हैं, सामान्यतः उनका मानना है, ईश्वर स्वयं तो व्यक्ति नही है, पर हर व्यक्ति में ईश्वर है, यह मत पहले मत की अपेक्षा विकसित
व शुद्ध है, पर दोनों ही मत अध्यारोपित कृत्रिम दृष्टिकोण में होने से सम्यक् यथार्थतः सत्य नही हैं,
इस तरह से (कोई भी) अपेक्षित आरोप (कोई भी अनर्थ, कोई भी मिथ्या दृष्टि)कदापि अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म के अनुसार नही है,
सम्यक् धर्म के अनुसार तथ्यतः जो जिस अर्थ में है, उसी अर्थ में हैं,(जहाँ तथ्य की तथ्यता यथावत् है,)
अन्य अर्थ से मिलना है ही नही,
(अलग से) अन्य अर्थ का आरोप है ही नही,
अलग से अर्थात् अन्य अर्थ से आरोप होने से ही अपेक्षित बुद्धि के निमित्त संबंधित अर्थ ग्रहण होता है, यही कृत्रिमता है, विकृति है, जो कदापि अपौरुषेय अकृत्रिम् सहज स्वभाव में नही,
इस बात का यहाँ खेद व्यक्त किया जाता है, कि यह हिन्दुओं के लिए दुर्भाग्य है,
वे अपने अध्यारोपित शास्त्र सम्मत मत को (द्वैत-अद्वैत, वैष्णव, शैव आदि अध्यारोपित < संस्थापित मत को) सनातन धर्म कहकर > सनातन धर्म के नाम से मिथ्या अभिमान ही पाल रहे हैं,
जो सही में अपौरुषेय सनातन धर्म है ही नही,
उन्हें सम्यक् विवेकतः यह स्पष्ट ही नही, कि क्या अपौरुषेय है, और क्या अध्यारोपित है,< मनुष्य द्वारा स्थापित है,
क्या अकृत्रिम् है, और क्या कृत्रिम् है,
क्या सही में सनातन है,> सम्यक् विधि मुख है, <अपौरुषेय ऋत् मुख है,
और क्या अध्यारोपित विधिमुख है, <अर्थात् अध्यारोपित शास्त्र मुख है,
क्या मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म है,और क्या विकृति स्वरूप संप्रदायवाद है,
सही में जो सनातन धर्म है, उसकी आज अवमानना ही है,
सनातन धर्म के नाम पर भाँति-भाँति के नाना ऋत् असंगत मत- मान्यताएँ प्रचलित हैं, ऋत् असंगत् नाना कुरीतियों, कुप्रथाओं का प्रचलन ही प्रबलता से है,

ऋत् असंगत् वर्ण व्यवस्था के नकारात्मक प्रभाव से सहज मनुष्यता खंडित हुई है, वर्ण व्यवस्था में जहाँ मनुष्य जन्म से ही किसी वर्ण विशेष के ही गुण विशेष के प्रति ही संवेदनशील हो, आबद्ध है, व अन्य गुणों से वंचित है,
स्वाभाविक है,जिसमें हर कोई खंडित है, हर कोई किसी न किसी गुण व संभावित विकास से वंचित है,
जिसमें हर किसी का पूर्ण विकास प्रभावित है,
यह मनुष्य जाति के साथ जघन्य अप्राकृतिक < अन्याय है,
भले ही आरंभ में यह व्यवस्था अपने शुद्ध स्वरूप में किसी अर्थ में सकारात्मक रही हो, पर अब यह एक रुग्ण,जर्जर व प्रकृति विरुद्ध अन्यायपूर्ण व्यवस्था है,
जहाँ जन्म से ही हर कोई परस्पर एक-दूसरे पर अवलंबित हैं, एक-दूसरे के मोहताज हैं, कोई भी स्वतंत्र व पूर्ण नही है, सब खंडित व असहाय हैं, यह विवशता,यह लाचारी किसी अन्य स्थापित धर्म में नही है, इसलिए वे एकजुट हैं,प्रबल हैं,
जन्म आधारित आरक्षण व भेदभाव से हानि व वंचना ही अधिक हुई है,
किसी भी मनुष्य के साथ न्याय नही है,
(किसी को भी जन्म से वंचित रखना घोर अन्यायपूर्ण है, निश्चित ही प्राकृतिक न्यायालय में इसमें जो भी दोषी हैं,उन पर आगे दासत्व के दंड का प्रावधान है,
मध्य युग का इतिहास इसके लिए गवाह है, अगर समय रहते धर्म का शुद्धिकरण नही हुआ, निष्ठा का शुद्धिकरण नही हुआ, मिथ्यात्व, अन्याय व वंचना नही हटी, तो आगे फिर दासता है,)
जाति व वर्ण, वर्ग को लेकर किसी वर्ग विशेष का किसी भी अन्य वर्ग विशेष से द्वेष व बदले की भावना उन्हीं के पतन का कारण है,
{स्थापित हिन्दू धर्म ही नही, स्थापित बौद्ध, और जैन में भी वर्ण व्यवस्था के आधार पर श्रेष्ठता का मापदंड है,
वहाँ ब्राह्मण से श्रेष्ठ क्षत्रिय है,वहाँ वर्ण क्रम क्षत्रिय,ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र है,
जैन धर्म में तो केवल जन्मजात क्षत्रिय ही तीर्थंकर हो सकता है, दूसरा कोई भी नही, उस धर्म के अनुसार हर बार हर कल्प में २४ तीर्थंकर केवल क्षत्रिय ही हो सकते हैं,
न ब्राह्मण, न वैश्य, न शूद्र, और न ही अन्य अनार्य,
बौद्ध धर्म में बुद्ध होने के लिए पहली संभावना क्षत्रिय के लिए है,
फिर ब्राह्मण के लिए संभावना है,
इसके अतिरिक्त कोई भी कभी भी बुद्ध नही हो सकता, न वैश्य, न शूद्र, न ही अन्य कोई अनार्य वर्ग का, इसलिए प्रचलित बौद्ध धर्म में २८ बुद्ध में से २४ क्षत्रिय व ४ ब्राह्मण वर्ग से संबंधित हैं,
बौद्ध धर्म में कहीं पर तो ब्राह्मण को दासी पुत्र के रूप में भी चित्रित किया है,
खैर यह उनके द्वेषपूर्ण विरोधी स्वभाव का परिचय है,(हिन्दू धर्म में भी विशेषतः क्षत्रिय ही मुख्य अवतारों में हैं, वैश्य,शूद्र और अनार्य वर्ग का कोई भी अवतार नही, अवतार का होना अपौरुषेय सनातन ऋत् धर्म के अनुसार नही है, स्थापित पौराणिक धर्म के अनुसार है,
यथार्थतः सत्य नही,
किसी कुल विशेष में ही किसी बुद्ध, तीर्थंकर आदि की बात मनुष्य इतिहास में जन्म आधारित विशेषता का मनोवैज्ञानिक दबाव का परिणाम स्वरूप है,
वर्ण व्यवस्था की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक आंशिक लाभ प्राचीन काल मे राजनीति व (तप हेतु) सहन शक्ति आदि में एक सीमा तक अपवाद रूप में कुछ क्षत्रिय कहलाने वालों को अवश्य प्राप्त हुआ,
क्योंकि वर्ण के आधार पर क्षत्रिय ही राजा बन सकता था,
फिर भी वर्ण व्यवस्था से निरपेक्ष प्राचीन काल के ऋत् अभिप्रेरित हो, सत्य की खोज में अभिरत् , आचरणशील वनवासी तपस्वी ऋषि, मुनि का सम्मान राजकीय सम्मान से कहीं बढ़कर था,
उस समय ऋत्विक के लिए (जन्म से नही,योग्यता से) त्याग व आचरण का मापदंड पूरा करना बहुत ही आवश्यक था, आज की भिक्षा आज,
कल के लिए संग्रह नही, तभी उसकी प्रासंगिकता भी थी,
प्राचीन काल के इतिहास में
उस समय के ऋषि-मुनि,उस समय के राजाओं का ही वर्णन विशेषतः है,
सामान्य जनता का नही,
यह समय सामान्य जनता के लिए उसके निजी विकास के दृष्टिकोण से उपर्युक्त है,
पर जन्मआधारित वर्ण व्यवस्था का प्रभाव कथित (मिथ्या) धार्मिक पदों व अनुष्ठान आदि में यदा-कदा तो अभी भी है,
गुण,कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था सैद्धान्तिक आदर्श में लागू हो सकती है,
पर इसका व्यावहारिक अस्तित्व जन्म पर आधारित होने से ही है, इसीलिए जो भी गुण,कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था की वकालत करते हैं, वे जन्मआधारित को ही बल देते हैं)
पर लोक में यह भी सत्य है,

कि जो भी कुल श्रेष्ठ आचरण व श्रेष्ठ नैतिक मापदंड पर खरा है, कम से कम १० पीढ़ी से जाति की शुद्धि, वंश की शुद्धि, धर्म की शुद्धि, आचरण की शुद्धि में खरा है,कोई भी उसी शुद्ध कुल में ही विशेष व्यक्तित्व का आविर्भाव होता आया है, और होता रहेगा, यह भी प्राकृतिक न्याय है, इसलिए कोई भी किसी भी वर्ग व समुदाय का हो,
वह आचरण की शुद्धि, धर्म की शुद्धि, कुल की,वंश की शुद्धि रखे, तो निश्चय ही किसी भी उस शुद्ध हुए कुल में विशेष व्यक्तित्व के आविर्भाव की पूर्ण संभावना है,}
जहाँ भी मनुष्य खंडित है, वहाँ सहज पूर्ण विकास के लिए आधारीय बल नही रहता,
अपने को न हिन्दू, न मुहम्मदी आदि ही स्वीकार करो,
बल्कि मात्र मनुष्य ही स्वीकार करो,
तभी तुम्हें मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म स्पष्ट हो सकता है, अन्यथा नही,
प्रत्येक मनुष्य का जन्म से ही पूर्ण मनुष्य की गरिमा में होना स्वभाव सिद्ध अधिकार से है, (इसमें कहीं कोई वंचित नही है,)
प्रत्येक मनुष्य तक यह संदेश पहुँचना बहुत ही आवश्यक है, अगर मनुष्यों के मध्य जाति,वर्ग, धर्म, संप्रदाय, राष्ट्र, संस्कृति,सभ्यता आदि संकीर्णताओं को लेकर "ऐसा ही चलता रहा" तो आगे पृथ्वी ग्रह से मनुष्य प्रजाति लुप्त हो जाएगी,
पहले भी पृथ्वी ग्रह से कई प्रजातियाँ लुप्तप्राय हो गयी हैं,
प्राकृतिक न्याय व चयन मुँह देखकर नही होता है, जो भी संतुलन व विकास में बाधक होता है, प्राकृतिक न्याय में उसे हटा दिया जाता है, अगर चाहते हो,
मनुष्य बचा रहे, तो मात्र मनुष्य होने की स्वीकृति में मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव के धर्म की खोज करो,
जाति, वर्ण,वर्ग, स्थापित धर्म, संप्रदाय, राष्ट्र, संस्कृति,सभ्यता की संकीर्णता में खंडित मनुष्य कदापि उत्तरोत्तर सम्यक् शोध नही कर सकता, कदापि पवित्र सम्यक् मार्ग में प्रविष्ट नही हो सकता,
किसी भी प्रकार के प्रकृति विरुद्ध विभाजन में मनुष्य मात्र के सहज पूर्ण मनुष्यत्व की गरिमा के अनुसार न्याय नही हुआ, अन्याय व शोषण ही हुआ है,
जन्म से विशेष होने का अहंकार निश्चित ही मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव के विरुद्घ है, पूर्ण मनुष्य होने की सहज प्रकृति से विरूद्ध है,
(स्थापित हिन्दू धर्म से इतर अन्य कुछ स्थापित धर्मों में इस तरह से मनुष्य खंडित व बँटा हुआ नही है, इसलिए वहाँ का जन समुदाय एक निष्ठा व भावनीय भावना में प्रबल है, सामान्यतः,हिन्दूओं की निष्ठा बहुत ही कमजोर,व अनिश्चित है, उनका कथित (मिथ्या) भगवान किस स्थिति- परिस्थिति में कब कौन हो जाए,यह सुनिश्चित नही, इतना ही नही उनके कथित (मिथ्या)भगवान से, कथित चार धाम से, कथित धर्म से भी बढ़कर कब कौन (उनके पिता उनके माता या उनके शिक्षक,उनके राष्ट्र आदि) हो जाए,यह भी सुनिश्चित नही, अन्य स्थापित धर्मों की निष्ठा में ऐसा नही है, वहाँ उनका उपास्य ही उनके लिए प्रथम है, फिर सब बाद में है,)
और निश्चित ही जन्म आधारित भेदभाव पतन व बार -२ दासता का कारण है, अपौरुषेय सनातन धर्म की अवमानना से, जन्मजात विशेष होने के अभिमान दोष से निश्चित ही गिरना ही होता है, और आपत्तिजनक दासता में आना होता है, यह प्राकृतिक न्याय है, इतिहास इसका गवाह है,
(विशेषकर जब से धर्म की शुद्धि भंग है, तब से अधिकांश हिन्दू समुदाय इसका शिकार होताआया है,)
दासता,भष्टाचार, अनाचार,शोषण की इतनी ठोकरें लगने के बाद भी सीख नही मिली है, अभी भी अकड़ नही गई,
ऐसा ही चलता रहा, तो निश्चित ही आगे आने वाला समय बहुत ही भयावह है,
फिर से और आपत्तिजनक दासता के लिए तैयार रहो,
मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म
जरा भी कृत्रिम् नही, न हिन्दू (प्रचलित वैदिक,पौराणिक,वेदान्ती आदि,) न बौद्ध, न जैन,न ईसाई, न मुहम्मदी, न सिक्ख, न पारसी, न यहूदी,न चीनी,
न अफ्रीकी आदि ही
बल्कि सम्यक् यथार्थतः
ज्ञान मात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होना (ही) सहज सिद्ध है|
(यहूदी व ईसाई मूलतः एक ईश्वर वाद theism पर विश्वास करते हैं,
अर्थात् उनके मूल विश्वास के अनुसार ईश्वर पूर्ण प्रकाशमान है,पूर्ण प्रकाशक है, पर वह प्रकाशन नही है,
उसमें जरा भी भ्रम, संशय, अज्ञान अंधकार नही है, न वह सृष्टि है,और न वह
सृष्टि में व्याप्त है, वह सृष्टि (रचना) से परे व पवित्र है, भले ही उनका यह मूल विश्वास अन्य संबंधित मतों से शुद्ध हो,
पर यह मत भी अध्यारोपित <अपेक्षित दृष्टिकोण में होने से परिपूर्णतम् विशुद्ध नही,)
सम्यक् यथार्थ बिना किसी आरोपित दृष्टिकोण के सहज ही सिद्ध है,
सृष्टि की, सृष्टिकर्ता की व्याख्या तुम करते है, पर तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् है,
यहाँ पर साधारण तौर पर संक्षिप्त में विभिन्न मतों की ईश्वर संबंधित धारणाओं का सामान्य उल्लेख हुआ,
इन सब बातों का सकारात्मक पहलू से
सकारात्मक अर्थ में तुलनात्मक अध्ययन अवश्य हो,

सकारात्मक अर्थ में तुलनात्मक अध्ययन
होने से उत्तरोत्तर बुद्धि शोधित होती है,
उत्तरोत्तर सकारात्मक अर्थ में विवेक स्पष्ट होता है,
सकारात्मक अर्थ में तुलनात्मक अध्ययन के लिए इस बात की सावधानी हो, कि
तराजू व बाँट पूर्व निर्धारित न हों,
कौन सा मत अथवा पक्ष किस दृष्टिकोण से,किस अर्थ में, कितना अध्यारोपित है,(कितनी मिलावट है,)
इस बात का विवेक स्पष्ट होना बहुत ही जरूरी, कौन सा मत किस अनुपात में,कितना अशुद्ध है, कितना शुद्ध है, इसी आधार पर न्याय हो, अंततः जो सबसे शुद्ध है,उसी की सहज स्वीकृति होगी,
(अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म के अनुसार सम्यक् अर्थ में ईश्वर कहना बस संकेत मात्र है, सीधे,सही ओर,
न कि मनुष्य द्वारा स्थापित
किया हुआ ऐसा है, या वैसा है,(सगुण, साकार, निर्गुण, निराकार, द्वैत-अद्वैत, त्रैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धादैत,त्रिएक इत्यादि ही...)
(सत्य कदापि व्यक्तिपरक subjective नही है, पूर्णतः तथ्यपरक completely factual है,)
सत्य, न्याय अनुसार ही तराजू हो, और सत्य,न्याय अनुसार ही बाँट हो,
नासिकाग्र की ठीक सीध में भलीभाँति स्थिरतापूर्वक संभलते हुए ही तराजू को सीधा रख कर ही तौलना|
क्रमशः

21 October 2020

प्रत्येक मनुष्य स्वभाव सिद्ध पूर्ण मनुष्यत्व की गरिमा में ही जन्म लेता है,
किसी भी मनुष्य को जाति,वर्ग,राष्ट्र धर्म,संप्रदाय, संस्कृति, सभ्यता आदि की संकीर्णता में खंडित होकर मत देखो,
मनुष्य मात्र ही स्वीकार हो,
प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य मात्र की गरिमा में ही स्वीकार हो,
मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव के धर्म से अभिप्रेरित रहो,जिसमें किसी भी मनुष्य का किसी भी मनुष्य के साथ कोई मतभेद, कोई विरोधाभास नही,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही सम्यक् यथार्थ ओर समर्पित रहो..........

21 October 2020

21 October 2020

21 October 2020

22 October 2020

22 October 2020

22 October 2020

सामान्यतः हर कोई सुख की ही तलाश (खोज)में लगा है,
पर जिस दृष्टिकोण से, जिस अर्थ में,
जिस धरातल में सुख की खोज हो रही है, उस दृष्टिकोण से, उस धरातल में सुख के अर्थ में पूर्ण तृप्ति, पूर्ण शान्ति, पूर्ण समाधान नही है,
बल्कि उत्तरोत्तर अशान्ति का, अतृप्ति का, तृष्णा का ही विस्तार है,
जो दुःख की ही प्राप्ति है,
जब तक अपेक्षित दृष्टिकोण का दिग्भ्रम बना हुआ है, अज्ञान बना हुआ है,
तब तक सही अर्थ मे पूर्ण सुख का, पूर्ण शान्ति का अर्थ ही नही,
जब तक विषय-भोगों में आकर्षण बना हुआ है,
लोकैषणा के अर्थ में महत्व बुद्धि बनी हुयी है,
तब तक कदापि सम्यक् दिशा में अर्थात् नासाग्र की ठीक सीध > ज्ञान मात्र में स्थिरता संभव नही,
नासाग्र की ठीक सीध में संयम पूरा होने पर जो अपरिमित शान्ति लाभ है, जो अपरिमित सुख लाभ है,

उसकी तुलना में ब्रह्म लोक का सुख भी नगण्य है,
लोक दृष्टि का मोक्ष सुख भी नगण्य है,
नासाग्र की ठीक सीध से इतर सापेक्षिक दबाव में दुःख ही दुःख है,
नासाग्र की सीध में >>
>> जिस सीध की दिशा में
सहज सामान्य श्वास का ज्ञात भर होना है, ठीक उस सीध में भलीभाँति संयम पूरा होने पर ही
दुःखद सापेक्षिक प्रपंच का अंत है ....

22 October 2020

23 October 2020

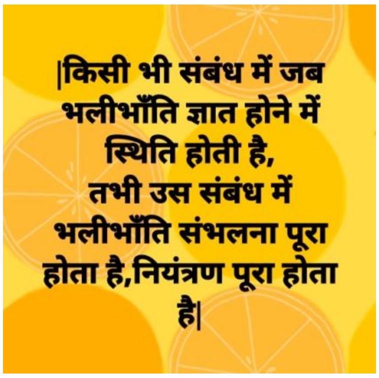

23 October 2020

23 October 2020
समय-समय पर प्रचलित व प्रतिष्ठित धार्मिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक सिद्धांतों व नियमों की सम्यक् न्यायपूर्वक भलीभाँति परीक्षा होनी आवश्यक है,

ताकि किसी भी संबंधित सैद्धांतिक संदर्भ में महज मान्यता शेष न रहकर, स्पष्टतः प्रत्यक्ष प्रायोगिक तथ्यता ही शेष रह जाए,
क्योकि जहाँ भी मत< मान्यता शेष रह जाती है, वहीं अंधविश्वास प्रविष्ट होता है,
और किसी भी दृष्टिकोण में किसी भी तरह का अंधविश्वास सम्यक् जिज्ञासा में,
सम्यक् शोध में बाधक है, तथ्य ही बचा रहे,
अंधविश्वास नही,
अनुलोम, विलोम हर क्रम से,
हर दृष्टिकोण से, हर कोण से, केन्द्र से भलीभाँति सम्यक् न्यायपूर्वक परीक्षा हो जाने पर जो शुद्ध प्रत्यक्ष तथ्यता शेष रह जाए,
उसके आधार पर ही उत्तरोत्तर सम्यक् दिशा में शोध हो,
जितने भी सिद्धांत व नियम हैं,
वे सभी किसी न किसी दृष्टिकोण विशेष में, किसी न किसी कोण विशेष में भले ही अर्थयुक्त हों,
पर पूर्ण केन्द्रीय सत्य नही,
सामान्य जन कारण के अर्थ में संवेदनशील नही होता,
ऐसा होता है, यह तो स्पष्ट है,
पर जिसके होने पर ऐसा होता है, अर्थात् कारण स्पष्ट नही होने से ही कारण के अर्थ में सच्चाई स्पष्ट नही है|
अगर सत्य जानना चाहते हो,
तो कारण के अर्थ में संवेदनशील होना बहुत ही आवश्यक है,
क्योंकि जो कुछ भी है, उसका कोई न कोई कारण अवश्य है, बिना कारण कुछ भी नही है,
इस तरह से अंधविश्वास के लिए कोई जगह नही बचती,
कारण के अर्थ में खोज नही होने से ही सत्य स्पष्टता से वंचित होना पड़ता है|
कारण के अर्थ में सत्य स्पष्ट होने पर ही
फिर अकारण के अर्थ में भी सत्य स्पष्ट होना स्वाभाविक है|

24 October 2020

24 October 2020

जो जिस अर्थ में जहाँ है ,
वह उस अर्थ में वहाँ है ही,,
तुम्हें अपनी तरफ से अलग से (कहीं से) कुछ भी नही लाना है, अलग से (कहीं) कुछ भी नही करना है,
दृष्टि, दृष्टि की जगह पर, ज्ञान, ज्ञान की जगह पर है ही,
बस भलीभाँति स्थिरता ही पूरी करनी है,
न दृष्टि को लाना है, और न ही ज्ञान को लाना है, जो जिस अर्थ में, जहाँ है, उसका उस अर्थ में वहाँ होना स्वाभाविक है,
हर समय कहीं न कहीं तुम्हारी दृष्टि होती ही है,
और जहाँ कहीं भी दृष्टि होती है, वहाँ उस दिशा में ज्ञान का होना स्वाभाविक है,
ज्ञान को अलग से आरोपित नही करना पड़ता,
ज्ञान की अलग से स्थापना नही करनी पड़ती, जहाँ भी तुम्हारी दृष्टि है,
यथा सहजतापूर्वक, पूर्णतः यथा सजग रहो, यथा सहजतापूर्वक, पूर्णतः यथा सजग रहने पर सहज स्वाभाविक ठीक सीध में संभलना हो जाता है|

सामान्यतः कहीं पर भी तुम्हारी दृष्टि किसी एक सीध में भलीभाँति स्थिर नही हो पाती,
मूर्छा के वशीभूत यंत्रवत् तल्लीनता, (तदात्म्यता) में संबंधित संदर्भ के साथ ही साथ तुम्हारा ध्यान भी बदलता रहता है,

दुर्भाग्य की बात है,
कि सामान्यतः तुम्हारी स्मृति, तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारा ध्यान सहज स्वाभाविक सीध में > सीधे सही -सही ओर रहता ही नही है,
यहाँ-वहाँ के सापेक्षिक प्रपंच में तुम्हारी स्मृति,तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारा ध्यान बँटकर चलायमान ही रहता है,
इसलिए घंटों इंटरनेट में तुम बैठ सकते हो, यहाँ-वहाँ के व्यर्थ के सापेक्षिक > संबंधित प्रपंच में समय कब बीत गया,तुम्हें पता ही नही चल पाता,
पर न्यूनतम् ४५ मिनट तक भी लगातार श्वास के ज्ञात होने की दिशा में ध्यानस्थ होकर बैठना तुम्हारे लिए बहुत कठिन हो जाता है,
तुम्हें यहाँ पर साधारण ढंग से
प्रथम ध्यान के बारे में बताया जा रहा है,
इसे ध्यान से पढ़ना,
जिस दिशा में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है,उस दिशा में
(उस सीध में) भलीभाँति स्थिरता का मापदंड पूरा होने पर ही
प्रथम सूक्ष्म दृष्टि खुलती है, जहाँ स्थूल आकाश व समय के समानांतर क्रम का अतिक्रमण है,
सबसे पहले जिस दिशा में, जिस सीध में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, उस दिशा (उस सीध) की खोज करो,
भलीभाँति खोजे हुए उस दिशा में, उस सीध में दृष्टि (निगरानी) को यथा सहजता पूर्वक भलीभाँति स्थिर रखो,
उस दिशा में (उस सीध में) दृष्टि (निगरानी) के प्रति भलीभाँति संभले रहो, ताकि उस दिशा से (उस सीध से) क्षण भर के लिए भी दृष्टि (निगरानी) भंग न हो,
जब तक दृष्टि (निगरानी) बनी हुयी है, तब तक ज्ञान भी बना हुआ है,
उस दिशा से (उस सीध से) दृष्टि (निगरानी) के हटते ही उस दिशा (उस सीध) का ज्ञान भी नही रह जाता,
इसलिए जिस दिशा (जिस सीध)में श्वास का आभास हो रहा है, जब तक उस दिशा (उस सीध) में दृष्टि (निगरानी)बनी हुयी है,तब तक हर श्वास भलीभाँति ज्ञात होती है, दृष्टि (निगरानी) के हटते ही श्वास का ज्ञात होना भी नही रह जाता|
ठीक दिशा (ठीक सीध) में दृष्टि (निगरानी) के प्रति यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग रहते हुए भलीभाँति संभले रहने की क्या महत्ता है, यह तुम्हें साधारण अर्थ में विदित हो गया होगा|
(जिस दिशा (जिस सीध) में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, उस दिशा (उस सीध) के प्रति यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः यथा सजग रहते हुए भलीभाँति संभले रहो)
क्रमशः

25 October 2020

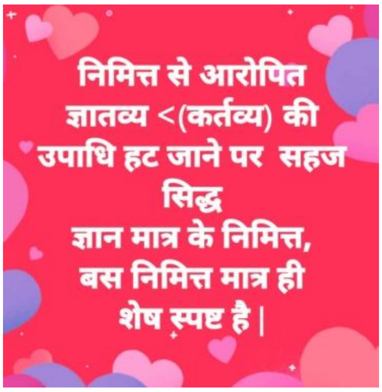

25 October 2020

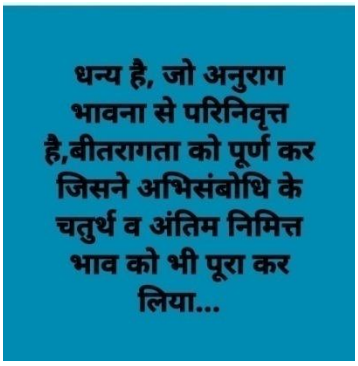

25 October 2020

धन्य है,वह जिसने जन्म, जन्मांतरों की सभी प्रकार की भावित होने योग्य भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा कर लिया,भावित होने के लिए अब कोई भी भावनीय भावना का निमित्त शेष नही रहा,
उसके लिए अब न कोई कर्तव्य शेष है,
न कोई ज्ञातव्य शेष है,
उसके लिए अब सीधे सहज सिद्ध ज्ञान मात्र ही शेष स्पष्ट है,
उसका वर्तमान भव श्रंखला में यह अंतिम जन्म है,
मनुष्य व देवता सहित सम्पूर्ण लोक में वह सबसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ है|
लोक में हर कोई किसी न किसी भावित होने योग्य भावनीय भावना के अंतर्गत ही भावित हो जी रहा है,
कोई सैनिक है, कोई डॉक्टर है, कोई इंजीनीयर है, कोई वकील है, कोई शिक्षक है, कोई कुछ है, हर कोई किसी न किसी भावित होने योग्य भावनीय भावना के अंतर्गत ही है,
तुम्हारा देखना, तुम्हारा जानना, तुम्हारा सोचना, तुम्हारा विचार करना आदि किसी न किसी भावित होने योग्य भावनीय भावना के अंतर्गत ही है,
हर स्थापित धर्म ,कर्म,उपासना सब भावनीय भावना के ही अंतर्गत है,
बस ज्ञान मात्र ही भावनीय भावना के अंतर्गत नही है,
सभी धर्मावलंबियों को अंततः ज्ञान मात्र के निमित्त ही होना है,इसके बिना सम्यक् अर्थ में कल्याण नही|

25 October 2020

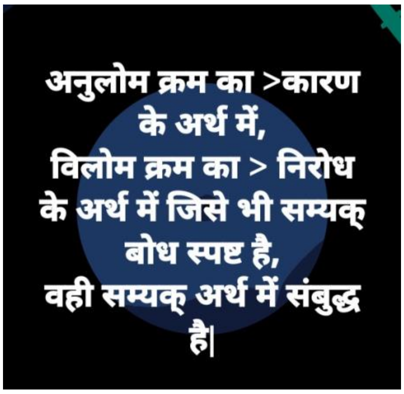

27 October 2020

शरीर की शुद्धि, वस्त्र की शुद्धि,
आवास की शुद्धि, परिसर की शुद्धि,
कर्म की शुद्धि, वाणी की शुद्धि, भावना की शुद्धि,
भाव शुद्धि, मानसिक शुद्धि,
संकल्प शुद्धि, वैचारिक शुद्धि, बौद्धिक शुद्धि,
स्मृति की शुद्धि, दृष्टि की शुद्धि, लक्ष्य की शुद्धि,
नैष्ठिक शुद्धि, चरित्र की शुद्धि, आचरण की शुद्धि, ज्ञान की शुद्धि, दर्शन की शुद्धि,
धर्म की शुद्धि,आहार-विहार की शुद्धि,
जाति की शुद्धि, पारिवारिक व सामाजिक संबंधों की नैतिक & मर्यादित शुद्धि,
वैवाहिक शुद्धि, आदान-प्रदान (लेन-देन) की शुद्धि, द्रव्य की शुद्धि, धन की शुद्धि,
आजीविका की शुद्धि, व्यावहारिक शुद्धि,
उपरोक्त शुद्धियों की उत्तरोत्तर वृद्धि हो,
सम्यक् संरक्षण व,संवर्धन हो,
ज्ञान मात्र के निमित्त भलीभाँति स्थिरता के लिए उपरोक्त शुद्धि का स्पंदन < आधारीय "बल" है,
अनुत्तर सम्यक् मार्ग के लिए उपरोक्त शुद्धि अनिवार्यतःआवश्यक है,
वासना का उत्पन्न होना अशुद्धि है, और वासना का उत्पन्न नही होना शुद्धि है,
अशुद्ध जनों का विशुद्धतम् सम्यक् धर्म में कदापि प्रवेश नही है|

28 October 2020

जगदीश्वरम् द्वारा वाणी के माध्यम से जैसा युक्तिसंगत उपदेश
सत्संग सभा में होता है,
वैसा उपदेश यहाँ लिखित रूप में नही हो पाता, कुई महत्वपूर्ण विन्दु छूट जाते हैं,
कई महत्वपूर्ण संदर्भ अनसुलझे रह जाते हैं,
आर्यमित्र की वाल में सम्यक् देशना का तात्पर्य कभी भी पूरा नही हो
पाता, इस बात का बहुत दुख है,
सत्संग सभा में एक बार भी जो आ जाए,
उसे एक घंटे के भीतर जितना समझ में आ सकता है, वह जीवन भर आर्यमित्र की वाल में पढ़ने से समझ में नही आ सकता,
वाणी आदि अभिव्यक्ति के माध्यम से समझाने की जो कुशलता बन पाती है, वह लिखित रूप में असंभव है,
सत्संग सभा में हर कोण से, हर विन्दु को छूते हुए एक घंटे के भीतर ही सारांश में पूरा मार्ग संकेतार्थ स्पष्ट किया जा सकता है,
सत्संग सभा में ध्यान अभ्यास आदि का प्रत्यक्षीकरण भी होता है,
पर सत्संग व ध्यान यहाँ सदा खुले वन अभ्यारण्य में ही होता है, जो बहुत ही दुर्लभ है,
जहाँ जंगली हाथी, अजगर, बाघ, चीता आदि वन पशुओं का काफी खतरा है,
सुबह ३बजे लगभग यहाँ ऋषि कुमार नामक एक साधक को बाघ ने घायल कर दिया था, जिसकी अस्पताल में शारीरिक मृत्यु हो गयी,
तब से व कई अन्य कारणों से भी यहाँ सार्वजनिक रूप से आने की मनाही है,
जगदीश्वरम् (आर्यमित्र) लंबे समय से एकान्त वास में है, जहाँ किसी को भी आने की अभी अनुमति नही है,
एक कारण तो यहाँ वन में आना बहुत ही खतरनाक है, अगर आना अति आवश्यक हो, तो वह बिना सिले हुए वस्त्र में (केवल एक या दो अंगोछे में या नग्न ही)यहीं निकट के स्वच्छ जल के प्राकृतिक श्रोत से सवस्त्र पूर्ण स्नान करके भीगे-भीगे आ सकता है,
पवित्र स्थान में आने का दूसरा कोई उपाय नही है,
अति आवश्यक दर्शनार्थियों के लिए यह सूचना आवश्यक है,
इसके लिए संजीव नौटियाल, राजेश कुमार गौड़ आदि से संपर्क कर सकते हो,
यह नियम आस-पास लगभग सभी को पता है,
यह चलचित्र इसी वर्ष (साल) में धारा सिंह के गाँव के पास का है, जब सार्वजनिक रूप से दर्शन हुआ था,
अगर सार्वजनिक रूप से दर्शन का कोई इच्छुक हो, तो वह धारा सिंह से संपर्क कर सकता है,
सार्वजनिक रूप से दर्शन में आने के लिए विशेष नियम नहीं हैं,
(,वह भी उत्तर प्रदेश अगर कभी जाना हुआ तो तब) ..
एकांत वन वास जब तक है, तब तक तो ऐसा औपचारिक नियम है,
फिर आगे की बात आगे है ...

28 October 2020

समय गति के सापेक्ष है,
गति न हो, तो समय का अर्थ भी नही है,
और अंतराल (आकाश) न हो, तो गति का अर्थ नही है,
बिना दबाव के मध्य का अंतराल (आकाश) स्थापित नही हो सकता,

बीतना न हो, तो उत्पन्न होने के लिए दबाब नही बन सकता,
बीतने पर ही उत्पन्न होने के लिए दबाब बनता है,
(दबाव में निमित्त की भूमिका निमित्त अर्थ में है, उस दबाव के निमित्त, निमित्त की बस उपस्थिति भर होने से.......)
उस दबाव में ही बीतने व उत्पन्न होने के मध्य का अंतराल (आकाश) स्थापित होता है,
जिस स्तर पर उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है,
अगर उस दबाव से सूक्ष्म स्तर पर सहजता का, सजगता का स्तर होता है,
तो फिर वहाँ उस दबाव का पूर्वाभास नही रह जाता|
सहजता की पूर्णता में
दबाव का मूल भी नही रहता, मूल दबाव के नही होने से अंतराल भी (आकाश) स्थापित नही होता है, अंतराल (आकाश) स्थापित नही होने से दूरी, गति, समय का भी अर्थ नही रह जाता है,
किसी भी संदर्भ में बीतने और उत्पन्न होने से ही,
उस संदर्भ में, उस अनुपात में दूरी, गति, समय का जन्म होता है,
उदाहरण के लिए श्वास के जाने पर ही ,श्वास के आने के लिए दबाव बनता है,उस दबाव में ही श्वास के आने-जाने का मध्य का अंतराल स्थापित होता है,
और उस अनुपात में ही वहाँ दूरी, गति व समय का अनुपात भी सुनिश्चित होता है,
श्वास के जाने पर श्वास के आने के लिए जो दबाव बनता है, उस दबाव से भी सूक्ष्म स्तर पर
सहजता व सजगता का स्तर होने पर
उस दबाव का पूर्ववत् आभास नही रह जाता है,
अर्थात् सामान्य परिप्रेक्ष्य में कहा जाए,
तो यही कहा जा सकता है,
कि प्राण पर नियंत्रण हो जाता है,
श्वास पर नियंत्रण हो जाता है,
श्वास के परिप्रेक्ष्य में अंतराल (आकाश),दूरी,गति, समय पर नियंत्रण हो जाता है,
श्वास की स्मृति में उत्तरोत्तर यथा सहजता पूर्वक पूर्णतः सजग होने पर जब सहजता व सजगता का प्रभाव सामान्य श्वास के संदर्भ में जो दबाव है, उस दबाव के प्रभाव से अधिक हो जाता है,
तब सहज ही श्वास पर नियंत्रण हो जाता है, श्वास के संदर्भ में जो मध्य का अंतराल है,उस पर नियंत्रण हो जाता है, श्वास के संदर्भ में जो दूरी,गति,समय है,
उस पर नियंत्रण हो जाता है,
इस संदर्भ में सामान्य परिपेक्ष्य में प्रथम स्मृति प्रस्थान पूर्ण हुआ...........
क्रमशः

29 October 2020

जगदीश्वरम् द्वारा वाणी के माध्यम से जैसा युक्तिसंगत उपदेश
सत्संग सभा में होता है,
वैसा उपदेश यहाँ लिखित रूप में नही हो पाता, कई महत्वपूर्ण विन्दु छूट जाते हैं,
कई महत्वपूर्ण संदर्भ अनसुलझे रह जाते हैं,
आर्यमित्र की वाल में सम्यक् देशना का तात्पर्य कभी भी पूरा नही हो
पाता, इस बात का बहुत दुख है,
सत्संग सभा में एक बार भी जो आ जाए,
उसे एक घंटे के भीतर जितना समझ में आ सकता है, वह जीवन भर आर्यमित्र की वाल में पढ़ने से समझ में नही आ सकता,
वाणी आदि अभिव्यक्ति के माध्यम से समझाने की जो कुशलता बन पाती है, वह लिखित रूप में असंभव है,
सत्संग सभा में हर कोण से, हर विन्दु को छूते हुए एक घंटे के भीतर ही सारांश में पूरा मार्ग संकेतार्थ स्पष्ट किया जा सकता है,
सत्संग सभा में ध्यान अभ्यास आदि का प्रत्यक्षीकरण भी होता है,
पर सत्संग व ध्यान यहाँ सदा खुले वन अभ्यारण्य में ही होता है, जो बहुत ही दुर्लभ है,
जहाँ जंगली हाथी, अजगर, बाघ, चीता आदि वन पशुओं का काफी खतरा है,
सुबह ३बजे लगभग यहाँ के ऋषि कुमार नामक एक साधक को बाघ ने घायल कर दिया था, जिसकी अस्पताल में शारीरिक मृत्यु हो गयी,
तब से व कई अन्य कारणों से भी यहाँ सार्वजनिक रूप से आने की मनाही है,
जगदीश्वरम् (आर्यमित्र) लंबे समय से एकान्त वास में है, जहाँ किसी को भी आने की अभी अनुमति नही है,

एक कारण तो यहाँ वन में आना बहुत ही खतरनाक है, अगर आना अति आवश्यक हो, तो वह बिना सिले हुए वस्त्र में (केवल एक या दो अंगोछे में या नग्न ही) यहीं पास में जो नदी का श्रोत है, वहीं से सवस्त्र पूर्ण स्नान करके भीगे-भीगे आ सकता है,
पवित्र स्थान में आने का दूसरा कोई उपाय नही है,
अति आवश्यक दर्शनार्थियों के लिए यह सूचना आवश्यक है,
इसके लिए संजीव नौटियाल, राजेश कुमार गौड़ आदि से संपर्क कर सकते हो,
यह नियम आस-पास लगभग सभी को पता है,
यह चलचित्र इसी वर्ष (साल) में धारा सिंह के गाँव के पास का है, जब सार्वजनिक रूप से दर्शन हुआ था,
अगर सार्वजनिक रूप से दर्शन का कोई इच्छुक हो, तो वह धारा सिंह से संपर्क कर सकता है,
सार्वजनिक रूप से दर्शन हेतु विशेष नियम नहीं हैं,
(,वह भी उत्तर प्रदेश अगर कभी जाना हुआ तो तब) ..
एकांत वन वास जब तक है, तब तक तो ऐसा औपचारिक नियम है,
फिर आगे की बात आगे है ...

29 October 2020

सामान्यतः संबंधित सत्य की ही खोज होती है,
सामान्यतः हर कोई किसी न किसी संदर्भ में, किसी न किसी संबंध में सत्य जानना चाहता है,
अगर किसी भी संबंध में कोई संशय न हो, संदेह न हो, दुविधा न हो,भ्रान्ति न हो,
तो किसी भी संबंध में खोज का अर्थ नही रह जाता है, क्योंकि तब या तो पूर्णतः ज्ञान में स्थिति है, या पूर्णतः अज्ञान में स्थिति है,
परंतु सामान्यतः न तो पूर्णतः ज्ञान में स्थिति होती है, और न ही पूर्णतः अज्ञान में स्थिति होती है,
अधूरे ज्ञान, अधूरे अज्ञान अर्थात् सापेक्ष ज्ञान में ही स्थिति होती है,
ऐसी स्थिति में संदेह का, संशय का, दुविधा का, भ्रान्ति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
इस संकेत के आधार पर तुम्हें भ्रम, संशय, संदेह, दुविधा, अल्पज्ञता के
प्रति नकारात्मक नही रहना है, सकारात्मक रहना है,
क्योंकि अगर ऐसा नही होता तो, तुम पूर्णतः सम्यक् समाधान के अर्थ में खोज के लिए प्रेरित नही होते,
दृष्टिकोण विशेष से अनपेक्ष होना सामान्य जन की सीमा से बाहर है,
सामान्यतः बिना किसी अपेक्षित दृष्टिकोण के खोज के लिए प्रेरणा नही होती, यह जन सामान्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है,
जैसे सिद्धार्थ के दृष्टिकोण में दुःख संबंधित अर्थ का ग्रहण बहुत ही गहरे से था,
इसलिए दुःख संबंधित सत्य की खोज की तीव्र आतुरता में व्याकुल हो सिद्धार्थ ने घर-बार छोड़ दिया,
और जिस दृष्टिकोण से निष्क्रमण किया,
उस दृष्टिकोण से, तत्परता पूर्वक, पूरी निष्ठा से, पूरी दृढ़ता से, पूरी ईमानदारी से, पूरे श्रम से दुःख संबंधित सत्य की खोज को पूरा किया,
दुःख संबंधी तथ्य के दृष्टिकोण में चार आर्य सत्य का बोध स्पष्ट हुआ,
यह आवश्यक नही, जो दृष्टिकोण सिद्धार्थ का था,वह तुम्हारा भी हो,
पर तुम्हें सिद्धार्थ के निष्क्रमण से, दृढ़ता से, ईमानदारी से प्रेरित होना चाहिए,
पर सिद्धार्थ में भी वह निष्ठा,
वह ईमानदारी नही थी, जो सम्यक् अर्थ में पूर्णतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सम्यक्,समर्पण में होती है,
पूर्णतः सम्यक् समर्पण में अपनी तरफ से कोई दृष्टिकोण विशेष शेष नही बचता,

मात्र सत्य से ही मात्र सत्य स्पष्ट है|
दृष्टिकोण विशेष के शेष रहते कदापि,सम्यक् समर्पण नही हो सकता,
भले ही वह सिद्धार्थ का दुःख संबंधित दृष्टिकोण ही क्यों न हो,
तुम्हें पूरी सत्यता से, पूरी निष्ठा से, पूरी ईमानदारी से, धैर्य पूर्वक, दृढ़ता पुर्वक, तत्परता पूर्वक पूरे श्रम से पूर्ण सत्य की खोज में लग जाना चाहिए|
दृष्टिकोण विशेष से अनपेक्ष पूर्णतः यथावत् स्पष्टता
सामान्य जन की सीमा में नही है,
इसलिए सामान्य जन को चाहिए, कि
उत्तरोत्तर सम्यक् से सम्यक् दृष्टिकोण से खोज के लिए प्रेरित रहे |
कितने ही क्षणिक वैराग्य में घर-बार छोड़कर कथित तौर पर सन्यास ले लेते हैं, पर पूरी निष्ठा व पूरी ईमानदारी
न होने से उनके सन्यास का प्रयोजन पूरा नही हो पाता,
और उल्टा सन्यास की निष्ठा से भ्रष्ट हो, मिथ्या पद, प्रतिष्ठा, लोकैषणा के सापेक्षिक प्रपंच जाल में ही उलझे रह जाते हैं,
एकान्तिक दृष्टि (एक अंत से संबंधित दृष्टि) के जितने भी कोण हैं, वे सभी सापेक्षिक वर्तुल के आरोपित > स्थापित दृष्टिकोण हैं,
वर्तुल के किसी भी कोने (कोण)में उस पूरे वर्तुल का पूरा ज्ञान, पूरा दर्शन नही होता, बस उस कोने (कोण) का ही सीमित ज्ञान होता है, सीमित दर्शन होता है,
परंतु उस पूरे वर्तुल का पूरा ज्ञान, पूरा दर्शन उस वर्तुल के केन्द्र में ही होता है,
वर्तुल एक है, केन्द्र एक है, पर
कोण अनेक हैं, वर्तुल के एक कोने (कोण) से जो दर्शन होता है, उसी वर्तुल के दुसरे कोने (कोण) के दर्शन से उसका अंतर होना स्वाभाविक है,
जिससे हर कोने (कोण) की दृष्टि वाले को अपने ही कोने (कोण) के
दर्शन के संबंध में संदेह उत्पन्न होता है,
वर्तुल के किसी भी कोने (कोण) से पूरे वर्तुल का दर्शन नही होता है, बस उस कोने (कोण)का ही सीमित दर्शन होता है,
अधूरे व सीमित दर्शन में भ्रम, संशय, संदेह, दुविधा, अल्पज्ञता का होना स्वाभाविक है,
अधूरे सीमित दर्शन में पूर्ण केन्द्रीय सत्यता स्पष्ट नही हो सकती,
(पूर्ण केन्द्रीय सच्चाई नही खुल सकती,)
वर्तुल के केन्द्र से ही पूरे वर्तुल का पूरा दर्शन होता है,
पूरे वर्तुल का पूरा दर्शन होने से ही उस पूरे वर्तुल की सत्यता स्पष्ट रहती है,
जहाँ भी पूरा दर्शन है, पूरी सत्यता स्पष्ट है,
वहाँ किसी भी अर्थ में कोई भ्रम, सशय, संदेह, दुविधा, अज्ञानता नही है,
वर्तुल के सांकेतिक उदाहरण से कहने का तात्पर्य है,
जिस दृष्टिकोण से किसी भी संबंध में पूर्ववत् अर्थ
ग्रहण हो रहा है, वह सापेक्षिक वर्तुल के किसी एक कोने (कोण) की ही दृष्टि है,
इसलिए जिस दृष्टिकोण से दुःख से संबंधित अर्थ ग्रहण हो रहा है, जिस दृष्टिकोण से बुद्ध के चार आर्य सत्य स्थापित हैं,
उस दृष्टिकोण के प्रति भी सावधान रहो,
दृष्टिकोण विशेष से अनपेक्ष होने पर ही सहज सिद्ध पूर्ण सत्य स्पष्ट है |

30 October 2020

इस पृथ्वी ग्रह में
मनुष्यों के मध्य परस्पर
जाति,वर्ग, राष्ट्, धर्म, संस्कृति & सभ्यता के संबंध जो मतभेद है, जो विरोधाभास है,,जो विभाजन है,
जो रक्तरंजित संघर्ष है,
वह घोर दुःखद पूर्ण है,
जैसे कहीं की भी अग्नि हो,
उसका मौलिक गुणधर्म उष्णता ही है,
और जैसे कहीं का भी जल हो,उसका मौलिक गुणधर्म शीतलता ही है,
इस संदर्भ में कहीं कोई मतभेद नही, विरोधाभास नही,विवाद नही,
>> संकेतार्थ इसी प्रकार कहीं का भी मनुष्य हो, उसका मौलिक गुणधर्म भी एक ही है, उसमें कहीं भी कोई मतभेद नही है, कहीं भी कोई परस्पर विरोधाभास नही है,
स्वभाव सिद्ध ज्ञान मात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होने में कहीं भी कोई मतभेद नही है, विरोधाभास नही है,

यही मनुष्य मात्र का मौलिक गुणधर्म है, ज्ञान मात्र से इतर जो कुछ भी भासित हो रहा है, उसकी सहज उपस्थिति नही है, वह सब आरोपित है, कृत्रिम है,
यथार्थतः नही है,
परिस्पष्टतम् ज्ञान मात्र न बीतता है, और न बीतकर पुनः उत्पन्न होता है,
विशुद्धतम् ज्ञान मात्र शाश्वत है, स्थाई है, नित्य है, सनातन है,
आरोपित दृष्टिकोण में सामान्यतः यह जो कुछ भी भासित हो रहा है,
उसका आधार ज्ञान मात्र (ज्ञात भर होना)
ही है,
ज्ञान मात्र के आधार के बिना किसी का भी अस्तित्व नही है,
ज्ञान मात्र ही हर सापेक्षिक < संबंधित व्यवहार का अवलंबन है,आधार है,
किसी भी सापेक्षिक < संबंधित व्यवहार के भंग होने पर भी उसका आधार ज्ञान मात्र भंग नही होता है,
ज्ञान मात्र शेष रह जाता है,
हर संबंधित अर्थ, ज्ञान मात्र के अपेक्षित है,पर ज्ञान मात्र किसी के भी अपेक्षित नही,
हर संबंधित अर्थ में ज्ञान मात्र ही हर आरंभ के आरंभ में है, ज्ञान मात्र में ही अंततः अंत है,
ज्ञान मात्र संबंधित नही है, परंतु आधार है, अवलंबन है,
ज्ञान मात्र अर्थात् ज्ञात भर होना कोई
अपेक्षित दृष्टिकोण में आरोपित,< संस्थापित लोकाचार का कथित भगवान, ईश्वर, आत्मा,ब्रह्म, खुदा, गाॅड अथवा कोई व्यक्ति विशेष,भाव विशेष नही है, बल्कि इन सब आरोपों से पवित्र है,
तथ्य ने आत्मा,परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म आदि कुछ नही कहा है,
यह सब तुमने कहा है, यह तुम्हारा आरोप है, तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् स्पष्ट है,
कहीं कोई आरोप नही, कहीं कोई भ्रान्ति नही,
बस दर्शन मात्र के निमित्त उपस्थित भर हो जाए, निभ्रांत यथार्थ स्पष्ट है,
लोकाचार के तथाकथित भगवान, ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म, खुदा, गाॅड अथवा कोई भी व्यक्ति विशेष भले ही अहंकार &अस्मिता से संबंधित हो,
(ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म आदि से संबंधित कृत्रिम अध्यारोप
लोकाचार के वशीभूत अज्ञ मनुष्यों द्वारा स्थापित है, यथार्थतः नही, तथ्यतः नही,)
पर ज्ञान मात्र (ज्ञातभर होना) किसी भी अर्थ में संबंधित होने से अथवा किसी भी अर्थ में अध्यारोपित होने से पवित्र है, विशुद्ध है,
ज्ञान मात्र,जरा भी कर्ता भाव से संबंधित नही है,
ज्ञान मात्र जरा भी व्यक्ति विशेष से संबंधित नही है,
ज्ञान मात्र, जरा भी अहंकार से संबंधित नही है, जरा भी अस्मिता से संबंधित नही है, जरा भी सापेक्ष अस्तित्वगत् भाव से संबंधित नही,
ज्ञान मात्र, बस ज्ञान मात्र है, जरा भी अन्य अर्थ में नही,
ज्ञान मात्र, ज्ञान मात्र के अर्थ में है,
निमित्त, निमित्त अर्थ में है, ज्ञान मात्र का निमित्त मात्र में आरोप नही,
निमित्त मात्र का ज्ञान मात्र में आरोप नही,
ज्ञान मात्र में निमित्त संबंधित नही है,
बस निमित्त है, बस उपस्थिति भर के निमित्त,
(ज्ञान मात्र, ज्ञान मात्र के अर्थ में है,
निमित्त, निमित्त अर्थ में है,
जो जिस अर्थ में है, बस उसी अर्थ में है, जब तुम्हारे दिखने में निमित्त, निमित्त अर्थ में है, ज्ञान मात्र, ज्ञान मात्र के अर्थ में स्पष्टतः रहता है,
तभी निमित्त की निमित्त अर्थ में, ज्ञान मात्र की ज्ञान मात्र के अर्थ में यथार्थ सत्यता स्पष्ट है, अन्य अर्थ का अन्य अर्थ
में आरोप करने पर दिग्भ्रम होता, उस अर्थ की यथार्थ सत्यता स्पष्ट नही होती,
निमित्त, ज्ञान मात्र के अर्थ में नही है, अपितु निमित्त अर्थ में ही है,
, अपितु ज्ञान मात्र के निमित्त है,
जहाँ निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में भूमिका स्पष्ट है,
न तो ज्ञान मात्र किसी अन्य अर्थ से संबंधित है,
और न ही निमित्त, मात्र निमित्त अर्थ की भूमिका में किसी अन्य अर्थ से संबंधित है,
ज्ञान मात्र के अवलंबन में ही संबंधित अर्थ का अध्यारोप है,
पर संबंधित अर्थ का अध्यारोप होने पर भी ज्ञान मात्र इससे पवित्र है,
निमित्त मात्र के अवलंबन में ही कर्ता भाव का & दृष्टा भाव का अध्यारोप है,

पर कर्ता भाव & दृष्टा भाव का अध्यारोप होने पर भी
निमित्त मात्र इससे पवित्र है,
(कोई भी अर्थ, जिस अर्थ में है, जब केवल उसी अर्थ में होता है, अन्य अर्थ में नही होता है,
तो वह अर्थ संबंधित नही होता है,
पर जैसे ही अन्य अर्थ का उसमें आरोप होता है, तभी वह संबंधित हो जाता है,)
स्पष्टतः प्रत्यक्ष ज्ञान मात्र कदापि अन्य अर्थ से संबंधित नही है,
निमित्त मात्र भी
(बस उपस्थित भर होने की) मात्र निमित्त अर्थ की सहज स्वाभाविक भूमिका में जरा भी अन्य अर्थ से संबंधित नही है,
बस ज्ञान मात्र के निमित्त (संबंधित नही) ही निमित्त की निमित्त अर्थ में जो भूमिका है, सहज सिद्ध भूमिका है,
ज्ञान मात्र से इतर संबंधित होने पर ही कर्ता भाव का, दृष्टा भाव का, साक्षी भाव का आरोप होता है,
गीता आदि अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टि में दृष्टा भाव, साक्षी भाव आरोपित नही है, सहज सिद्ध है,
पर सम्यक् दृष्टि में यह भी आरोपित है,
क्योंकि सम्यक् दृष्टि शास्त्रीय दृष्टि से और सीधे, और सूक्ष्मता में,और सही ओर है,
इसलिए जहाँ शास्त्रीय दृष्टि नही पहुँचती,
वहाँ सम्यक् दृष्टि पहुँचती है,
अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टि में दृष्टा भाव का, ज्ञाता भाव, साक्षी भाव का सूक्ष्म दबाव नही दिखता,
जो सम्यक् दृष्टि में दिखता है, इसलिए जो शास्त्रीय दृष्टि में सहज सिद्ध है,
वह सम्यक् दृष्टि में दबाव युक्त है, जो दबाव युक्त है, वह कृत्रिम् है, आरोपित है, सहज सिद्ध नही,
ज्ञाता नही,बस ज्ञात भर होना ही सहज सिद्ध है,
अथवा दृष्टा नही, बस दर्शन भर होना ही सहज सिद्ध है,
तथ्य से बस ज्ञान मात्र ही होता है,
दर्शन मात्र ही होता है,
तथ्य की तरफ से न कोई ज्ञाता है, न कोई दृष्टा है, यह सब प्रपंच तुम निर्मित करते हो,
कि कोई ज्ञाता (स्वयं है, जो जान रहा है,)है,
कि कोई दृष्टा (स्वयं है, जो देख रहा है,) है,
यह तथ्य की तरफ से कदापि नही है,
यह विकृति (बुद्धिगत् हस्तक्षेप है,)
है, प्रकृति नही,
यह तुम्हारा आरोप है, जिसमें अर्थात् आत्म भाव भावना में भावित होकर
< भावित भावनात्मक स्वसम्मोहन में तुम दिग्भ्रमित हो, इस दुःखद आपत्तिकारक दिग्भ्रम को तुमने ही खड़ा किया है, इसके लिए तुम अर्थात् अपेक्षित दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन वश भ्रांति में जिसे तुम अपने को मान बैठे हो, यही सम्पूर्ण दिग्भ्रम के लिए, सम्पूर्ण दुःखद उपभोग के लिए जिम्मेदार है, यही दृष्टा बनता है,
यही ज्ञाता बनता है, यही कर्ता बनता है,
यही भोक्ता बनता है,यही साक्षी बनता है,
यही मिथ्या,दृष्टि की घोषणाएँ करता है,
यही है,जो संबंधित कर्म व कर्म फल के जाल में फँसा रहता है, लोक दृष्टि, लोक धर्म, लोक कर्तव्य, लोकाचार के दुःखद सापेक्षिक प्रपंच में आजीवन उलझा रहता है,और मर जाता, मरने के बाद फिर अज्ञान अंधकार में जन्म लेता है, जहाँ यह दुःखद भव चक्र ही इसका सनातन घर है,
यही सब सापेक्षिक प्रपंच का मूल है,
तुम्हारे तथाकथित धर्म,
तुम्हारे तथाकथित शास्त्र इससे मुक्ति की बात नही करते, बल्कि इस की मुक्ति की बात करते हैं, इसे ईश्वर को प्राप्त होना है, इसे ब्रह्म को प्राप्त होना है,
अहो यह कैसा विचित्र अज्ञान अंधकार है,
असल में तो उस अपेक्षित दृष्टिकोण से मुक्त होना है, जिस अपेक्षित दृष्टिकोण में तुम अपने को मान रहे हो,
जिस अपेक्षित दृष्टिकोण में कथित ईश्वर अथवा ब्रह्म आदि को मान रहे हो, इस अपेक्षित दृष्टिकोण के मिथ्यात्व से मुक्त होना है,
जिससे मुक्त होने पर ही निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में सहज सिद्ध भूमिका स्पष्ट है, यही सम्यक् अर्थ में मुक्ति है,
ज्ञान मात्र की स्पष्ट पारदर्शिता में कहीं भी,,कोई दिग्भ्रम नही है,
निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता है,
इसलिए हे पृथ्वी भर के सारे मनुष्यो,
संबंधित शास्त्रीय अध्यारोपों से अनिमित्त हो,
बस उत्तरोत्तर ज्ञान मात्र स्पष्टता के निमित्त हो जाओ,

न ज्ञाता, न ज्ञेय, न संबंधित ज्ञान,
ज्ञान मात्र नही>>
ज्ञान मात्र की पूर्णता में ही सम्यक् यथार्थ की पूर्णता परिस्पष्टतम्....
ज्ञान मात्र की पूर्ण विशुद्धता में ,पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में ही
पूर्णतः यथार्थ स्पष्टता है|
अपेक्षित दृष्टिकोण के संबंधित प्रपंच से अनिमित्त हो, मात्र उत्तरोत्तर सम्यक् यथार्थ ओर ही नैष्ठिक रहो,उपासनारत् रहो, समर्पित रहो, जिज्ञासु रहो, शोधरत् रहो,......

31 October 2020

स्वभाव से स्थिति वर्तमान की ही है,
न स्थिति भूत काल की है,और न ही भविष्य काल की है,
भूत व भविष्य के ठीक मध्य ही
वर्तमान है,
जो नासिकाग्र की ठीक सीध में है,
भूत और भविष्य के मध्य ही समय व दूरी का
अंतराल स्थापित है,
ठीक वर्तमान में समय और दूरी का अंतराल नही है,
ज्ञाता और ज्ञेय के मध्य ही समय और
दूरी का अंतराल स्थापित है,
मात्र ज्ञात भर होने में समय व दूरी का अंतराल नही है,
मात्र ज्ञान अर्थात्
बस ज्ञात भर होना ही ज्ञाता और ज्ञेय के ठीक मध्य में है,
चूँकि ठीक मध्य ही वर्तमान की स्थिति है,
इसलिए
मात्र ज्ञात भर होना ही ठीक वर्तमान की स्थिति में है,
नासिकाग्र की ठीक सीध में न भूत काल है, और न ही भविष्य काल
है, नासिकाग्र की ठीक सीध में वर्तमान ही है, (जितना ही सीधे से सीधे स्वाभाविक सीध में दृष्टि स्थिर होते जाती है, उसी अनुपात में सीधे से सीधे निकट से निकट का वर्तमान भी स्पष्ट होता जाता है,)
नासिकाग्र की ठीक सीध में, श्वास के ठीक मध्य की ठीक सीध में ठीक वर्तमान में, मात्र ज्ञात भर होना ही है,
मात्र ज्ञान (बस ज्ञात भर होने)में समय व दूरी का अंतराल नही होने से मात्र ज्ञान (बस ज्ञात भर होने) में जो है , जैसा है, ठीक वैसा ही स्पष्ट है,
इसलिए मात्र ज्ञान (बस केवल ज्ञात भर होने) में
किसी भी संदर्भ में, किसी भी अर्थ में भ्रम, संशय,अज्ञानता का कोई अर्थ ही नही है,
मात्र ज्ञात भर होना ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में है,
आरोपित दृष्टा (ज्ञाता) भाव में नही, आरोपित साक्षी भाव में नही,
इसलिए आरोपित दृष्टा भाव से सावधान रहो,
मात्र दर्शन अर्थात् मात्र दिखना स्वभाव से है, ठीक वर्तमान में है,
इसलिए सीधे ही केवल बस दिखने के निमित्त रहो,
मात्र दर्शन के निमित्त अर्थात् मात्र दिखने के निमित्त ही मात्र ज्ञान की अर्थात् मात्र ज्ञात भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है,
इसलिए नासाग्र की ठीक सीध में,श्वास के अग्र भाग की ठीक सीध में ही मात्र दिखने के निमित्त रहो,
नासिकाग्र की ठीक सीध ज्ञान मात्र से इतर सापेक्षिक दबाब में अलग से प्रचलित कृत्रिम् अध्यारोपित हठयोग (षट्कर्म, चक्रभेदन, कुंडलिनी जागरण क्रिया योग आदि) की सापेक्षिक जटिल साधना में उतरने की अतिरिक्त आवश्यकता नही है,
(दबाव स्वरूप) क्रिया से क्रिया में नियंत्रण नही हो सकता, अर्थात् दबाव से दबाव में नियंत्रण असंभव है,
सहजता से सहज ही, दबाव स्वरूप क्रिया में नियंत्रण संभव है,
सहज सिद्ध ज्ञान मात्र के निमित्त ही क्रिया में सहज नियंत्रण, सहज संतुलन व सुव्यवस्थितता है,
इसलिए हठ योग की क्रिया में उतरने की आवश्यकता नही है,
हाँ जिन्हें सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही हैं, वे भले ही प्रचलित योग की कृत्रिमता में उलझे रहें, अज्ञानता वश यह उनकी विवशता है, मजबूरी है, एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त यह उनकी आवश्यकता भी है,
अज्ञानता वश किसी योगी की योग भ्रष्ट होने की संभावना बनी ही रहती है,
पर ज्ञान भ्रष्ट होना सहज स्वभाव विरुद्ध है,

सामान्यतया तुम्हें यह कहा जा सकता है, कि नाक के सबसे आगे के भाग की ठीक सीध की दिशा में स्वाभाविक ही श्वास की ठीक सीध है,उसी ठीक सीध में निगरानी रहे,
जब तक वहाँ ठीक सीध में निगरानी बनी हुयी है,
उस सीध में जो है, तभी तक स्वाभाविक ही उसका
ज्ञान भी बना हुआ है,
जैसे ही निगरानी भंग होती है, संबंधित ज्ञान भी भंग हो जाता है,
इसलिए ठीक सीध से निगरानी भंग न हो, संबंधित ज्ञान से
निगरानी भंग न हो,
भलीभाँति यथा सहजता पूर्वक, यथा सजगता पूर्वक भलीभाँति संभले हुए रहना है,
सारा दारोमदार तुम्हारी निगरानी पर टिका हुआ है,
ठीक सीध में निगरानी के संदर्भ में भलीभाँति संभले हुए रहना है,
बस किसी भी प्रकार से निगरानी भंग न हो,
क्योंकि निगरानी के भंग होते ही ज्ञान भी भंग हो जाएगा,
निगरानी पर ही सामान्य संदर्भ में ज्ञान की स्थिति निर्भर है,
इसलिए निगरानी भलीभाँति स्थिर रहे,
संबंधित ज्ञान में जैसे - जैसे निगरानी भलीभाँति स्थिर होते
जाती है, वैसे-वैसे संबंधित ज्ञान भी स्पष्ट होता जाता है,
जैसे ही निगरानी के संदर्भ में स्थिरता पूरी हो जाती है,
संबंधित ज्ञान पूरी तरह से भलीभाँति यथावत् ठीक-ठीक स्पष्ट हो जाता है,
भलीभाँति यथावत् ठीक-ठीक स्पष्ट होने पर उस संदर्भ में पूरी सच्चाई खुल जाती है, और उस संदर्भ में सारा का सारा भ्रम, सारा का सारा संशय, सारा का सारा संदेह, सारी की सारी अज्ञानता हट जाती है|
निगरानी को ही साधना है,
बाँकी जो जहाँ है, अपनी जगह पर है ही,
निगरानी भलीभाँति सध गयी तो धर्म साधना पूरी है |

****

01 November 2020

सामान्यतः तुम्हारी दृष्टि की गति लगभग ३ लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड है,
अर्थात् प्रकाश की चाल के समानुपात मे ही तुम देख रहे हो, और तुम्हारी श्रवण की गति लगभग ३३२ मी• प्रति सेकेण्ड है,
अर्थात् तुम्हारे सुनने की गति ध्वनि की चाल के समानुपात मे ही है,
तुम्हारे देखने व सुनने की गति तुम्हारे सामान्य व्यवहार के अनुकूल है,
इतनी गति सामान्य जनों के लिए व्यावहारिक संतुलन के निमित्त पर्याप्त है, पर इससे तुम्हारी जीने की औपचारिक पूर्ति भर ही हो सकती है, पर जीवन की मूल समस्या का पूर्णतः सम्यक् निराकरण नही हो सकता, भ्रम, संशय, अज्ञानता, दुख का पूर्णतः, सम्यक् निवारण नहीं हो सकता,
सम्यक् अर्थ में यथार्थ स्पष्टता में ही जीवन की मूल समस्या का पूर्ण सम्यक् समाधान है,
सीधे ही अंतराल रहित दर्शन मात्र के निमित्त जो गति है, वह अपरिमित है,
जो तुम्हारी कल्पना शक्ति से परे है, तुम्हारी तुलनात्मक बुद्धि से परे है,
आरोपित दृष्टा भाव में जो तुम्हारी देखने की रफ्तार लगभग ३ लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड है, यह दर्शन मात्र की तुलना में नगण्य है,
सामान्यतः,तुम्हारी उपस्थित होने की स्फूर्ति व गति बहुत ही मंद है, इसलिए हर बार तथ्यगत् दर्शन से तुम चूक जाते हो,
पर इससे हतोत्साहित नही होना,
सम्यक् अभ्यास से क्या नही संभव है,
सम्यक् अभ्यास के संदर्भ में जगदीश्वरम् द्वारा पूर्व में भलीभाँति युक्ति युक्त ढंग से
संकेतार्थ सम्यक् निर्देश किया गया है,
उससे अभिप्रेरित हो, भलीभाँति आचरण में उतारो,
मात्र सही से सही ओर समर्पित रहो,
भलीभाँति सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त, पूरी सत्यता पूर्वक, पूरे निष्ठापूर्वक, पूरी ईमानदारी से उत्तरोत्तर अभ्यास के निमित्त पूरी तरह से जुट जाओ,
सामान्यतः प्रकाश की गति से अधिक की गति तुम्हारी दृष्टि इंद्रिय के सहन व वहन करने की क्षमता से बाहर है,
तुम इतनी ही गति से देख सकते हो, सुन सकते हो,
जिसे सामान्यतः तुम सहन व वहन करने में समर्थ हो,
उत्तरोत्तर जितनी ही तुम्हारी सहन व वहन करने की क्षमता बढ़ेगी,
उत्तरोत्तर उतनी ही तुम्हारी देखने, सुनने इत्यादि ऐंद्रिक
व्यवहार में स्फूर्ति, गति व संतुलन भी बढ़ता जाएगा,
आरोपित दृष्टा भाव में देखने में कदापि
तथ्य की तथ्यता स्पष्ट नही हो सकती है,
नासाग्र की ठीक सीध में > श्वास के संदर्भ में तथ्यगत् ज्ञान की ठीक सीध की दिशा में
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे, कम से कम समय में > निकट से निकट वर्तमान में दिखने के निमित्त भलीभाँति संभलकर उपस्थित होने से
श्रवण,ग्रहण,
दर्शन, संकल्प, निर्णय, निश्चय इत्यादि सम्पूर्ण व्यवहार में
उत्तरोत्तर कुशलता, नियंत्रण,
स्फूर्ति, गति व संतुलन भी बढता जाएगा,
और उत्तरोत्तर सहन व वहन करने की क्षमता भी बढ़ती जाएगी,
सहज सामान्य श्वास की गति के अनुसार ही, सहज सामान्य श्वास की प्रकृति के अनुसार,
सहज सामान्य श्वास के संदर्भ में भलीभाँति ठीक-ठीक यथावत् स्पष्टता के निमित्त भलीभाँति संभलकर उपस्थित होना है,
श्वास की प्रकृति के अनुसार श्वास के संदर्भ में वर्तमान का मापदंड
पूरा करना आवश्यक है,
तभी द्वितीय ध्यान में प्रवेश करने की भूमिका बनेगी,
मात्र बस दिखने के निमित्त समय व दूरी का अंतराल नही रह जाता,
है, समय व दूरी का अंतराल नही होने से सीधे ही सम्यक् अर्थ में यथार्थ दर्शन स्पष्ट है,
सम्यक् यथार्थ दर्शन में ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है,
और पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में किसी भी अर्थ में भ्रम संशय, अज्ञानता,
दुख का कोई अर्थ ही नही,
पूर्ण सम्यक् समाधान है,
सम्यक् यथार्थ दर्शन तभी स्पष्ट रहता है,

जब भलीभाँति सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त
सम्यक् अर्थ में पूर्ण समर्पण होता है,,उससे पहले कदापि नहीं,
इसलिए
लोक प्रचलित सभी धर्म, सभी धर्म शास्त्र व सभी धर्मों के आराध्यों
से आनिमित्त हो,मात्र सही से सही ओर ही,
,पूरी तरह से शरणागत रहो, पूरी तरह से समर्पित
रहो |

02 November 2020

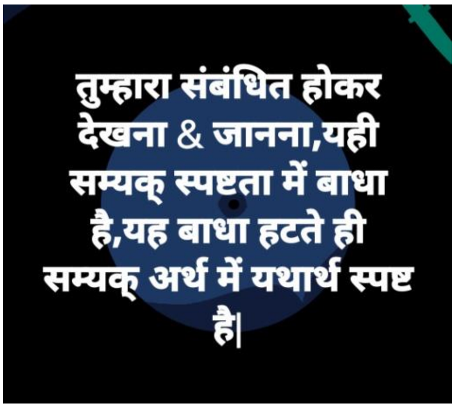

02 November 2020

02 November 2020

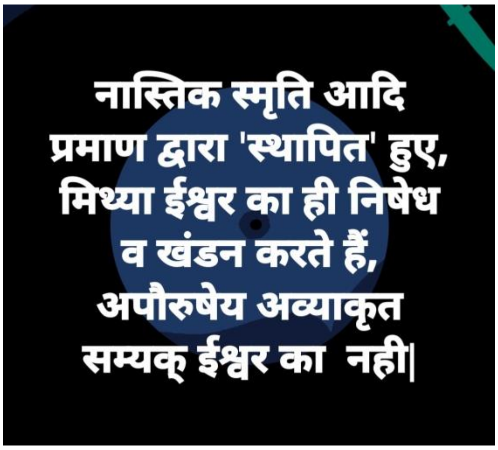

03 November 2020

03 November 2020

अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार
निमित्त कारण
के निमित्त कारण के अर्थ में उपस्थित भर होने की भूमिका पर ही उपादान कारण की उपादान कारण के अर्थ में भूमिका है,
निमित्त कारण के अर्थ में सत्यता स्पष्ट न होने से ही अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित किए हुए संबंधित ईश्वर विशेष की अवधारणा उत्पन्न हुई, इस अवधारणा को मानने वाले निश्चित ही दिग्भ्रमित हैं,
पर जो कहते हैं, ईश्वर नही है, वे भी दिग्भ्रमित हैं,
क्योंकि ईश्वर का शुद्ध स्वरूप मूल निमित्त कारण (प्रधान निमित्त कारण) की ओर ही संकेत करता है,
बौद्ध व जैन धर्मावलंबी मूलतः अनीश्वरवादी हैं, पर दोनों का अनीश्वरवाद अलग-अलग दृष्टिकोण से है, बौद्ध तो सीधे तौर पर निमित्त कारण की भूमिका को स्वीकार नही करते, इसलिए वे सीधे तौर पर अनीश्वरवादी होने के साथ-साथ
अनात्म वादी भी हैं,
बौद्ध मत में प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धांत में निमित्त कारण की भूमिका के बिना ही
उपादान कारण की भूमिका को स्वीकार किया गया है, जो ऋत् असंगत है,
बीतने पर उत्पन्न होने के लिए जो दबाव उत्पन्न होता है, उस दबाव में निमित्त की उपस्थिति भर की भूमिका अवश्य है,
बिना इसके न बीतना है,न उत्पन्न होना है,
निमित्त के बस उपस्थित भर होने से घटना घट जाती है, बिना उपस्थिति के जड़ पदार्थ में कोई क्रियात्मक गतिविधि नही होती,यह एक महान आश्चर्य है,
जैन (जगत के कारण, कर्म व कर्मफल में) मूल निमित्त कारण को तो स्वीकार नही करते हैं, पर अष्टांग निमित्त ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत् निमित्त कारण को अवश्य स्वीकार करते हैं,
इसलिए वे व्यक्तिगत् आत्म वादी हैं,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म में मूल निमित्त कारण की भूमिका स्वीकार है, अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म में
निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की भूमिका स्वीकार है,
जहाँ सम्यक् ईश्वर का संकेत प्रधान निमित्त कारण की भूमिका में, और अंतर्गत पुरुष का संकेत अंतर्गत निमित्त कारण की भूमिका में है,
सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाले आज नाना तरह की विकृति को प्राप्त
लोक प्रचलित हिन्दू धर्म की स्थिति बहुत ही दयनीय है,
अपौरुषेय < (ऋत् अभिप्रेरित) सम्यक् प्रमाण स्पष्ट न होने से उपलब्ध श्रुति व स्मृति प्रमाण को मानने की ही विवशता है,
जहाँ विकृति स्वरूप अध्यारोपित कृत्रिमता की स्थापना स्वाभाविक है,
विकृति स्वरूप नाना सापेक्षिक < संबंधित सिद्धांतों, कर्मकांडों,उपासना & साधना पद्धतियों आदि को मानने की ही विवशता है,सम्यक् निष्ठा का, सम्यक उपासना & सम्यक् साधना का सम्यक् समर्पण का सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही है, जो मूल अपौरुषेय सनातन धर्म में है,
यद्यपि निमित्त कारण से तात्पर्य
अपेक्षित दृष्टिकोण द्वारा < (अज्ञ मनुष्यों द्वारा) स्थापित ईश्वर विशेष के मिथ्या आरोप से नही है,

जैसा कि प्रचलित स्थापित धर्मों में है,
निमित्त कारण की दिशा में सम्यक् अर्थ में ईश्वर एक संकेत है,
सम्यक् अर्थ में ईश्वर का संकेत अव्याकृत है, मूर्ख ही स्वार्थ प्रेरित हो, सापेक्षिक <संबंधित व्याकृत व्याख्या कर, सापेक्ष < संबंधित नाना प्रतीकों, प्रतिमाओं की स्थापना कर, मिथ्या दृष्टि के मिथ्या ईश्वर की स्थापना करते हैं,
स्मृति द्वारा जो कुछ भी स्थापित है, कदापि अपौरुषेय नही है,
(सम्यक् ईश्वर किसी भी स्थापित हुए, मिथ्या ईश्वर से, लोकाचार के औपचारिक मिथ्या ईश्वर से, गीताआदि स्मृति द्वारा प्रमाणित से परे पवित्र है, सम्यक् ईश्वर (का) संकल्प^ मानसिक संकल्प नही, वरन ऋत् संकल्प है..)......
नास्तिक श्रुति, स्मृति आदि शब्द प्रमाण द्वारा 'स्थापित' हुए, मिथ्या ईश्वर का ही निषेध व खंडन करते हैं, अपौरुषेय अव्याकृत सम्यक् ईश्वर का कदापि नही|
ईश्वर कहना भी उपर्युक्त नही,
इससे भी परे पवित्र...पवित्र...पवित्र....
पवित्रतम्
अंतरहित मात्र सही ओर ही समर्पित रहो...

04 November 2020

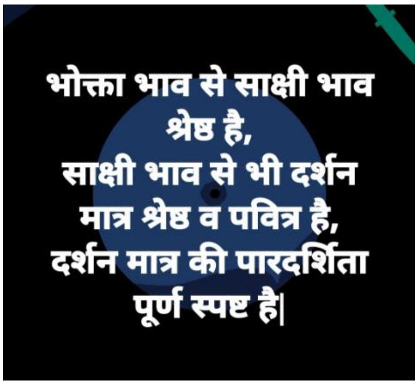

04 November 2020

साक्षी पूर्वक देखने व दर्शन मात्र में
दर्शन मात्र ही सीधे सहज उपस्थित है,
साक्षी पूर्वक देखने में दबाव है,
साक्षी पूर्वक देखना सहज सीधे उपस्थित नही है, अलग से स्थापित करना पड़ता है,
जहाँ भी अलग से स्थापित करना पड़ता है, वहाँ अध्यारोपित कृत्रिमता की ही स्थापना होती है,
जहाँ तथ्य की यथावत् तथ्यता से चूकना होता है, यथार्थतः सच्चाई से चूकना होता है,
बस दर्शन मात्र के निमित्त उपस्थिति भर
हो जाए, तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् स्पष्ट है,
अपनी तरफ से अलग से कोई नया आरंभ नही करना है, न कुछ अलग से स्थापित करना है, न ही किसी को उसकी जगह से हटाना है,
बस सीधे ही जो जहाँ है, जैसा है, उसे वहाँ पर यथावत् वैसा ही दिखने के निमित्त बस उपस्थित भर रहना है,
बस स्थिरतापूर्वक उपस्थिति पूर्ण होते ही उसकी निभ्रांततः यथावत् सत्यता स्पष्ट है,
साक्षी भाव में देखने की बात अपेक्षित दार्शनिक दृष्टिकोण से है, सहजता में नही,
साक्षी भाव सहजता से सीधे उपस्थित नही है,
बल्कि अलग से स्थापित है,
दर्शन सीधे ही हो रहा है, ज्ञान (मालूम होना)सीधे ही हो रहा है,उसे अलग से स्थापित नही करना पड़ता, सीधे सहज ही उपस्थित है, जो सहज उपस्थित है, वहीं सहजता से स्थिरता पूर्वक उपस्थिति संभव है,
दबाव स्वरूप अध्यारोपित कृत्रिमता में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति कदापि संभव नही, वहाँ से गिरना स्वाभाविक है,
(इसलिए दार्शनिकों के सापेक्षिक जाल से सावधान रहो,)
पूरी निष्पक्षता के साथ विवेक पूर्वक भलीभाँति खोज करो, कि क्या सहज में उपस्थित है, और क्या कृत्रिम् है, (अर्थात् क्या अलग से आरोपित है, स्थापित है,)

जो सीधे सहज में उपस्थित है, बस वहीं स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना है,
वहाँ भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थिति
पूरी होने पर वहाँ पर भी जो सूक्ष्म स्तर की कृत्रिमता छिपी हुई है, (जो सामान्यतः
स्थूल दृष्टि में दिखने में नही आती है,)
वह भलीभाँति दिखने में आ जाती है,
और साथ ही पहले की अपेक्षा जो और सीधे सहज उपस्थित है, वह भी भलीभाँति दिखता है,
यहाँ पर भी उस सूक्ष्म कृत्रिमता से अनपेक्ष होना है, और जो और भी सीधे सहज उपस्थित है,
वहाँ भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना है,
इस तरह उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म कृत्रिमता से अनपेक्ष होते जाना है, और उत्तरोत्तर सीधे से सीधे, सहज से सहज जो उपस्थित है, उत्तरोत्तर वहाँ भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थित होते जाना है,
जब तक कि जो सबसे सीधे, जो सबसे सहज उपस्थित है, स्पष्ट न हो जाए,
तब तक....
भोक्ता भाव से साक्षी भाव श्रेष्ठ है, साक्षी भाव से भी दर्शन मात्र श्रेष्ठ व पवित्र है,
दर्शन मात्र में साक्षी भाव का सूक्ष्म आरोप भी नही रह जाता,
दर्शन मात्र में पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
कोई दिग्भ्रम नही, निभ्रांत यथार्थ स्पष्टता...

05 November 2020

किसी भी संदर्भ में जो जैसा है, वह ठीक वैसा ही जब भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात होता है, तब उस संदर्भ में बस ज्ञात भर होना ही शेष रह जाता है, और तभी उस संदर्भ की यथार्थतः सत्यता स्पष्ट होती है|
इंद्रियों का उनके विषयों से जब स्पर्श होता है, तब उस समय बहुत ही संभले हुए रहना है, यह घटना बहुत ही कम समय के अंतराल में बहुत ही सूक्ष्म स्तर में घटित होती है,
अगर भलीभाँति संभलना नही हुआ,
निश्चित ही उस स्पर्श के दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
स्पर्श होने पर ही सुखद अथवा दुःखद अनुभूति होती है,
सुखद अनुभूति होने पर राग उत्पन्न होता है, मोह उत्पन्न होता है,
आसक्ति उत्पन्न होती है, और दुःखद अनुभूति होने पर द्वेष उत्पन्न होता है|
जटिल जन सीधे ही दर्शन मात्र के निमित्त नही हो सकते, इसलिए वे पृथक दृष्टा भाव से पहले लिप्तता भंग करे,
फिर दर्शन मात्र के निमित्त हो जाए,
दर्शनमात्र में उपस्थिति भर का निमित्त
पूरा होते ही आरोपित दृष्टा भाव की कारण सहित सत्यता खुल जाती है,
दृष्टा भाव का आरोप भंग हो जाता है,
सहज ही जो उपस्थित है, स्पष्ट हो जाता है, जो सरल हैं, वे सीधे ही दर्शन मात्र के निमित्त होते हैं|
क्रमशः

06 November 2020

06 November 2020

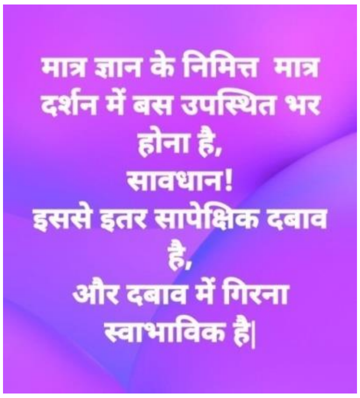

07 November 2020

यह जो कुछ भी आभास हो रहा है,
इंद्रिय व्यवहार में यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है, यह जो कुछ भी अनुभूति हो रही है, सुखद ,अथवा दुःखद,
बस अंततः ज्ञान मात्र ही रह जाए,
न सुखद रह जाए, न दुःखद, बस ज्ञान ही शेष रह जाए, पूर्ववत् कुछ भी न रह जाए,
विशुद्धतः ज्ञान ही बस शेष रह जाए,
विशुद्धतःज्ञान मात्र के शेष रहने पर ही शान्ति है, समाधान है, सत्यता है,
परितृप्ति है, परिनिवृत्ति है,
उससे पहले न शान्ति है, न समाधान है,
न सत्यता स्पष्ट है, न परितृप्ति है, और न ही परिनिवृत्ति है,
पूर्ववत् आभास के रहते भला कहाँ शान्ति हो सकती है, कहाँ समाधान हो सकता है,
कहाँ सत्य स्पष्ट हो सकता है,
यह जो कुछ भी आभास हो रहा है, यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है,
इसके प्रति इस प्रकार से पूर्णतः यथा सजग रहो,
ताकि कुछ भी पूर्ववत् प्रतीति में न रह जाए, विशुद्धतः बस केवल ज्ञात भर होना ही शेष रह जाए, और कुछ भी नही, जब ऐसा हो जाएगा,
तभी निभ्रांततः यथार्थ सत्यता स्पष्ट है, उससे पहले नही,
अज्ञान अंधकार में भटकना घोर दुःखद पूर्ण है|

08 November 2020

समय बीतता ही जा रहा है,
आयु बीतती ही जा रही है,
जीवन शेष रहते अगर अज्ञानता का नाश नही हुआ,
तो निश्चित ही महाहानि है,
अज्ञानता में मृत्यु होने पर,
फिर अज्ञानता में ही अगला जन्म होना,
सनातन ऋत् नियम के अनुसार सुनिश्चित है,
जब तक अज्ञानता का नाश नही हो जाता,
तब तक बार-बार सत्यता से वंचित दुःखद अज्ञानता में ही जन्म-मृत्यु का चक्र जारी है,
सत्य से वंचित हो, अज्ञानता में रहना घोर दुःखद पूर्ण है,
सम्यक् अर्थ में सत्य स्पष्ट हो, यह बहुत ही आवश्यक (जरूरी) है,
भ्रम, संशय, अज्ञानता, दुःख, क्लेश का नाश हो,

यह बहुत ही आवश्यक है|
लोक में ऋत् असंगत धर्मों (मतों) का काफी प्रचार-प्रसार है,
ऋत् असंगत धारणा से बचे रहो,
उदाहरण के लिए जैसे एक ही जन्म की धारणा, उस एक ही जन्म के कर्म व विश्वास के आधार पर सबका एक ही साथ, एक ही बार में सदा के लिए स्वर्ग, सदा के लिए नर्क का न्याय मानना,
ऐसी मूर्खतापूर्ण मान्यताओं से निश्चित ही ऋत् प्रेरित होने में बाधा है,
कोई मूर्ख अगर आसमान को तंबू की तरह तना हुआ
मानता हो,
तो उसकी इस मूर्खतापूर्ण मान्यता से क्या आसमान तंबू हो जाएगा,
बल्कि वही अपनी अज्ञतापूर्ण, मूर्खतापूर्ण मान्यता में दिग्भ्रमित है,
मूर्खतापूर्ण ऋत् असंगत धर्मों से बचे रहो,
अज्ञ मनुष्यों द्वारा आरोपित > स्थापित कृत्रिम धर्मों से अनिमित्त हो,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन ऋत् धर्म की खोज में रहो|
प्रचलित हिन्दू,धर्म (प्रचलित वैदिक, पौराणिक वैष्णव, शैव, शाक्त आदि)
को ही सनातन धर्म मानकर सही अर्थ में सनातन धर्म की खोज से वंचित मत रहो,
सनातन धर्म मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव का धर्म है,यह प्रत्येक मनुष्य के लिए बराबर है, यह किसी,संप्रदाय विशेष, पंथ विशेष के जातिगत् अहंकार व प्रतिष्ठा का विषय नही है, जो सनातन धर्म के नाम पर जातिगत् अहंकार पालता है, निश्चित ही उसका पतन है,
सनातन धर्म में हर मनुष्य का जन्म सिद्ध, स्वभाव सिद्ध अधिकार है,
क्योकि हर कोई सहज स्वभाव से ज्ञान मात्र के निमित्त दर्शन मात्र में उपस्थित भर की भूमिका में ही है, इसमें कोई मतभेद नही, विरोधाभास नही, यही संकेतार्थ अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म है|
भीतर से कोई भी पुरुष लिंग अथवा स्त्री लिंग में नही है,
भीतर से हर कोई ज्ञान मात्र के निमित्त है,
,लैंगिक दृष्टिकोण से पुरुष व स्त्री होना संस्कारगत् है, संस्कार के वशीभूत ही पुरुष व स्त्री शरीर का जन्म होता है,
किसी पुरुष का किसी और जन्म में स्त्री व किसी स्त्री का किसी और जन्म में पुरुष की योनि में जन्म लेना संस्कारगत् है,
मृत्यु के समय जैसी चैतसिक (चित्त संबंधित) वृत्ति होती है, उसी वृत्ति के अनुसार अगले योनि का निर्धारण होता है,
सनातन ऋत् धर्म किसी के भी
(लोक दृष्टि में जीव कोटि अथवा ईश्वर कोटि) द्वारा स्थापित नही है, सनातन ऋत् धर्म पूर्णतः अपौरुषेय है,
किसी व्यक्ति विशेष से नही,
वरन अंत रहित सही-सही ओर से है,
अल्पज्ञ पुरुष (लोक दृष्टि में जीव कोटि) की भूमिका अविद्या के वशीभूत,
आरोपित कर्ता भाव के वशीभूत है,
और सर्वज्ञ पुरुष (लोक दृष्टि में ईश्वर कोटि) की भूमिका निमित्त कारण की है,
ज्ञान मात्र स्पष्टता में निमित्त (पुरुष) की भूमिका मात्र निमित्त अर्थ में है,
यह निमित्त (पुरुष) की पूर्णतः शुद्धि है,
जो किसी भी स्थिति विशेष से, अवस्था विशेष से, पद विशेष से, कोटि विशेष से, तुलना से परे व पवित्र है,
अंत रहित सही से सही ओर से ही सम्यक् सद्धर्म का अनुशासन है,
व्यवस्था है, जहाँ व्यक्ति की भूमिका निमित्त मात्र की है,
सनातन ऋत् नियम के अनुशासन में ही,
सनातन ऋत् नियम के अनुसार >
पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी अंतरिक्ष, पृथ्वी, सूर्य, नक्षत्र आदि की अनुशासनबद्ध संतुलित व्यवस्था है,
सम्यक् न्याय अनुसार > ऋत् नियम के अनुसार ही कर्म -फल, पुनर्जन्म, देवलोक < स्वर्ग, नर्क व मोक्ष के सिद्धांत से ऋत् सम्मत धर्म का परिचय है,
ऋत् सम्मत धर्म का ही आश्रय रखो,
ऋत् सम्मत धर्म के आश्रय में ही ऋत् अभिप्रेरित हो सम्यक् अनुसंधान के लिए सम्यक् मार्ग स्पष्ट हो सकता,
ऋत् असम्मत धारणा के परिसर में जिसका जन्म हुआ,
वह दया का पात्र है,
और वह भी जिसका जन्म तो ऋत् सम्मत धर्म के परिसर में हुआ,
पर ऋत् प्रेरित हो सम्यक् अनुसंधान से वंचित है,
ऋत् प्रेरित हो सम्यक् अनुसंधान से वंचित होने से वह भी दया का पात्र है |
सबका भला हो,

सभी को सम्यक् संप्रज्ञान स्पष्ट हो, सभी को ऋत् ज्ञान स्पष्ट हो,
सभी को सही-सही मार्ग स्पष्ट हो,
कोई भी दिग्भ्रमित न रहे, कोई भी संशय में, संदेह में, दुविधा में, भ्रान्ति में, अज्ञान में, दुःख में, क्लेश में न रहे,
सभी का सही अर्थ में कल्याण हो,
सम्पूर्ण लोकों में परस्पर मंगल मैत्री भावना का विस्तार हो,
परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, बैर भाव का अंत हो,
सज्जन हो,या दुष्ट हो, देव हो, या असुर हो,
आस्तिक हो,या नास्तिक हो, विश्वासी हो,या अविश्वासी हो,
मोमिन हो,या काफिर हो, सबको सही-सही मार्ग स्पष्ट हो,
सम्यक् यथार्थ स्पष्टता से कोई भी वंचित न हो,
सभी का सही-सही अर्थ में कल्याण हो|

08 November2020

सत्यनिष्ठ कुलीन परिवार की नारियाँ स्वप्न में भी पर पुरुष का स्मरण नही करती, स्वप्न में भी निष्ठा खंडित नही होती,
संयम में जो बल है, वह भला स्वछंद होने में कहाँ..
निश्चित ही सतियों की अव्यभिचारिणी निष्ठा में जो बल है,
वह देवलोक के देवियों के दिव्य बल से भी कहीं अधिक बढ़कर है,
और इससे भी अपरिमित बढ़कर
बल सम्यक् निष्ठा का है,
क्योंकि सम्यक् निष्ठा में इतनी अधिक पवित्रता है, कि बस केवल विशुद्धतः ज्ञात भर होना ही शेष स्पष्ट है, जरा सा भी संबंधित आरोप नही,
आरोपित होने के दोष से पूर्णतः अभिमुक्त... पूर्णतः पवित्रतम्....
(पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता..... जरा सी भी सापेक्षिक मलिनता नही... पूर्णतः पवित्र...)
,इसलिए पूर्ण सम्यक् निष्ठा में जो बल है, वह अपरिमित है,
उस अपरिमित बल की तुलना में सभी घोषित अवतारों, ऋषि, मुनि, संत, पैगम्बरों,देवताओं, देवियों का सम्मिलित बल भी नगण्य है....
सम्यक् निष्ठा में नासाग्र की ठीक सीध से दृष्टि जरा भी इतर (इधर-उधर) नही होती, जरा भी इधर-उधर ताँक-झाँक नही, जरा सी भी टेढ़ी नजर नही,
यथा सहजता पूर्वक बिल्कुल सीधी दृष्टि...
पूर्ण दृष्टि संयम...
(दृष्टि नासाग्र की ठीक सीध की दिशा में ठीक ४५ अंश के कोण में भलीभाँति यथा सहजता पूर्वक, यथा सजगता पूर्वक भलीभाँति स्थिर रहती है, ठीक ४५ अंश के कोण से जरा भी इतर नही...)
पूरी तरह से
यथा सहजता पूर्वक यथा सजगता पूर्वक दृष्टि नासाग्र की ठीक सीध की दिशा में ही भलीभाँति स्थिर रहती है...
जरा भी सापेक्षिक नही......
जरा भी वक्र नही.....
जरा भी खंडित नही....
ऐसी स्थिति में ही पूरा बल है, पूरी ऊर्जा है, पूरा ओज है, पूरी जीवंतता है, पूरी ताजगी है, पूरी चैतन्यता है, पूरा होश है, पूरी पवित्रता है, पूरी शुद्धि है, पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है..
नासाग्र की ठीक सीध की दिशा में मात्र ज्ञान अर्थात् बस केवल ज्ञात भर होना ही शेष स्पष्ट है....
न कोई नाम, न कोई रूप, न कोई संज्ञा, न कोई सर्वनाम, न कोई विशेषण, न कोई स्मरण, न कोई वृत्ति, न कोई आरोपित भावना, न कोई आरोपित दृष्टिकोण...
विशुद्धतः बस केवल ज्ञात होना ही शेष स्पष्ट है,
बस केवल ज्ञात भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में किसी भी अर्थ में कोई भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई अज्ञान नही, कोई दुख नही...
पूर्ण सम्यक् समाधान स्पष्ट है.....
(आन्तरिक पवित्रता का बल सम्यक् दिशा में ध्यान >ज्ञान में स्थिर होने के लिए आधारीय बल है...)
क्रमशः

09 November 2020

जिस कोण से तुम्हें जैसा दिखाई दे रहा है, उसका वैसा ही दिखाई देना उस कोण विशेष के मापदंड के अनुसार स्वभावतः सुनिश्चित है,
सामान्यतया लोक में हर कोई किसी न किसी कोण विशेष से देखने के लिए,जानने के लिए आबद्ध है,
और लोक में सामान्यतः हर कोई अपने अपने कोण विशेष की सीमा से ही पूर्णतः सत्य देखना चाहता है,
,पूर्णतः सत्य जानना चाहता है,
जो कदापि संभव नही है,
अगर पूर्णतः सत्य दर्शन स्पष्ट चाहिए,
तो तुम्हें सापेक्षिक वर्तुल के किसी भी कोण विशेष की आबद्धता से मुक्त होना आवश्यक है,
किसी भी दृष्टि विशेष से अनपेक्ष
बस दर्शन मात्र के निमित्त ही निभ्रान्ततः पूर्ण सत्य दर्शन की परिस्पष्टता है,
उदाहरण के लिए किसी कृष्ण भक्त का नजरिया (दृष्टिकोण) भी किसी एक कोण विशेष से आबद्ध है,
और किसी वेदान्ती का नजरिया (दृष्टिकोण)भी किसी एक कोण विशेष से आबद्ध है,
आस्तिक का दृष्टिकोण भी किसी एक कोण विशेष से आबद्ध है, और एक नास्तिक का दृष्टिकोण भी किसी एक कोण विशेष से आबद्ध है,
और जो भी किसी कोण विशेष से आबद्ध है,वह पूर्ण सत्य स्पष्टता से वंचित है,
दिग्भ्रम में है, धोखे में है,संशय में है, संदेह में है, दुविधा में है, अज्ञानता में है, दुःख में है, बंधन में है...
सापेक्षिक वर्तुल के किसी भी कोण से
उस सापेक्षिक वर्तुल के आर-पार का ज्ञान आर-पार का दर्शन कदापि स्पष्ट नही हो सकता,
सापेक्षिक वर्तुल की पूर्ण सार सत्यता उस सापेक्षिक वर्तुल के उसके केन्द्र में है,
न कि उस सापेक्षिक वर्तुल के किसी कोण विशेष की सीमा में,
दर्शन मात्र में ही पूर्ण केन्द्रीय दर्शन की सत्यता स्पष्ट है,
जहाँ एक ही साथ सापेक्षिक वर्तुल के हर कोण की पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट है,
कोई दिग्भ्रम नही,कोई संदेह नही, कोई संशय नही, कोई अज्ञानता नही,
सभी सीमाओं के आर-पार की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता .....
जो यथार्थ सत्य स्पष्टता में जीना चाहता है,
किसी भ्रान्ति में नही, उसी के लिए यह सार संक्षिप्त सम्यक् संकेतार्थ उपदेश है,
फिर जो किसी अंधी भावना के स्वसम्मोहनवश भ्रान्ति में ही जीना चाहता है, तो वह भ्रान्ति में बना रहे ......

10 November 2020

मूल निमित्त कारण (जिसे अध्यारोपित दृष्टि में ईश्वर कहा जाता है,) के स्वरुप के अनुसार ही निमित्त (जिसे लोक दृष्टि में पुरुष कहा जाता है,) का स्वरूप है,
निमित्त कारण (ईश्वर) में साक्षी का आरोप होने से जो दबाव बनता है, उस दबाव में ही सृष्टि संबंधित व्यवहार संचालित होता है,
भोक्ता होने से साक्षी होना परे है,शुद्ध है, पवित्र है, पर साक्षी होना भी आरोपित है, स्थापित है,
पूर्णतः सहज उपस्थित नही,
पूर्णतः विशुद्धतम् नही,
पूर्णतः सहज उपस्थित में,
पूर्ण विशुद्धतम् में संबंधित सृष्टि व्यवहार कदापि संभव नही,
दृष्टा होने से ही, साक्षी होने से ही संबंधित सृष्टि व्यवहार संभव है,
सृष्टि व सृष्टिकर्ता के होने का आधार साक्षी भाव ही है,
इसलिए अध्यारोपित शास्त्रों में ईश्वर का परिचय ही साक्षी होने से है,
न भोक्ता न साक्षी, निरुपाधिक होने पर ही निमित्त का निमित्त अर्थ में पूर्णतः विशुद्धि है, निरुपाधिक होने पर ही निमित्त का पूर्णतः विशुद्ध स्वरूप है,
जो कुछ भी परिणाम स्वरूप में घटित हो रहा है,
उसके पीछे साक्षी पूर्वक कर्ता का दबाव ही है,
उठना,बैठना,चलना,फिरना इत्यादि हर व्यवहार के मूल दृष्टा पूर्वक < साक्षी पूर्वक उपस्थिति का आरोपित कर्ता भाव का ही दबाव है,

तथ्य अपनी तथ्यता में यथावत् है, तथ्य की तरफ से कोई आरोप नही है, न भोक्ता का, न साक्षी का, तथ्य की तरफ से कोई उपाधि नही, सारा आरोप, सारी उपाधि आरोपित दृष्टिकोण का है,
तथ्य की तरफ से न इस तरह से सृष्टि की दृष्टि है,
और न ही ऐसे किसी सृष्टि कर्ता ईश्वर का होना है, जैसा कि अज्ञ लोकदृष्टि में & लोकाचार में प्रचलित है,
अज्ञ मनुष्यों ने मनुष्य के स्वरूप की तुलना में मिथ्या ईश्वर की स्थापना कर सही में जो (अपौरुषेय सम्यक् ईश्वर) है, उसकी अवमानना ही की है, महिमा नही,
यहाँ अपौरुषेय सम्यक् ईश्वर कहना बस संकेत भर है, अंतरहित सही ओर के लिए
संकेत को बस संकेत अर्थ में ही ग्रहण करो, ध्यान रहे, संकेत लक्ष्य नही है,लक्ष्य की ओर बस संकेत भर है .....
तथ्यतः दर्शन मात्र के निमित्त जब स्थिरतापूर्वक उपस्थिति पूर्ण होती है,
तभी तथ्यतः निभ्रांत यथार्थता स्पष्ट है,
उससे पहले तो आरोपित दृष्टि का ही स्वसम्मोहन कारक दिग्भ्रम है, जहाँ भ्रम,संशय, संदेह, दुविधा,अज्ञानता, दुख का होना स्वाभाविक है|

11 November 2020

सम्यक् मार्ग में प्रथम महत्व सम्यक् समर्पण का ही है,
सम्यक् निष्ठा से ही सम्यक् समर्पण का अर्थ है,
सम्यक् समर्पण में अपनी तरफ से कोई अपेक्षित दृष्टिकोण नही बचता, कोई आरोपित दृष्टि नही बचती,
सीधे ही दर्शन मात्र के निमित्त उपस्थिति रहती है,
परम्परागत् अध्यारोपित धर्म शास्त्रों में सम्यक् समर्पण का उपदेश नही है,
वहाँ अपेक्षित आरोपित दृष्टिकोण में समर्पण का उपदेश है, अर्थात् संबंधित समर्पण का उपदेश है,
इसलिए भले ही वहाँ दृष्टा होने का साक्षी होने का उपदेश है,
पर सीधे ही दर्शन मात्र का उपदेश नही है,
सीधे मात्र ज्ञान के निमित्त मात्र दर्शन में बस उपस्थित भर होने का उपदेश नही है,
मात्र सही ओर ही समर्पण हो,
सापेक्षिक दिशा में नही,
मात्र सही ओर ही समर्पण हो, निष्ठा हो,श्रद्धा हो, भक्ति हो,
सम्यक् मार्ग कोई निष्ठा विहीन, समर्पण विहीन शुष्क वैज्ञानिक प्रयोग अथवा अनुसंधान नही है|
क्रमशः

11 November 2020

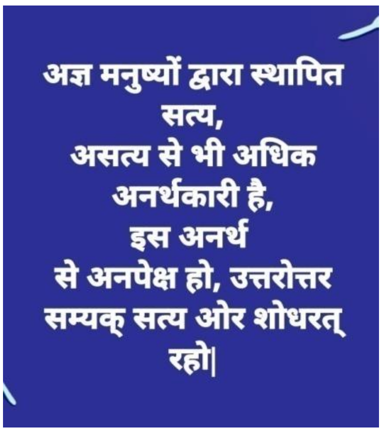

12 November 2020

सावधान!
पूर्व सुनिश्चित परम्परागत् उत्तर से संतुष्ट मत हो जाना,
उत्तर पाने की शीध्रता मत करना,

परम्परा प्राप्त उत्तर पाने की अपेक्षा
उत्तरोत्तर सही से सही प्रश्न की खोज जारी रखना|
सही-सही प्रश्न में आने की देरी भर है,
समाधान स्पष्ट है,
ध्यान रहे,सापेक्षिक प्रश्न का उत्तर सापेक्षिक होता है,
और सम्यक् प्रश्न का उत्तर सम्यक् होता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के शेष रहते,
आरोपित दृष्टि के शेष रहते कदापि सम्यक् प्रश्न स्पष्ट नही हो सकता,
अपेक्षित दृष्टिकोण में संबंधित प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, सम्यक् प्रश्न का नही|
(सामान्यतः जितने भी तुम्हारे संबंधित प्रश्न हैं,
वे यथार्थ में प्रश्न हैं ही नहीं,
बल्कि प्रश्न के अर्थ में तुम्हारे ही
पूर्व सुनिश्चित आरोप हैं,
इसलिए उन सबका अपेक्षित उत्तर
तुम्हारे द्वारा पूर्व सुनिश्चित रहता है,
निश्चित ही इसमें तुम्हें ही धोखा है, तुम अपने ही द्वारा बनाए गए जाल में उलझे हो, तुम्हें यह तुम्हारी बारीक बेईमानी नही दिखती,
जब तुम सम्यक् निष्ठ हो जाओगे,
तब बिल्कुल भी बेईमानी नही रह जाएगी,
तब जो उत्तर होगा, वह तुम्हारे अपेक्षित दृष्टिकोण से नही होगा,
यथार्थ से होगा,)
जीवन की मूल समस्या का समाधान अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते कदापि संभव नही है,
बल्कि सम्यक् निष्ठ हो,सम्यक् प्रश्न के स्पष्ट होने पर है,
इसलिए सम्यक् प्रश्न के अर्थ में सहज संवेदनशील रहो,
पर दुर्भाग्य इस बात का है, कि सामान्यतः तुम्हारे सभी प्रश्न सापेक्षिक वर्तुल के परिधीय स्तर के हैं,
केन्द्रीय स्तर का पूर्ण केन्द्रीय प्रश्न नही है|
ध्यान रहे,
किसी भी सापेक्षिक प्रश्न के उत्तर में समस्या का समाधान न होकर और नयी समस्या का जन्म है, उत्तरोत्तर समस्या का और सापेक्षिक फैलाव है,
सम्यक् प्रश्न ठीक सीधे सहज उपस्थित है,
नासिकाग्र की ठीक सीध में वर्तमान में ......
सम्यक प्रश्न जरा भी अतीत व भविष्य से संबंधित नही है,
अपितु पूरी तरह से वर्तमान का प्रश्न है,
सम्यक् प्रश्न के अर्थ में ही सम्यक् उत्तर है,
पूर्ण सम्यक् समाधान है,
सम्यक् प्रश्न और उसके उत्तर अर्थात् सम्यक् उत्तर के बीच जरा भी फासला नही,
सापेक्षिक < (संबंधित) प्रश्न और उसके उत्तर बीच ही फासला है,
सापेक्षिक < संबंधित प्रश्न और उसके उत्तर के मध्य समय व दूरी का अंतराल है,
इसलिए कभी भी, किसी भी सापेक्षिक < संबंधित प्रश्न का उत्तर सम्यक् समाधान के अर्थ में उत्तर नही होता है,
पर सम्यक प्रश्न व उसके सम्यक उत्तर के मध्य समय व दूरी का अंतराल नही है,
इसलिए जैसे ही सम्यक् प्रश्न स्पष्ट होता है, उसी के सम्यक् >>^ सीधे अर्थ में
उसी समय उसका सम्यक् उत्तर ^ सम्यक् समाधानार्थ स्पष्ट है,
बस सम्यक् प्रश्न स्पष्ट होने की देरी भर है,
पूर्णतः सम्यक् समाधान स्पष्ट है,
फिर कोई भी सापेक्षिक <संबंधित प्रश्न नही बचता, कोई भी संशय नही, संदेह नही, भ्रान्ति नही, दुविधा नही, अज्ञानता नही, दुःख नही बचता|
क्रमशः

13 November 2020

सामान्यतः तुम्हारी खोज अपेक्षित दृष्टिकोण में है,

तुम जो कुछ भी खोज रहे हो, वह एक कोण विशेष की दृष्टि से है,
और जहाँ किसी कोण विशेष की दृष्टि से देखने की बाध्यता है, वहाँ अपेक्षित दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है,
और जहाँ अपेक्षित दृष्टिकोण है,वहीं तुलनात्मक दृष्टि संभव है,
और जहाँ तुलनात्मक दृष्टि है,
वहाँ सम, विषम,उच्च,निम्न आदि, द्वैत-अद्वैत आदि, आत्मा,परमात्मा, ब्रह्म,माया आदि, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार आदि सापेक्षिक द्वंद्व का, सापेक्षिक प्रपंच का होना स्वाभाविक है, वहाँ तथ्यतः यथावत् स्पष्ट होना असंभव है,
जहाँ तथ्यतः यथावत् स्पष्टता नही,
वहाँ दिग्भ्रम (गुमराही) का, भ्रम,संशय,अज्ञान का होना स्वाभाविक है|
किसी एक कोण विशेष से देखने पर अनंत का दर्शन संभव नही,
अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते कदापि यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
परंतु अपेक्षित दृष्टिकोण में खोजने के लिए तुम संस्कार वश विवश हो, < आदतन मजबूर हो,
अपेक्षित< आरोपित दृष्टिकोण के कारण ही तुम्हारा सहज स्वभाव से इतर कृत्रिमता में होने का परिचय है,
अपेक्षित दृष्टिकोण ही तुम्हारी खोज का आधार है, इसी से तुम खोज के लिए प्रेरित होते हो, खोज के लिए प्रवृत्त होते हो,
और यही अपेक्षित दृष्टिकोण यथार्थ सत्य के लिए बाधा है,
बस अपेक्षित दृष्टिकोण से मुक्त होने की देरी भर है, तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट है,
सामान्यतः तुम जो भी देख रहे हो, जैसा भी देख रहे हो, जान रहे हो, वह तुम्हारे अपेक्षित दृष्टिकोण के अनुसार है, तथ्य के अनुसार नही|
तथ्यतः दिखने के निमित्त ही निष्ठा हो, ईमानदारी हो, समर्पण हो,
अपनी तरफ से देखना नही,
अपनी तरफ से देखने में अपेक्षित दृष्टिकोण का स्थापित होना स्वाभाविक है,
इसलिए अपनी तरफ से देखना नही है,
अपितु तथ्यतः दर्शन मात्र (दिखने भर) के निमित्त रहना है|

अलग से कुछ भी निर्मित नही करना है,
अलग से कुछ भी आरोपित नही करना है, अलग से कुछ भी स्थापित नही करना है, अलग से कुछ भी नया आरंभ नही करना है,
अभी वर्तमान में जो जहाँ है , जैसा है,
अनारंभ से ही हर किसी की दृष्टि सहज स्वाभाविक सीध < नासिकाग्र की सीध में ही है,
भले ही वहाँ परिस्पष्टतः भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थिति की पूर्णता नही है,
पर मंद,अस्पष्ट व अपूर्ण ही सही
फिर भी एक सीमा तक स्थिरतापूर्वक उपस्थिति तो है ही, तभी तो उठने,बैठने, चलने, फिरने, सोने, जगने इत्यादि व्यावहारिकता में यथा संतुलन व यथा स्थिति संभव है,
(पर इसमें व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में जीने की औपचारिक पूर्ति भर ही है,
इतना नही कि पूर्ण केन्द्रीय अविचल स्थिति हो.....)
चूँकि अनारंभ से ही हर किसी की दृष्टि सहज स्वाभाविक सीध में है,
इसलिए अलग से नया आरंभ नही करना है,
बस उसी मंद, अस्पष्ट अनारंभिक स्थिरतापूर्वक उपस्थिति को भलीभाँति परिस्पष्टतः पूर्ण करना है|
क्रमशः

14 November 2020

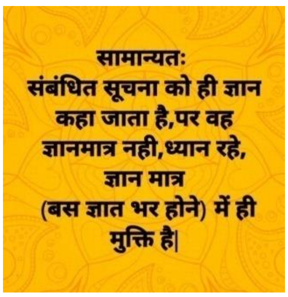

14 November 2020

साक्षी होने के दबाव स्वरूप ही सहज उपस्थित दर्शन मात्र से इतर अलग से दृष्टा भाव का आरोप हुआ है, स्थापना हुई है,
और साक्षी होने के दबाव स्वरूप ही अविद्या के निमित्त तुम्हारा अपने होने के संस्कारित परिचय का आभास होता है,
साक्षी भाव के दबाव स्वरूप ही इदम् अहम्, इदम् मम् का संबंधित आभास होता है,
साक्षी भाव के दबाव स्वरूप ही आत्म भाव भावना उत्पन्न होती है,
साक्षी होने पर जो दबाव बनता है,
उस दबाव में ही संबंधित आरोप होता है, संबंधित स्थापना होती है,
संबंधित कर्ता भाव का जन्म होता है,
यद्यपि सहज उपस्थित दर्शन मात्र में अलग से दृष्टा का आरोप नही है,
पर साक्षी होने के दबाव स्वरूप
अलग से दृष्टा भाव का आरोप होता है,
साक्षी भाव ही अनवरत् प्रवृत्त सनातन भव वंधन का संस्कारित कारण है,
साक्षी के दबाव स्वरूप ही अपर स्वभाव का जन्म होता है,
साक्षी भाव बहुत ही सूक्ष्म वह संस्थापित भाव है, जो सामान्य दृष्टि में सहज उपस्थित लगता है, अकृत्रिम् लगता है, अध्यारोप रहित लगता है,
इसलिए लोकदृष्टि में प्रमाणित अध्यारोपित शास्त्रों में दृष्टा का साक्षी का बहुत ही महिमामंडन किया गया है,
सूक्ष्म साक्षी भाव के दबाव में ही कर्ता भाव में होने के लिए बाध्यता होती है,
साक्षी भाव ही सम्पूर्ण सापेक्षिक प्रपंच की जड़ है,
बिना साक्षी हुए न कोई आरोप हो सकता, न कोई स्थापना हो सकती है,
न कोई कृत्रिमता संभव है,
साक्षी होना ही किसी भी आरोप का आधार है, किसी भी स्थापना का आधार है,
निमित्त मात्र न ज्ञाता है, न दृष्टा है,
न कर्ता है, न साक्षी है,
न भोक्ता है,
निमित्त मात्र बस निमित्त मात्र है, ज्ञात भर होने में < दर्शन भर होने में उपस्थित भर होने में निमित्त भर है,
असल में दिखना सीधे अनंत से ही है,
पर साक्षी होने के दबाव स्वरूप ही अलग से दृष्टा (देखने वाला होने) का जन्म होता है,एक कोण विशेष से देखने का आरंभ होता है|
भले ही पृथक दृष्टा भाव से यंत्रवत् तदात्म्यता भंग होती है,
पर दृष्टा का आरोप दर्शन मात्र के निमित्त होने से ही भंग होता है,
पर दर्शन मात्र के निमित्त होने से ही आरोपित कृत्रिमता भंग होती है|

15 November 2020

हमेशा सच्चाई व ईमानदारी की ही जीत होती है |
यह कदापि मत कहना, कि अभी तो कलियुग है,
बुराई का ही प्रभाव है, बुराई में लगे लोगों की ही मौज है,
सच्चाई का तो जमाना ही नहीं रहा..... ...
यद्यपि बुराईयों का अपना कोई बल नही है, परंतु तुम्हारी यह नकारात्मक धारणा >
नकारात्मक मनोवैज्ञानिक दबाव ही
समाज में बुराई को बल देता है,
और तुम बुराईयों में प्रेरित होते हो,
बुराईयों में अग्रसर होते हो...
तुम्हारी व इस जगत की स्थिति
मनोवैज्ञानिक स्पंदन पर निर्भर है,
अपना दृष्टिकोण, अपनी सोच सकारात्मक रखो...
हर समय शुभ है, हर समय अच्छा है, हर समय सत्य ही
प्रबल है, हर समय सत्यता & न्याय की ही जीत है...
हर समय सत्य निष्ठ, ईमानदार व्यक्ति ही प्रभावी है..

तुम्हारे दृष्टिकोण, तुम्हारे सोच पर ही तुम्हारे भविष्य की दिशा व दशा निर्भर है..
तुम्हारे दृष्टिकोण, तुम्हारी सोच पर ही,
तुम्हारा मनोविज्ञान निर्भर है...
अगर अधिकांश लोग यह सकारात्मक दृष्टिकोण रखें, यह सकारात्मक सोच रखें, कि सच्चाई व ईमानदारी की ही जीत है, बुराई व बेईमानी का कोई बल नही,
सच्चाई व ईमानदारी का ही बल प्रभावी है, सच्चाई व ईमानदारी में जीने से ही
शान्ति, समृद्धि व ऐश्वर्य लाभ है,
तब इस सकारात्मक स्पंदन में निश्चित ही
समाज में अभी से ही सही अर्थ में सत् युग की स्थापना है.....
अगर किसी भी व्यक्ति विशेष को यह लगता हो, कि उसके साथ अच्छा नही हो रहा है,
तो इसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार है, उसका दृष्टिकोण, उसकी सोच की दिशा कहीं न कहीं गलत है.. अपनी सोच, अपना दृष्टिकोण सकारात्मक रखे,
अभी से अच्छा होना शुरु हो जाएगा...

16 November 2020

दर्शन मात्र सहज उपस्थित है,
आरोपित नही है, जो सहज ही उपस्थित है, उसका दबाव नही बनता,
दृष्टा भाव संस्कारगत् है,
आरोपित है, सहज उपस्थित नही है,
दृष्टा भाव में दबाव का होना स्वाभाविक है, जहाँ दबाव है, वहाँ
(दबाव स्वरूप दृष्टि में)तथ्यगत् दर्शन का प्रभावित होना स्वाभाविक है,
ध्यान रहे,
दर्शन मात्र में दबाव नही है, दृष्टा के आरोपित होने पर ही दबाव है,
दर्शन मात्र में तथ्य की तथ्यता यथावत् स्पष्ट है, जहाँ अलग से किसी दृष्टा अथवा किसी साक्षी की कोई जरूरत नही है,
दर्शन मात्र की पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
दर्शन मात्र में अलग से कोई साक्षी नही है, अलग से कोई दृष्टा नही है,
दृष्टा व दृश्य सापेक्षता के दो अंत हैं,
और दर्शन मात्र उस सापेक्षता का केंद्र है,
न दृष्टा, न दृश्य, दर्शन मात्र ही ठीक वर्तमान में है, जहाँ दृष्टा व दृष्य की पूर्ण निभ्रांत सत्यता स्पष्ट है|

17 November 2020

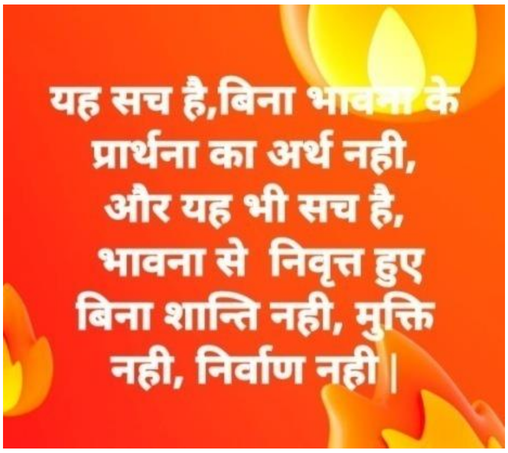

17 November 2020

एक पौराणिक संकेतप्रद कथा है,

प्राचीन काल में पृथु के शासन काल की बात है, उस समय के स्वार्थ प्रेरित मनुष्यों
ने धरती का इतना दोहन कर दिया,
कि धैर्यवती पृथ्वी की सहनशीलता भंग हो गयी, स्वार्थी, मनुष्यों से त्रस्त पृथ्वी गाय का रूप धारण कर उस समय के मनुष्यों के नीति निपुण धर्मी राजा पृथु के पास रोती-विलखती पहुँची,
पृथ्वी की यह दशा देख पृथु का उदार व कारुणिक हृदय अधीर हो उठा,
प्रजा ने पृथु के द्रवित हृदय का कारुणिक क्रंदन सुना, जिससे सामान्य जन समुदाय का हृदय भी द्रवित हो उठा, उन्होने दोहन तुरंत रोक दिया, पृथु के उदार व कारूणिक हृदय के कारण पृथ्वी की रक्षा हुयी, पृथु के नेतृत्व में, पृथ्वी का पुनः जीर्णोधार हुआ, पृथ्वी की नये ढंग से संतुलित रूपरेखा बनी, जिस
कारण पृथु के नाम पर धरती का नाम पृथ्वी पड़ा..
इस कथानक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे लेने की आवश्यकता नही है,
इसका बस सांकेतिक अभियोजनार्थ हीअभीष्ट है,
यह पौराणिक कथा काफी सांकेतिक है, खासकर आज के दौर को देखते हुए, आज के दौर में पृथ्वी का इतना
दोहन हो रहा है, इतना खनिज पदार्थों का दोहन हो रहा है,अब पृथ्वी की सहनशीलता से बात बाहर हो रही है,
आज की जनता स्वार्थ में इस कदर अंधी हो गयी है,
इस कदर संवेदनहीन हो गयी है,
कि पृथ्वी का आर्त क्रंदन
सुनाई नही देता, सुनाई भी कैसे दे, कान में स्वार्थ परता, ढीठ पन की मोहरें जो लगी हैं,
आज के दौर में हरे भरे पेड़ो का इस कदर कटान हो रहा है, खनिज पदार्थ , तेल,व गैस का इस कदर दोहन हो रहा है, अब बात बर्दाश्त से बाहर है,
संतुलन प्रभावित हो रहा है, पर्यावरण प्रभावित है,
पारिस्थितिक संतुलन भंग हो रहा है, प्रदूषण बढ़ रहा है,
पृथ्वी का वातावरण प्रभावित हो रहा है,
एक ग्राम यूरेनियम से इतनी ऊर्जा का उत्पादन हो सकता है, वह बहुत पर्याप्त है, अनावश्यक दोहन की जरूरत ही नही है,
आज बेहतर विकल्प है, जो पहले नही था,
मनुष्य जाति के सामूहिक विनाश के लिए जहाँ सैकड़ों परमाणु बम हैं, हाईड्रोजन बम हैं ,जहरीली गैस हैं, वहीं
पर सकारात्मक अर्थ के लिए ऊर्जा का विकल्प क्यों नहीं, जिससे प्राकृतिक दोहन रुक सके.... सौर ऊर्जा सबसे बेहतर विकल्प है, इसमें और सही अर्थ में सूक्ष्मता से वैज्ञानिक
खोज हो, सौर ऊर्जा का पूर्ण सदुपयोग अभी तक नही हो पाया, इस विकल्प में किसी भी अन्य अर्थ में दुष्परिणाम भी नही है,
side effect भी नही है,
यूरेनियम आदि की अपेक्षा यह और बेहतर व सुरक्षित विकल्प है,
आज जहाँ वैज्ञानिक विकास ने विश्व को एक परिवार की तरह भूमिका में खड़ा कर दिया है,
सकारात्मक दृष्टि खोलने के लिए सम्यक् मार्गदर्शन भी है, जिसमें सही अर्थ में सही दिशा में वैज्ञानिक विकास का बेहतर विकल्प भी है, और स्वच्छ, स्वस्थ, शोषणमुक्त, पारदर्शी समाज का बेहतर' विकल्प भी...

18 November 2020

चूँकि श्वास का भौतिक स्वरूप
क्रिया के संदर्भ में है,
और जहाँ क्रिया है, वहाँ बीतने पर उत्पन्न होने के लिए दबाव है,
ऐसी स्थिति में वहाँ दृष्टि के लिए सुनिश्चित व स्थिर सीध की दिशा निर्धारित नही होती,
एक सुनिश्चित, स्थिर सीध के लिए
तुम्हें श्वास के भौतिक स्वरूप को नही,बल्कि श्वास के ज्ञान
(मालूम होने)को ही लेना है,
क्योंकि ज्ञान (मालूम होना) कोई क्रिया नही है, ज्ञान स्थिर है, इसलिए ज्ञान में बीतना नही,
बीतने पर उत्पन्न होने के लिए दबाव नही है, दबाव स्वरूप मध्य का अंतराल नही है, दबाव होने पर उत्पन्न होना नही है,
ज्ञान अलग से आरोपित नही है, अलग से स्थापित नही है, सहज उपस्थित है,
जो सहज उपस्थित है, उसी सीध में दृष्टि सहजता से स्थिर हो सकती है,
तुम्हें भलीभाँति स्थिरता व भलीभाँति स्पष्टता के लिए
जिस सीध की दिशा में श्वास के आभास का ज्ञान हो रहा है, पता हो रहा है, मालूम हो रहा है,
उसी सीध की दिशा में ही दृष्टि (पूरी निगरानी के साथ) भलीभाँति उपस्थित रहे, भलीभाँति स्थिर रहे,
उस सीध से जरा भी इतर (इधर-उधर)नही होना है....

बाल की नोक के बराबर भी टस से मस नही होना है,
(जरा सी भी नजर हटी, कि दुर्घटना घटी,)
आरंभिक ध्यान की अवस्था में जिस दिशा में, जिस सीध में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उस दिशा में, ठीक उस सीध में ही रहना है, उससे जरा भी इतर नही होना,
उस दिशा, उस सीध में, न कोई भावना है, न कोई विचार है, न कोई तल्लीनता है, न कोई तन्मयता है, न कोई तदात्म्यता है, न कोई तंद्रा है, न कोई मूर्छा है, न कोई बेहोशी है, बस श्वास के संदर्भ में बस ज्ञान मात्र ही ग्रहण है,
तुम्हें श्वास के आने में अर्थात् क्रिया में आना नही है, श्वास के जाने में अर्थात् क्रिया में जाना नही है, श्वास में आना-जाना अर्थात् क्रिया है, पर श्वास के ज्ञान में आना-जाना अर्थात् क्रिया नही है, (श्वास के आने-जाने के ज्ञान में आना-जाना नही.... क्रिया में ही आना-जाना है,)
तुम्हें श्वास के आने-जाने की क्रिया में नही,
बल्कि श्वास के आने-जाने के स्थिर ज्ञान में ही स्थिर बने रहना है,
नाक के जिस संवेदनशील भाग में श्वास का स्पर्श अनुभूत (महसूस) हो रहा है,उसी दिशा में श्वास का आभास हो रहा है,
उसी सीध में श्वास का आने का ज्ञान हो रहा है,
उसी सीध में श्वास के जाने का भी ज्ञान हो रहा है,
<< इसलिए तुम्हें ठीक उसी सीध में रहना है, संबंधित क्रिया के साथ, क्रिया के परिप्रेक्ष्य में सीध नही बदलनी है,
दिशा नही बदलनी है, जगह नही बदलनी है,
नाक के जिस भाग में जहाँ श्वास का स्पर्श हो रहा है,
वहीं उसी दिशा में श्वास का आभास हो रहा है, श्वास का ज्ञान हो रहा है,
पर क्रिया के संबंध में ऐसा नही है, क्रिया लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम में है, गति व समय के आयाम में है, इसलिए क्रिया के संबंध में एक निश्चित स्थिर सीध की दिशा कदापि संभव नही.....
श्वास के ज्ञान से भी सीधे और निकट चित्त का ज्ञान है,
चित्त के ज्ञान से भी सीधे व निकट स्वभाव का ज्ञान है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे ज्ञान की सीध में भलीभाँति स्थिरता का निमित्त मापदंड पूरा करना है, अंततः सबसे सीधी सीध की पूर्णता में > ज्ञान मात्र की पूर्णता में > ही सम्यक् यथार्थ की पूर्णता है |
(श्वास का जहाँ स्पर्श हो रहा है, वह सीध आरंभिक सीध है, उस सीध में भलीभाँति स्थिरता पूरी होने पर उससे सीधी सीध स्पष्ट हो (खुल)जाती है,
संकेतार्थ इसी प्रकार उत्तरोत्तर क्रमशः सीधी से सीधी सीध स्पष्ट होते जाती है ....)
जहाँ जिस सीध में सामान्यतः श्वास का स्पर्श अनुभूत (महसूस) हो रहा है, उसे बार-बार याद करो,
क्योंकि ठीक वहीं उसी सीध में अगली श्वास का भी ज्ञान होगा, इससे सीधे ही श्वास का ज्ञान होने में आसानी होगी,
तुम्हें ज्ञान की सीध में ही बने रहना है,
उस सीध से किसी भी परिप्रेक्ष्य में < खोज में इधर-उधर नही होना है,
वह सीध ही तुम्हारी अपनी (बस निमित्त भर होने की)जगह है, जिसे भी यथावत् स्पष्टता हेतु आवश्यकता होगी, वह ज्ञान मात्र की सीध में तुम्हारे बस उपस्थित भर होने के निमित्त की सीध में ही आ जाएगा,
हर सकारात्मकता व हर नकारात्मकता की पूरी सच्चाई
ज्ञान मात्र की सीध में ही खुली हुयी है, कुछ भी छिपा हुआ नही है,
ज्ञान मात्र (बस केवल ज्ञात भर होने) से जरा भी इतर होने पर दबाव है, क्रिया है, प्रतिक्रिया है, सारा सापेक्षिक प्रपंच है,
तुम्हारी दृष्टि में,तुम्हारी निगरानी में क्या ज्ञात हो रहा,
क्या मालुम हो रहा है, क्या पता चल रहा है,
इस संबंध में संबंधित नही होना है, इस मामले में उलझना नही है, बस केवल ज्ञात भर होना ही रहना चाहिए,
बस सिर्फ़ मालुम भर होना ही रह जाए, बस सिर्फ़ पता भर चलना ही रह जाए, क्रिया नही रह जाए,
ज्ञान मात्र से इतर अन्य सब क्रिया की परिधि में है,
केवल बस केवल ज्ञात भर होना ही सहज स्थिर उपस्थित है, अन्य सब चलायमान है,
जिस समय जो हो रहा है, जैसा हो रहा है, उस समय वह वैसा ही भलीभाति स्पष्टतः ज्ञात हो, तभी ज्ञाता व ज्ञेय से अस्पर्श बस ज्ञात भर होना शेष स्पष्ट होगा,
ऐसी स्थिति में ही ज्ञाता व ज्ञेय, दृष्टा व दृष्य पर सहज ही नियंत्रण है|
☆☆ (किंचित अज्ञान का होना ज्ञान मात्र स्पष्टता के संतुलन के निमित्त ही है,)
येन-केन प्रकार से, कैसे भी बस केवल बस ज्ञात भर होने में ही पूरी तरह से ठहरना हो जाए,
इसी में ही क्या, क्यों, किसे, किसलिए कैसे, किस कारण के संबंध में अर्थात् ज्ञाता व ज्ञेय के संबंध में पूरी सच्चाई खुल जाती है,
किसी भी संबंध में कोई संशय, कोई संदेह, कोई भ्रम, कोई अज्ञान शेष नही रह जाता,
पूर्णतः निराकरण, पूर्णतः समाधान ....

19 November 2020

सामान्यतया वर्तमान का अभिप्राय स्थिति से है,> सहज स्थिर स्थिति से,
नासिकाग्र की ठीक सीध में ही वर्तमान है,
दृष्टा व दृष्य के ठीक मध्य की सीध में ही वर्तमान है, अर्थात् दर्शन मात्र की ठीक सीध में वर्तमान है,
ज्ञाता और ज्ञेय के ठीक मध्य की सीध में ही वर्तमान है, अर्थात् ज्ञान मात्र की ठीक सीध में वर्तमान है,
बीतने और उत्पन्न होने के ठीक मध्य की सीध में ही वर्तमान है,
जाने और आने के ठीक मध्य की सीध में ही वर्तमान है,
ध्यान रहे, यह भी वर्तमान का आरंभ है,
वर्तमान की पूर्णता नही,
उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते क्रम में बीतने व उत्पन्न होने का जब अंततः अंत हो जाता है, तब मध्य का अंतराल भी नही रह जाता है, जब मध्य का अंतराल नही रह जाता है, तो सीध भी नही रह जाती है, वर्तमान भी नही रह जाता है,
चूँकि नकारात्मक भाव का ही निषेध होता है, सकारात्मक भाव का निषेध नही होता,
इसलिए यहाँ वर्तमान का निषेध नही है, अपितु उत्तरोत्तर वर्तमान से वर्तमान होते क्रम में अंततः वर्तमान की पूर्णता ही है,
(अर्थात् वर्तमान की पूर्णता कहना ही उपर्युक्त है,)
(भूत भी नही,भविष्य भी नही,
जब भूत और भविष्य भी नही, तो भूत व भविष्य के मध्य का अंतराल भी नही, अर्थात् वर्तमान भी नही,
बल्कि वर्तमान की पूर्णता,)
यह वर्तमान के संदर्भ में सांकेतिक दिशा-निर्देश है,
इसे ध्यान में रखना आवश्यक है|
चूँकि सकारात्मक भाव का निषेध नही है,
नकारात्मक भाव का ही निषेध है,
इसलिए न पाप,न पुण्य ऐसा कहना उपर्युक्त नही है,
क्योंकि इसमें न मार्ग सिद्ध होता है, न ही लक्ष्य,
पाप का निषेध, पुण्य की पूर्णता,
ऐसा कहना ही उपर्युक्त है,
बेहोशी नही, अपितु होश की पूर्णता,
लापरवाही नही, अपितु सावधानी की पूर्णता,
अकुशलता नही,अपितु कुशलता की पूर्णता,
अशान्ति नही, अपितु शान्ति की पूर्णता,
जटिलता नही, अपितु सरलता की पूर्णता,
असहजता नही, अपितु सहजता की पूर्णता,
न आना,न जाना, अपितु स्थिरता (ठहरने) की पूर्णता,
हर प्रकार की नकारात्मकता से शून्य हो जाना,
हर प्रकार की सकारात्मकता से पूर्ण हो जाना,
ऐसा होने में ही मार्ग भी सिद्ध है,लक्ष्य भी सिद्ध है|

20 November 2020

सहज स्वभाव से ही स्थिति वर्तमान में है, न भूत काल में,
न ही भविष्य काल में,
परंतु तुम्हारी स्मृति वहाँ स्थिर नही रहती,
तुम्हारा ध्यान या तो अतीत की स्मृति में खोया रहता है, या भविष्य की चिंता में, भविष्य की योजनाओं में बँटा रहता है,
तुम्हारी निश्चिंतता भंग रहती है,
तुम पूरी तरह से निश्चिंत हो
वर्तमान में उपस्थित नही हो पाते|
वर्तमान से चूकना जीवन के सत्य से चूकना है,
जब भी होता है, वर्तमान ही होता है,
भूत-भविष्य तुम्हारी स्मृति में है,
तुम्हारी धारणा में है, यथार्थ स्थिति में नही,
जब भी है, सतत् वर्तमान ही है,
बस तुम्हारी स्मृति सतत् वर्तमान में उपस्थित रहे,
वर्तमान से उपस्थिति भंग न हो,
वर्तमान से स्थिति भंग न हो,
वर्तमान से दृष्टि भंग न हो,
वर्तमान से ध्यान भंग न हो,
वर्तमान से ज्ञान भंग न हो,
इस बात की पूरी सजगता, पूरी सावधानी रहे, जब पूरी तरह से वर्तमान में उपस्थिति होती है, तभी जीवन की पूर्णतः सार सच्चाई स्पष्ट रहती है,
जीवन की पूर्ण सार सच्चाई वर्तमान के ठीक इसी क्षण में निहित है,
बस इस क्षण,इसी क्षण
पूरी तरह से उपस्थित हो जाओ,
जीवन की पूर्ण सार- सच्चाई स्पष्ट है|
.जीना तुम्हारा वर्तमान में हो रहा है,
ध्यान तुम्हारा कहीं और है, बस यही तुम्हारी भूल है,
बहुत ही दुर्भाग्य की बात है,
कि भूत-भविष्य के मनोवैज्ञानिक, सापेक्षिक दबाव में तुम पूरी तरह से उपस्थित नही हो पाते, तुम्हारा
ध्यान सदा ही बँटा ही रहता है,
पूरे अखंड स्मृति से,अखंड ध्यान से तुम कहीं भी पूर्णतः उपस्थित नही हो पाते,
तब फिर यथार्थतः सत्य से चूकना तो स्वाभाविक ही है|

21 November 2020

कल रविवार २२\११\२०२०
को सम्यक् सत्संग < ध्यान < अभ्यास का आयोजन है,
स्थान - अभ्यारण्य (टाईगर रिजर्व > नेशनल पार्क) में
टिहरी फार्म के पास
तह•ऋषिकेश,
जिला-देहरादून
राज्य-उत्तराखंड

21 November 2020

भौतिक वैज्ञानिक सूक्ष्म जगत की एक सीमा तक....
> (Quantum field))की व्यावहारिकता को देखने के लिए उच्च आवर्धन क्षमता से युक्त परिष्कृत अत्याधुनिक सूक्ष्म दर्शी यंत्र का उपयोग करते हैं,

लेकिन जिस दृष्टिकोण से, जिन आँखों से, जिस सूक्ष्मदर्शी यंत्र से वे देखते हैं, वह सब सापेक्षिक दबाव स्वरूप वक्रता (curvenes) में होने से उन्हें कुछ भी तथ्यगत् > यथावत् स्पष्ट नही हो पाता है, जहाँ उनका स्व < आरोपित दबाव स्वरूप स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित होना स्वाभाविक है,
क्योंकि स्थूल दृष्टि समानान्तर आकाश,समय का अनुसरण ही करती है,
(flexible space time को follow ही करती है,)
उत्तरोत्तर पूर्व के बीतने पर जो दबाव बनता है,उस दबाव में उत्तरोत्तर वक्रता का आरोपित होना स्वाभाविक है,
इसलिए आरोपित वक्रता में कोई भी सामान्य जन (वैज्ञानिक,,दार्शनिक आदि कोई भी) जो कुछ भी देखता है,
वह तथ्यगत स्पष्टता को नही,
बल्कि पूर्व के स्पंदित दबाव में सापेक्षिक स्पंदित आभास को ही देखता है|
इस व्यावहारिक जगत का सम्पूर्ण ज्ञान & दर्शन अपेक्षित दृष्टिकोण के सम्मोहन में प्रभावित है,
कुछ भी यथावत् स्पष्ट नही, सब कुछ अस्पष्ट है,
सब कुछ सापेक्षिक द्वंद्व में भासित है,
वैज्ञानिकों को उत्तरोत्तर सम्यक् शोध हेतु अनुत्तर सम्यक् मार्ग स्पष्ट नही है, इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण में ही शोध करने की उनकी यह विवशता स्वाभाविक है, इसी तरह अगर वैज्ञानिक शोध जारी रहा,तो आगे आने वाले समय में सापेक्षिक द्वंद्व की समस्या निश्चित ही बढ़ेगी,
अभी तक वैज्ञानिक जिसे वे इलेक्ट्रॉन कहते आए है,
वह तथ्यतः क्या है, अभी तक यही सुनिश्चित नही हो पाया,
उस संबंध में वैज्ञानिकों को कभी कण होने का आभास होता है, तो कभी तरंग के होने का आभास होता है,
पूर्ववत् सुनिश्चित अपेक्षित दृष्टिकोण पर आधारित किसी कोण विशेष से देखने पर ऐसी अस्पष्टता स्वाभाविक है,
तथ्यतः यथावत् स्पष्टता के लिए अपौरुषेय सम्यक् मार्ग का स्पष्ट न होना सामान्य जनों विशेषकर धार्मिको, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों आदि के लिए बहुत ही दुर्भाग्य की बात है,
तथ्यतः यथावत् स्पष्टता हेतु अंततः अपौरुषेय सम्यक् धर्म अनुशासन में आना हर किसी की विवशता है,
इसके बिना सम्यक् कल्याण नही है,
(ध्यान रहे, लोकदृष्टि < लोकाचार में जो कथित सनातन धर्म के अभिमान स्वरूप स्थापित है,
वह कदापि अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म नही है,)
पूर्ववत अपेक्षित दृष्टिकोण से मुक्त होने के लिए नकारात्मक (ऋणात्मक) आचरण अर्थात् नशा, हिंसा,चोरी,
व्याभिचार,झूठ,छल,धोखाधड़ी आदि दुराचार से अनिमित्त हो,
दृष्टि को उसकी सहज स्वाभाविक सीध में संयमित रखना आवश्यक है,
इतना ही नही उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सहज स्वाभाविक सीध में दृष्टि को संयमित रखना आवश्यक है,>> केन्द्रित रखना आवश्यक है, सीधी से सीधी सीध का तात्पर्य यहाँ पर लोक प्रचलित पारम्परिक दृष्टिकोण से नही है,
बल्कि उत्तरोत्तर यथावत् 'जैसा है, ठीक वैसा' ही भलीभाँति ठीक ठीक स्पष्ट हो,
इस निमित्त से यथा सहजता पूर्वक पूरे यथा होश में सजग रहते हुए उत्तरोत्तर कम से कम समय में,
निकट से निकट वर्तमान में उपस्थित होने से है,
इससे दृष्टि में आरोपित हुयी वक्रता हटेगी, समय व आकाश के संदर्भ में> आभास के संदर्भ में जो भ्रम है वह हटेगा, और वस्तुतः सत्य स्पष्ट होगा |
श्वसन प्रक्रिया को पूरी तरह से उसकी सहज स्वाभाविकता में छोड़ दो,
अपनी तरफ से श्वसन प्रक्रिया की यथा सहज स्वाभाविकता में जरा सी भी बाधा न पड़े, जैसे कोई भ्रमर किसी पुष्प को कोई नुकसान पहुँचाए बिना पुष्प में पड़े हुए रस को लेकर निकल जाता है,
तुम्हें भी श्वास के संदर्भ में वर्तमान में जैसा है, ठीक वैसा ही भलीभाँति बस ज्ञात भर होने से ही मतलब होना चाहिए, संबंधित क्रिया से नही|
समानान्तर वर्तमान से सावधान रहना है, क्योंकि जिसे तुम सीधा समझ रहे हो, वह वक्रता में ही है,
समानान्तर वर्तमान का क्रम ही भूत व भविष्य को उत्पन्न करता है,
जो समय का वक्रता में भासित होना है, यह आकाश भी जो तुम्हें भासित हो रहा है, यह भी समानान्तर क्रम की वक्रता में (पूर्ववत आभास में) ही है, यहाँ तक कि जो कुछ भी तुम्हें प्रतीत हो रहा है, वह सब समानान्तर क्रम में होने से पूर्व के अनुसार ही भासित है,
पूर्ववत आभास से मुक्त होने के लिए सहजता व सजगता हेतु सर्वप्रथम श्वास का अवलंबन अनिवार्यतः आवश्यक है,
श्वास का आभास जैसा भासित हो रहा है, वैसा ही भली भाँति ठीक ठीक स्पष्ट हो, इस निमित्त से वहाँ भलीभाँति स्थिर होना आवश्यक है,
भलीभाँति यथावत् ठीक ठीक स्पष्टता के निमित्त भलीभाँति ठहरने का मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
भलीभाँति यथावत् ठीक ठीक स्पष्टता के निमित्त स्थिरता का मापदंड पूरा होने पर ही उससे सीधे सही दिशा में और कम समय में संभलकर और निकट वर्तमान में उपस्थित होने के लिए सकारात्मक दबाव महसूस होगा,

वह सकारात्मक दबाव ही पहले की अपेक्षा और सीधे सही दिशा में, और कम समय में, और अभी के निकट वर्तमान में सहज ही उपस्थित करेगा,
इस तरह उत्तरोत्तर क्रमशः और कम से कम समय में, निकट से निकट
वर्तमान में भलीभाँति यथावत् स्पष्टता के निमित्त स्थिरतापूर्वक उपस्थिति का मापदंड पूरा होने पर सहज ही उत्तरोत्तर सम्यक् मार्ग स्पष्ट होता जाएगा,
उत्तरोत्तर जितना ही
सही से सही दिशा में मार्ग स्पष्ट होता जाएगा, उसी अनुपात में
समानान्तर क्रम का भी अतिक्रमण होता जाएगा, और उस अनुपात में
वक्रता भी हटेगी, और उसी अनुपात में भ्रम, संशय,अपूर्णता, पूर्ववत आभास, अज्ञान,दुख, क्लेश से मुक्ति होगी,
जब सबसे कम समय में सबसे अभी के निकटतम् वर्तमान में भलीभाँति यथावत् ठीक ठीक स्पष्टता के निमित्त भलीभाँति पूर्णतः स्थिरता का निमित्त मापदंड पूरा होता है, तभी पूर्ववत आभास से पूर्णतः मुक्ति है, भ्रम, संशय, अज्ञान, अपूर्णता, दुख, क्लेश, बंधन से पूर्णतः मुक्ति है,
बिना किसी अंतराल के जैसा है, वैसा ही स्पष्ट है.....
सहज स्वाभाविक श्वसन प्रक्रिया में हर आने,जाने वाली श्वास के मध्य में जो अंतराल है, अंतराल का वह समय यथा सहजतापूर्वक होश
में संभलने के लिए है,
ताकि हर एक अंतराल के बाद जो श्वास का आना - जाना हो रहा है, ठीक समय में भली भाँति ठीक -ठीक जानने के निमित्त उपस्थिति पूरी हो सके,
अंतराल के समय बस केवल संभलना है, और हर आती- जाती श्वास के ज्ञात होने में ठीक (उसी) समय पर बस उपस्थित रहना है, संभलने के समय बस केवल संभलना ही रहे, और संभलकर उपस्थित होने के समय पर बस भलीभाँति संभलकर उपस्थिति भर रहे, यह माँग संतुलन हेतु,सहज स्वाभाविक
है,
हर एक अंतराल में हर बार भलीभाँति संभलकर हर आती-जाती श्वास के यथावत् ज्ञात भर होने में उपस्थिति भर होने से मूर्छा भंग होगी,प्रमाद भंग होगा, सहज स्फूर्ति बढ़ेगी, कम से कम
समय में,और सूक्ष्म से सूक्ष्म, तीव्र से तीव्र गति में संभलने की सहज स्फूर्ति बढ़ेगी, सहज ही नियंत्रण की क्षमता बढ़ेगी, कम से कम समय में, अभी से और अभी के निकट वर्तमान में और भलीभाँति से
संभलना होगा, संभलने व उपस्थित होने का यह क्रम
प्राकृतिक मापदंडों पर आधारित है, मनुष्य द्वारा आरोपितनही, निर्धारित नही..
इसलिए तो श्वसन प्रक्रिया का स्वरूप सम्यक् न्याय पूर्वक है,
यह विशुद्ध स्वाभाविक मार्ग है, जरा भी कृत्रिम नही, जरा भी पौरुषेय नही, विशुद्ध सम्यक् सनातन मार्ग है |
सहज स्वाभाविक श्वसन प्रक्रिया में श्वास के आने -जाने व अंतराल (ठहरने)का अनुपात ऋत् संगत है,
जहाँ हर बार संभलकर उपस्थित होने पर,सहज स्वाभाविक मापदंड के आधार पर संभलने के लिए, उपस्थिति होने के लिए, सहज होने के लिए, सजग होने के लिए सहज ही माँग बनती है, बस उसे पूरी सत्यता, पूरी ईमानदारी से पूरा करना है, पहला कदम अपनी तरफ से रखना है, दूसरा कदम सहजता से रखने के लिए सहज ही माँग उठेगी, बस उस माँग को पूरी ईमानदारी से पूरा करना है, यह क्रम उत्तरोत्तर पूरा करना है,
श्वास के प्रति यथा सहज होने से
यथा सहजता से सजग होने के लिए,
सहज ही माँग उठती है,
बस माँग के प्रति पूरा संवेदनशील रहते हुए उस माँग को पूरी सत्यता से,पूरी ईमानदारी से पूरा करना है,
उत्तरोत्तर यह क्रम पूरा करना है, जब तक कि बिना किसी पूर्व के दबाव के सहज ही सहजता पूरी न हो ..

22 November 2020

निमित्त बस निमित्त मात्र की भूमिका में ही दर्शन मात्र में निमित्त साक्षी है,
न कि आरोपित दृष्टा के आरोपित साक्षी भाव में,
अध्यारोपित शास्त्रों में आरोपित पृथक दृष्टा भाव में ही साक्षी होने की बात है,
यह लोक दर्शन मात्र से इतर अलग से स्थापित दृष्टा भाव के साक्षी भाव में दिग्भ्रमित हो, दुःख व शोक को प्राप्त है,
निमित्त का मात्र निमित्त की भूमिका में निमित्त साक्षी होना अध्यारोप नही है,सहज सिद्ध है,
अलग से आरोपित साक्षी में ही संस्कार बनता है, दर्शन मात्र के निमित्त साक्षी
में संस्कार नही बनता,
इस बात को बहुत ही गंभीरता से लेना जरूरी है,

सहज निमित्त साक्षी और आरोपित साक्षी भाव के अंतर को सूक्ष्मता में समझना बहुत ही आवश्यक है,
अन्यथा संभलना नही हो पाएगा,
और आरोपित साक्षी भाव के दबाव स्वरूप कर्ता भाव में गिरना हो जाएगा|

23 November 2020

परम्परागत् योग की चक्रों की धारणा, पंच कर्म व प्राणायाम आदि कृत्रिम अध्यारोप की जटिलता में
वे ही उलझते हैं,
जो ऋत् प्रेरित नहीं हैं,
जिन्हें ऋत् प्रेरित सहज स्वाभाविक ध्यान का
मार्ग स्पष्ट नही है,
सहज स्वाभाविक ध्यान का मार्ग किसी भी कृत्रिम
अध्यारोपित योग पद्धति पर निर्भर नही है, अवलंबित नही है,
सहज स्वाभाविक ध्यान किसी भी प्रचलित परम्परागत् ध्यान के संदर्भ में नही है, इसलिए ध्यान के संदर्भ में यहाँ परम्परागत् अर्थ ग्रहण नही है, ऋत् प्रेरित सम्यक् अर्थ ही ग्रहण है,
ऋत् प्रेरित हुए बिना सहज स्वाभाविक ध्यान का संकेत स्पष्ट नही हो सकता,
ऋत् प्रेरित होने पर ही ऋत् मुखी हुआ जा सकता है...
उठते,बैठते, चलते हर व्यावहारिक प्रक्रिया में तुम सहज स्वाभाविक ध्यान में हो ही, तभी हर व्यावहारिक प्रक्रिया में यथा संतुलन बना हुआ है, यथा स्थिति बनी हुई है,
परंतु ध्यान की यह स्थिति स्थाई नही है, और पूर्णतः स्पष्ट नही है,
इतना ही स्थाई है, इतना ही स्पष्ट है, कि जिससे व्यावहारिक धरातल में जीने की बस औपचारिकता भर ही पूरी हो पाती है,
चूँकि उठते, बैठते, चलते हर व्यावहारिक प्रक्रिया में तुम्हारी दृष्टि नासाग्र की सीध की दिशा में ही होती है,
दृष्टि अपनी सहज स्वाभाविक सीध में न हो तो, सामान्य व्यवहार में
संतुलन बन ही नही सकता,
तुम्हारी दृष्टि सहज स्वाभाविक सीध में ही है, पर कमी है तो बस भलीभाँति स्थिरता की.....
भीतर से नासाग्र की ठीक सीध में होते हुए, भीतर से श्वास के केन्द्रीय ज्ञान में भलीभाँति स्थिरता पूरी करनी है......
सामान्यतः
पूरी सावधानी इसी बात की है, कि
जिस सीध में दृष्टि बनी हुई है, न तो वह सीध भंग हो ,और
न ही उस सीध में जो दृष्टि है, वह भंग हो, और न ही उस
सीध में जो ज्ञात भर हो रहा है, वह भंग हो,
यही पूर्ण ध्यान की स्थिति है..
सीध भंग होते ही दृष्टि भंग हो जाती है, और दृष्टि भंग होते ही,
जो मात्र ज्ञात भर हो रहा है, भंग हो जाता है,
इसलिए पूरी सावधानी इसी बात की है, कि जिस सीध में दृष्टि बनी हुई है, और जिस सीध में ज्ञान हो रहा है,
वह सीध भंग न हो,
किसी भी प्रकार से सीध भंग न हो,
इस पर पूरी-पूरी सावधानी रहे,
बार-बार तुमसे यही कहना है, भलीभाँति संभले रहो, ताकि ज्ञान की सीध से दृष्टि भंग न हो...
ज्ञान मात्र की सीध से दृष्टि भंग न हो, निगरानी भंग न हो...
ज्ञान मात्र की ठीक सीध में जब दृष्टि
भलीभाँति स्थिर हो जाती है, तब हर संदर्भ की पूर्ण सत्यता स्पष्ट हो जाती है...

24 November 2020

शरीर से, इंद्रियाँ से, अहंकार से, मन से, बुद्धि से, प्रकृति से, मृत्यु से, पुरुष से परे, उससे भी परे..अनंत परे ओर ही मात्र पूरा स्व समर्पण हो, तन,मन,धन आदि सर्वस्व अर्पण हो, कर्म व कर्मफल का अर्पण हो,पूजा,अर्चना,आराधना & उपासना का अर्पण हो, साधना का अर्पण हो,
सम्यक् अर्पण होने पर ही कर्म में निमित्त की भूमिका होती है,
अन्यथा कर्म में आरोपित कर्ता भाव का होना स्वाभाविक है,

जन्म से लेकर मृत्यु,तक कुछ भी स्थाई नही, सब कुछ बीत रहा है, इस क्षणभंगुर
संसार में कुछ भी प्राप्त करने योग्य नही है, सुख व शान्ति की खोज में इस क्षणभंगुर संसार के पीछे भागने वाले को धोखा ही मिलता है,
यह दुःखद संसार आवागमन स्वरूप
है, यहाँ कुछ भी सहज उपस्थित नही है,
इस दुःखद आवागमन स्वरूप संसार के प्रति उपेक्षा की परम् पूर्णता में ही स्थिर शान्ति है, सहज उपस्थिति है|

25 November 2020

लोक प्रचलित में जितने भी धर्म हैं,
जितनी भी साधना पद्धतियां हैं,
जितनी भी भावित होने योग्य भावनीय भावनाएं हैं,
उन सबका मूल आधार अपौरुषेय, अध्यारोप रहित अकृत्रिम् ज्ञान मात्र ही है,
सभी तरह की भावित होने योग्य भावनीय भावनाओं को पूरा कर लेने पर,
सभी तरह की प्रचलित साधना पद्धतियों को सिद्ध कर लेने पर भी जीवन की मूल समस्या का पूर्णतः सम्यक् समाधान नही हो पाता है|
सभी तरह की भावित होने योग्य भावनीय भावनाओं को पूरा करने पर जब भावित होने के लिए कोई भी भावनीय भावना शेष नही रह जाती है,
तब सहज ही,
सीधे > अंहकारादेश मलिनता से रहित, अपेक्षा रहित, संबंध रहित विशुद्धतः ज्ञान मात्र (विशुद्धतः बस केवल ज्ञात भर होने की ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता) ही शेष पूर्ण है|
किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है, यह सब सापेक्षिक > संबंधित दृष्टिकोण नही,
कोई भी संबंधित दृष्टिकोण नही,
अपितु पूर्णतः संबंध रहित बस केवल ज्ञात भर होना ही.....
सहज उपस्थित ज्ञान मात्र
(ज्ञात भर होने) में निमित्त की निमित्त अर्थ में बस उपस्थित भर होने से जीवन की मूल समस्या का पूर्णतः सम्यक् समाधान है,
मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म है,
"बस ज्ञात भर होने में उपस्थित भर होना",
इसके अलावा कोई मनुष्यता का सहज धर्म नही है,
सब अज्ञ मनुष्यों द्वारा स्थापित मत हैं,
जिन्हें लोकाचार में धर्म, संप्रदाय, रिलीजन,दीन,मजहब आदि की संज्ञा प्राप्त है,
कोई भी किसी भी धर्म, मजहब ,संप्रदाय, पंथ का क्यों न हो, उसे अंततः ज्ञान मात्र के निमित्त होना ही पड़ेगा,
क्योंकि इसके बिना दिग्भ्रम से मुक्ति नही|
एक नन्हे बालक की तरह सरल हो जाओ,
पर अज्ञानी नही,
साथ ही एक अनुभवी वृद्ध की तरह ज्ञानी हो जाओ, पर जटिल नही,
ऐसे ज्ञान से सावधान रहो, जो जटिलता लाये,
ऐसी सरलता से भी सावधान रहो, जो अज्ञानता लाये,
साधनात्मक दृष्टि से ऐसे ज्ञान से भी सावधान रहो, जो संबंधित स्मृति के संग्रह से बाँधता हो,
सम्यक स्मृति को जो स्पष्ट करे, वही ज्ञान है,
पर सम्यक् अर्थ में ज्ञान का संकेत सहज उपस्थित ज्ञात भर होने से ही है,
ज्ञात भर होना हर संदर्भ में,
हर जगह, हर काल में अंतर रहित सहज उपस्थित है,
सहज स्वाभाविक सीध में ठीक सीधे वर्तमान में ज्ञात भर होना ही शेष है,
संबंधित क्रिया नही,
बस ज्ञात भर होना बस स्पष्ट हो जाए,
हर संदर्भ की सच्चाई स्पष्ट है,
हर काल की सच्चाई स्पष्ट है,
हर संबंध की सच्चाई स्पष्ट है,
किसी भी संबंध में कोई भ्रम,संशय,अज्ञान नही ....

26 November 2020

26 November 2020

पूर्व सुनिश्चित मान्यताओं के रहते,
किसी भी पक्ष विशेष के रहते कदापि सही अर्थ में निष्पक्ष खोज संभव नही है,
जब तक किसी भी संदर्भ में पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट नही है,
उस संदर्भ में एकान्तिक(एक अंत से संबंधित) दृष्टिकोण से सुनिश्चित मत हो जाना,
क्योंकि सम्यक् न्याय पूर्वक परीक्षा में
यह बहुत बड़ी बाधा है, सम्यक् शोध में यह बहुत बड़ी बाधा है,
जितने भी पक्ष लोक प्रचलन में हैं,
उन सब का कोई न कोई तथ्यगत् आधार अवश्य है, इसलिए पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट हुए बिना ही किसी भी लोक प्रचलित पक्ष को पूर्णतः असत्य स्वीकार करने पर सम्यक् न्याय पूर्वक परीक्षा संभव नही है,
हर किसी कोण का आधार उसका केन्द्र
ही है, किसी कोण की पूर्णतः सच्चाई उसके तल पर नही है, अपितु उसके केन्द्रीय आधार के तल पर स्पष्ट है,
सामान्यतः साधारण जन पूर्व निर्धारित धारणाओं में ही आबद्ध हो बंद है,
इसलिए पूर्व का आग्रह होने से सामान्य जनता में सम्यक् अर्थ में अनुसंधान के लिए जागरूकता नही हो पाती है,
किन्हीं की सोच कृष्ण के दृष्टिकोण के अनुसार में बंद है, तो किन्हीं की सोच मुहम्मद आदि के दृष्टिकोण के अनुसार बंद है,
अज्ञ जन ही अज्ञ जनो के दृष्टिकोण में सम्मोहित हो दिग्भ्रमित होते हैं,
सामान्यतः कोई भी पूर्णतः पूर्वाग्रह से मुक्त हो,
पूर्णतः सम्यक् अर्थ में, सम्यक् अनुसंधान के लिए पूर्णतः स्वतंत्र नही है,
इसलिए सामान्य जनों की किसी न किसी मत में, किसी न किसी पक्ष में होने में विवशता है|
हे पृथ्वी ग्रह के मनुष्यो|
अज्ञ मनुष्यों द्वारा आरोपित> स्थापित सभी लोक प्रचलित परम्परागत धर्मों से अनिमित्त हो, अनारंभ मूल स्वभाव में आ जाओ,
जैसे अग्नि का स्वभाव है, उष्णता, जल का स्वभाव है, शीतलता, तो मनुष्य मात्र का मूल स्वभाव क्या है,
संसार भर के सभी मनुष्य एक ही रीति से जन्म लेते हैं,
एक ही रीति से श्वास लेते हैं, इसमें कहीं कोई मतभेद नहीं, सभी मनुष्यों के उठने, बैठने, चलने, रोने, हँसने,बोलने, सोने, जगने इत्यादि मूल प्रवृत्तियों में कहीं कोई भतभेद नही दिखता, सभी मनुष्यों की बाह्य व आंतरिक संरचना, क्रिया व अभिव्यक्ति में कहीं कोई मतभेद नही है,
इन सबके मूल में बीज स्वभाव क्या है, उस बीज स्वभाव की खोज करो, और बीज स्वभाव तक प्रत्यक्ष
स्पष्टतः प्रवेश व स्थिति लाभ प्राप्त करो..
बीज स्वभाव ही तुम्हारा धर्म है,
जिस संदर्भ में मनुष्य जाति में आपसी मतभेद है,
निश्चित ही वह धर्म कदापि नही,हरगिज़ नही, उससे सावधान रहो, जिस संदर्भ में कोई मतभेद नही, विरोधाभास नही, उस संदर्भ में अभिप्रेरित रहो,

वेद हो या कुरान, गीता हो या धम्मपद, पुराण हो या आगम या कोई भी धर्म शास्त्र जिससे अगर कहीं भी किसी भी अर्थ में, किसी भी संदर्भ में मनुष्य जाति में आपसी मतभेद व विरोध उत्पन्न होता है, तब निश्चित ही वह सापेक्षिक दबाव में बुद्धि गत कृत्रिम अध्यारोप है, फिर चाहे कोई आसमानी कहे, या अपौरुषेय
इसका अर्थ नही रह जाता|
मनुष्य का स्वरूप सीधे ही सही दिशा की ओर ऋजु मार्ग के लिए एक सीधा संकेत है,
तुम अपनी शारीरिक संरचना का भलीभाँति अवलोकन करो, देखो, आँखें कहाँ हैं, कान कहाँ हैं, नाक कहाँ है, जो अंग जिस कोण में, जिस स्थिति में, जहाँ हैं, वे सब वहीं हो सकते हैं, उनका जरा भी परिवर्तन नही हो सकता, यह प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है, क्योंकि जरा भी परिवर्तन हो जाए, तो उठने-बैठने, चलने-फिरने, सोने -जगने इत्यादि व्यावहारिक क्रिया
में संतुलन व स्थिति नही बन पाएगी,
मनुष्य की शारीरिक संरचना में जो अंग जिस कोण में जहाँ हैं, व्यावहारिक संतुलन व सीधे मार्ग के लिए दिशा निर्देश हेतु प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है,
आँखें दाएं-बाएं नहीं हैं, सीधे सामने की ओर ही हैं, यहाँ यह संकेत है, तुम्हें दाएं-बाएं नही ,सीधे ही देखते हुए चलना है, और तुम्हारे कान दाएं -बाएं हैं, जो सजगता का माध्यम हैं,, तुमने देखा होगा जब कुत्ते,खरगोश आदि संवेदनशील पशु सजग होते हैं, तो उनके कान
खड़े हो जाते हैं, और आँखें नासाग्र की दिशा की ओर
सीधी व स्थिर हो जाती हैं,
प्राकृतिक ध्यान के संदर्भ में यह एक संकेत है,
कान तुम्हें सजग करते हैं, ताकि तुम्हारा ध्यान दाएं-बाएं न बँटने पाए, जहाँ एक ऐसा संतुलन स्थापित होता है, जिससे तुम्हारी दृष्टि सीधे रहती है,
अगर तुम्हारे कान दांए-बाएं न होते तो, तुम्हारी दृष्टि धारा विखर जाती, कान का विज्ञान, कान की संवेदशीलता तुम्हें सजग करती है, ध्यान व दृष्टि धारा विखरने से रोकती है, अगर दांए- बाएं न हो तो उठना, बैठना, चलना आदि व्यावहारिक क्रियाओं में संतुलन ही नही बन पाता, स्थिति ही नही बन पाती, कान ही नही,
शरीर के अंग जो जहाँ है, वहीं हो सकते हैं, अन्य स्थान पर नही, तभी संतुलन व स्थिति बनी हुई है,
तुम्हारी नाक दोनों आँखों के मध्य में होती है ,और उसका अग्रभाग आँखों के समानान्तर दिशा के मध्य से पैंतालीस अंश के कोण में झुका हुआ होता है,तुमने यह देखा होगा ,जब तुम सामान्यतया चलते हो तो तुम्हारी दृष्टि नासाग्र के सीध की दिशा में चलने की प्रक्रिया के ज्ञान की ही दिशा की ओर होती है, तभी तुम्हारे चलने में एक संतुलन स्थापित होता है,
चलने से संबंधित ज्ञान की सीध की दिशा से जब दृष्टि भंग हो जाती है, तब चलने में संतुलन भी भंग हो जाता है, जिससे तुम्हें कभी ठोकर भी लग जाती है,
यद्यपि यह प्राकृतिक औपचारिकता तुम्हारे जीवन जीने भर के लिए है, और तुम्हारे लिए संकेत अर्थ में प्राकृतिक चेतावनी भी, कि तुम्हारी दृष्टि ठीक पैंतालीस अंश के कोंण में पूरी तरह स्थिर नही है, और तुम्हें सहज स्वाभाविक संकेतार्थ नासाग की ठीक सीध की दिशा में श्वास के ज्ञान की ठीक सीध में
दृष्टि को भलीभाँति संयमित करना है|
*तुम्हें पैंतालीस अंश के कोण में ही दृष्टि को रखना है, क्योंकि नाक का अग्रभाग सीधे मार्ग के लिए
दिशा बोध है,
नासाग्र की ठीक सीध में जब दृष्टि रहती है तो उस सीध
में सहज ही श्वास का यथावत ज्ञान स्पष्ट रहता है,
सहज श्वास के यथावत ज्ञान में जब दृष्टि भलीभाँति स्थिर हो जाती है,
तब उत्तरोत्तर सही से सही दिशा में सीधे मार्ग के लिए द्वार खुल जाता हैं..
कृत्रिम अध्यारोपित शास्त्रीय जाल से अनिमित्त हो, सहज स्वाभाविक संकेत के आधार पर यथा सहजता में यथा सजग रहते हुए संवेदनशील रहो,
अवश्य अकृत्रिम सहज मार्ग स्पष्ट होगा..
.हे पृथ्वी ग्रह के मनुष्यो|
जन्म से पूर्ण मनुष्य होने में तुम सभी का स्वभाव सिद्ध अधिकार है, जाति, वर्ण, वर्ग, राष्ट्र, धर्म, संस्कृति आदि की संकीर्णताओं में खंडित होने से बचो, खंडित मानसिकता में सहज ही खुलकर सही अर्थ में,पूर्ण सर्वांगीण विकास कदापि नही हो सकता, संकीर्णता में बाँटने वाले, खंडित करने वाले मनुष्यता के शत्रु स्वार्थी तत्वों (कथित धर्म के ठेकेदारों) से सावधान रहो....
सावधान|
अध्यारोपित कृत्रिमता सम्मोहन कारक है, पूर्वाग्रह के दबाव में बांधने वाली है, .
परंतु सद्धर्म की प्रकृति पूर्ण सहज स्वभाव में है, जहाँ जरा भी अध्यारोप नही, जरा भी कृत्रिमता नही, जरा भी सम्मोहन नही...
कृत्रिम धर्मों की उपेक्षा करो, बहिष्कार करो, और पूर्वाग्रह से मुक्त हो, सत्य
जानने की सहज स्वाभाविक मूल जिज्ञासा के अर्थ में संवेदनशील हो, सहज स्वाभाविक संकेत के आधार पर
सम्यक् सद्धर्म की खोज करो|

स्वभाव से ही नासाग्र की सीध में ही दृष्टि होती है, नासाग्र की ठीक सीध में ही ज्ञान का स्थान है,
मूल स्वभाव में मात्र ज्ञान ही शेष स्पष्ट है,
मात्र ज्ञान में ही पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता है,
इसलिए मनुष्य मात्र के मूल स्वभाव का धर्म है, ज्ञान ////
मात्र ज्ञान की विशुद्धि में पूर्णता में भलीभाँति स्थिरता पूर्ण होने पर जीवन की पूर्ण केन्द्रीय सच्चाई खुल जाती है |||
दोनों आँखों के मध्य की सीध में सामने से ४५ अंश के कोण में झुककर नाक का अग्रभाग का होना, प्राकृतिक ज्यामितीय स्वरूप को दर्शाता है, दोनों आँखों के मध्य की सीध में
सामने से ४ ५ अंश के कोण में झुककर नाक के अग्रभाग का होना, ध्यान के संदर्भ में दिशा हेतु प्राकृतिक ज्यामितीय संकेत है, उसी सीध में श्वास का जो आभास हो रहा है, उस सीध में ध्यान के संदर्भ में सीधी दिशा का संकेत है,
जहाँ ध्यान के संदर्भ में यह प्राकृतिक संकेत है,
कि सहज स्वाभाविक ढंग से कहाँ, किस दिशा में और कैसे दृष्टि
भलीभाँति संयमित होगी, कैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि > बुद्धि स्पष्ट होगी, (खुलेगी)
कैसे स्थूल से सूक्ष्मता की ओर समय और आकाश के सभी तलों के समानान्तर क्रम का अतिक्रमण होगा,
जब सामान्यतया चलते हो तो तुम्हारी दृष्टि लगभग नासाग्र की सीध की दिशा में ही होती है, तभी तुम्हारे चलने में संतुलन होता है, यह अनायास ही सहज स्वाभाविक प्राकृतिक योग है, इसमें बहुत ही गहरा प्राकृतिक संकेत है, इस संकेत से जरा भी यहाँ-वहाँ नही होना है, बस यहीं से सीधे ही और सीधे से सीधे, और सही से सही ओर संभलना है, ...
सहज स्वाभाविक संकेत के आधार पर दृष्टि की सहज स्वाभाविक स्थिति सहज श्वास के ज्ञान के ठीक सीध में ही है ,परंतु नकारात्मक दबाव दृष्टि व श्वास को उसकी यथा सहज स्थिति से चलायमान व असहज करता है,
*आरंभ में दृष्टि संयम कठिन जरूर है, पर नकारात्मक निमित्तों से पूर्णतः उपेक्षा होते ही सरल है, सहज है,
नकारात्मक निमित्तों का अपना कोई बल नही, तुमने उसे महत्व देकर उसे बल प्रदान किया है, जिन नकारात्मक निमित्तों को तुम्हारी महत्व बुद्धि महत्व देती है, उसका बल बढ़ जाता है, जिन नकारात्मक निमित्तों की तुम्हारी महत्व बुद्धि उपेक्षा करती है , उसका बल गिर जाता है, यह महत्व बुद्धि का गुणधर्म है|
*इसलिए जिस समय भी तुम नकारात्मक निमित्तों की पूर्ण उपेक्षा करोगे, उसे जरा भी महत्व नही दोगे,
उसी समय नकारात्मक दबाव का प्रभाव भी गिर जाएगा,
लेकिन इसमें ईमानदारी पूरी होनी चाहिए, कहने भर के लिए यह नही होना चाहिए .....
यह बहुत ही सीधी व सरल बात है, पर इसमें ईमानदार
होना बहुत ही कठिन है, अगर ईमानदारी पूरी हो, तो
अभ्यास बहुत ही सरल है,
सीधी सी बात है, जिन बातों को लेकर मनुष्य जाति में मतभेद नही है, वहाँ से सहज स्वाभाविक मार्ग के लिए संकेत हैं,और जिन बातों को लेकर मतभेद हैं, वे अध्यारोपित हैं, कृत्रिम है, जो सही
अर्थ में धर्म नही है, जो धर्म के नाम पर खंडित करने वाली,सीमित अर्थ में बांधने वाली संकीर्णता है, जितने भी परम्परागत, लोक प्रचलित धर्म हैं, वे इसी संदर्भ में हैं,...
.हे पृथ्वी ग्रह के वासियों |
यों तो तुम्हारे ग्रह में लाखों प्रजाति के जीव हैं, परंतु मनुष्य अर्थात् तुम्हारी प्रजाति रचना में सबसे जटिल
व विकास के दृष्टिकोण से सबसे अधिक विकसित प्रजाति है, इसलिए इस पृथ्वी ग्रह की जिम्मेदारी तुम पर अधिक है, तुम्हारा दृष्टिकोण,तुम्हारी खोजें तुम्हारे आने वाले कल की रूपरेखा तय करती है,
इस पृथ्वी ग्रह का भविष्य बहुत कुछ तुम पर ही टिका है
अगर आगे तुम्हें सही अर्थ में पूरा विकसित होना है, तो तुम्हारे मध्य मनुष्यता को खंडित करने वाली, बाँटने वाली किसी भी अर्थ की संकीर्णता से उपर उठना बहुत ही आवश्यक है,
पूर्ण विकास के लिए
हर कोण से बुद्धि का खुला रहना आवश्यक है,
हर कोण से भलीभाँति अवलोकन, हर कोण से भलीभाँति निरिक्षण बहुत ही आवश्यक है, हर कोण से निष्पक्ष न्याय संगत परीक्षा पूर्ण हो, यह आवश्यक है,
परंतु यह भी सत्य है, कि सापेक्षिक दबाव में ही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है, जब तक किसी भी अर्थ में, किसी भी संदर्भ में कोई भी दृष्टिकोण बचा हुआ है,
अध्यारोप स्वाभाविक है, जब अपनी तरफ से किसी भी अर्थ में कोई भी दृष्टिकोण नही बचता, तभी शुद्धि पूर्ण है, और तब सत्य से ही सत्य जैसा है,ठीक वैसा स्पष्ट है,
पूर्ण केन्द्रीय स्पष्टता के निमित्त सम्यक् समर्पण पूर्ण होना आवश्यक है,
पारम्परिक दृष्टिकोण में एक कोण से ही बुद्धि खुली रहती है, पूर्ण केन्द्रीय सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त जब
हर कोण से, हर दृष्टिकोण से जब पूर्णतः बुद्धि खुल जाती है, तब अपनी तरफ से कोई दृष्टिकोण शेष नही रह जाता,
सत्य, से ही सत्य स्पष्टता के निमित्त स्थिति रहती है,

यथार्थ से ही यथार्थ स्पष्टता के निमित्त स्थिति रहती है|
पूर्ण केन्द्रीय सम्यक् यथार्थ दर्शन के निमित्त ही धर्म पूर्ण है, और उसी के अन्तर्गत वैज्ञानिक विकास भी पूर्ण है....

27 November 2020

लोक प्रचलित सत्य से सावधान रहो,
क्योंकि वे सब मत हैं, पक्ष हैं,
जो मत की परिधी में है, जो पक्ष, विपक्ष की परिधी में है,
वह कदापि सत्य नही है,
जैसे कोई सामान्य व्यक्ति कहता है,
कि हाँ यह घर है, यह वृक्ष है, यह पास में गाय खड़ी है,यह सत्य है,
अपेक्षित < स्वआरोपित दृष्टिकोण के स्वसम्मोहनवश वह सामान्य व्यक्ति पूर्व सुनिश्चित है,
पूर्व सुनिश्चित हो जाने पर फिर पूर्ण निष्पक्षतः शोध संभव नही है,
सामान्य व्यक्ति कारण के अर्थ में संवेदनशील नही होता,
न्यूटन के संबंध में एक कहानी प्रचलित है, एक दिन न्यूटन ने एक वृक्ष से फल को नीचे की ओर गिरते हुए देखा,
उसने निकट में ही किसी एक व्यक्ति से पूछा, यह फल नीचे की ओर ही क्यों आया, ऊपर की ओर क्यों नही गया,
इस पर वह व्यक्ति उसे
मूर्ख समझकर हँसते हुए बोला, नीचे की ओर ही तो गिरेगा, भला ऊपर की तरफ क्यों गिरेगा, इस कहानी में वह व्यक्ति घटना के संबंध में पूर्व सुनिश्चित था,
उसकी बुद्धि पूर्व सुनिश्चित परम्परागत् ढाँचे में बंद थी,
इसलिए उसका उत्तर यही हो सकता था,
पर वह बालक उस घटना पर कारण के अर्थ में संवेदनशील था,
इसलिए वह कारण के अर्थ में खोज के लिए प्रवृत्त हुआ, और उसने कारण के अर्थ में गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की खोज की,
आज के विद्यार्थियों को विशेषकर अंधविश्वास से अभिमुक्त हो, न्यूटन की इस कहानी से अवश्य ही अभिप्रेरित होना चाहिए,
और सतत् कारण के अर्थ में संवेदनशील हो शोधरत् रहना चाहिए,
यद्यपि न्यूटन भी पूरी तरह पूर्व सुनिश्चित पारम्परिक दृष्टिकोण से मुक्त नही था,
अन्यथा उसकी दृष्टि में नीचे-ऊपर का सापेक्षिक दृष्टिकोण भी नही होता,
जब कोई भी सापेक्षिक दृष्टिकोण नही बचता बस दर्शन मात्र में निमित्त की बस उपस्थिति भर की भूमिका होने पर ही तथ्य की यथावत् सत्यता स्पष्ट है,
सापेक्षिक दृष्टिकोण में नही,
सहज स्वाभाविक ठीक सीधे वर्तमान ही है, सहज स्वाभाविक ठीक सीधे जब दृष्टि
भलीभाँति स्थिर होती है, तो वर्तमान में ही दृष्टि भलीभाँति स्थिर होती है,
जीवन की हर समस्या का सम्यक् समाधान वर्तमान में ही है|

धार्मिक अंधविश्वास के रहते कदापि सम्यक् अनुसंधान संभव नही,
जो कारण की खोज नही करता, वही अंधविश्वासी होने के लिए विवश होता है,
प्रचलित वैज्ञानिक उपादान कारण के अर्थ में ही खोज के लिए संवेदनशील रहता है,
निमित्त कारण के अर्थ में खोज के लिए संवेदनशील नही होता है,
इसलिए उसकी खोज उत्तरोत्तर केन्द्रीय नही होती,
जिससे विशेषतः पदार्थवादी दृष्टिकोण में ही खोज के लिए उसकी विवशता स्वाभाविक है,
बुद्ध का प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत { अनुलोम क्रम (कारण)- ऐसा होने पर ऐसा होता है, विलोम क्रम (निरोध) -ऐसा नही होने पर ऐसा नही होता है,) भी
अपूर्णतः उपादान कारण को ही सिद्ध करता है,
निमित्त कारण को नही,
निमित्त कारण के बिना उपादान कारण सिद्ध नही हो सकता,
इसलिए गौतम बुद्ध के अपूर्ण प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धांत में निमित्त कारण का सम्यक् समाधान नही है,
(निमित्त कारण की भूमिका का निषेध होने से प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत अपौरुषेय ऋत् नियम नही है,)
अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार मूल निमित्त कारण (सम्यक् ईश्वर) की उपस्थिति भर की साक्षी में स्वभावतः(<ऋत् संकल्प से) उपादान कारण के अर्थ में भूमिका निर्भर है,
यही सनातन धर्म है,

(सम्यक् ईश्वर कहना उत्तरोत्तर सम्यक् दिशा में संकेत भर है, जिसका अभिप्राय प्रचलित पौरुषेय <श्रुति, स्मृति प्रमाण के अध्यारोपित> स्थापित हुए मिथ्या ईश्वर से नही है,)
निमित्त कारण की साक्षी में स्वभावतः
<जो ऋत् संकल्प है, ऋत् संकल्प से ही यह सम्पूर्ण अस्तित्वमान है,
अध्यारोपित धर्म पुस्तक कुरान में भी अल्लाह ने कहा कुन अर्थात् हो जा,
तो हो गया, इस तरह यह सारी कायनात वजूद में आयी, पर यह बस इशारा भर है, लक्ष्य की दिशा में संकेत भर है, जो ऋत् संकल्प के अधिष्ठान में सम्यक् अधिष्ठाता की
ओर ही लक्षित है,
सम्यक् अधिष्ठाता (का) ऋत् संकल्प कोई मानसिक संकल्प नही,
मानसिक संकल्प से उपादान संभव नही,
अध्यारोपित< पौराणिक ब्रह्मा का संकल्प व विश्वामित्र का अध्यारोपित संकल्प कदापि ऋत् संकल्प नही, मिथकों से सावधान रहो, मिथकीय अंधविश्वास से अभिमुक्त रहो, सम्पूर्ण मिथ्यात्व से अभिमुक्त उत्तरोत्तर सम्यक् शोधरत् रहो,
प्राचीन काल के ऋत् अभिप्रेरित सम्यक् ऋषियों के ऋत् अनुसंधान से अभिप्रेरित रहो, ऋत् अभिप्रेरित हो, शोधरत् होने से ही कोई सही अर्थ में ऋषि होता है,अध्यारोपित मंत्र द्रष्टा होने से नही,
लोकाचार में मंत्रद्रष्टा को ही प्रचलित वैदिक ऋषि कहा जाता है,
पर ध्यान रहे, पूर्व कल्प के अनुसार ही इस वर्तमान कल्प के आरंभ में भी अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यक् सनातन ऋत् वेद ही मात्र वेद था, छंदबद्ध मंत्रों के अध्यारोप से रहित सम्यक् संकेतार्थ >> ....
उस समय न ऋग्वेद था, न यजुर्वेद था,
न सामवेद था, और न ही अथर्ववेद था,
फिर भी छंदबद्ध मंत्रों से अध्यारोपित वेदों (ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद)
का मूल आधार अपौरुषेय ऋत् वेद ही है,
इसलिए अपौरुषेय ऋत् वैदिक ऋषि ही सम्यक् ऋषि है, न कि अध्यारोपित वैदिक ऋषि,
ऋत् संकल्प अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यक सनातन धर्म का संकल्प है,
अज्ञ मनुष्यों द्वारा स्थापित किए हुए मिथ्या ईश्वर का संकल्प नही,
ऋत् संकल्प पवित्र है, अज्ञ मनुष्यों के अध्यारोप (शरीक) करने से परे है,> पवित्र (पाक) है,
अध्यारोप रहित (लाशरीक) >> अंत रहित मात्र सम्यक् ओर ही समर्पित रहो|
अगर यथार्थतः सत्य तुम्हें स्पष्ट नही है,
तो उसे पूरी ईमानदारी से स्वीकार करो,
यह स्वीकारोक्ति ही तुम्हारी पहली ईमानदारी है,
जब तक यह पहली ईमानदारी नही होगी,
तब तक यथार्थतः सत्य स्पष्टता के निमित्त
इससे अगली ईमानदारी नही हो सकती|
क्रमशः

28 November 2020

28 November 2020

या तो किसी की उपेक्षा हो सकती है,
या किसी का महत्व हो सकता है,
यही सामान्यतः तुम्हारी व्यावहारिक प्रवृत्ति के अनुकूल है,
सामान्यतः व्यावहारिक धरातल में उदासीनता संभव नही है,
यह दार्शनिक बुद्धिवाद का एक आदर्श वाक्य है, जो सामान्यतः व्यवहार में लागू नही हो पाता,
सामान्यतः या तो तुम किसी की उपेक्षा कर सकते हो, या किसी को महत्व दे सकते हो,
इसलिए तुम्हें
उपेक्षा व महत्व इन व्यावहारिक गुणों का पूर्णतः सदुपयोग करना है,
उत्तरोत्तर नकारात्मकता की पूर्णतः उपेक्षा में रहना, व साथ ही उत्तरोत्तर सकारात्मकता में स्थिर होते जाना,
यही मार्ग है,
नकारात्मक की उपेक्षा से सकारात्मक में स्थिर होने के लिए बल है,
सकारात्मक में ठहरने से नकारात्मक के,
प्रति उपेक्षा के लिए बल है,
दोनों ही व्यावहारिक गुण सकारात्मक अर्थ
में एक-दूसरे के लिए बल का आधार है,
उत्तरोत्तर नकारात्मकता की उपेक्षा व उत्तरोत्तर सकारात्मकता में ठहरना,यही मार्ग है,
उदासीनता में आधा बल है,
उपेक्षा में पूरा बल है,
नकारात्मक के प्रति उदासीन होने की अपेक्षा उसकी उपेक्षा में ही पूरा बल है,
नशा, हिंसा, चोरी, झूठ, व्यभिचार, छल, धोखाधड़ी, कुसंग आदि नकारात्मकता की उपेक्षा पूरी हो, साथ ही श्वास के ज्ञान, इससे भी सीधे चित्त के ज्ञान, इससे भी सीधे स्वभाव के ज्ञान में भलीभाँति स्थिरता पूरी हो,
इस पर विस्तारपूर्वक इससे पहले
जगदीश्वरम् द्वारा सम्यक् निर्देश हुआ है, उससे अवश्य ही अभिप्रेरित हों .....

29 November 2020

जब तक नकारात्मक दृष्टिकोण बना हुआ है,
नकारात्मक आश्रय बना हुआ है,
तब तक कदापि नकारात्मक दबाव पर नियंत्रण
नही हो सकता,
पेंडुलम वाली पुरानी दीवाल घड़ी शायद तुमने देखी होगी, उस घड़ी में जब तक बैटरी रहती है, तब तक घड़ी में लगा पेंडुलम एक सिरे से दूसरे सिरे में चलायमान रहता है, जैसे ही बैटरी को निकाल देते हैं, तो वह पेंडुलम शीघ्र ही अपनी गति के आयाम को कम कर अपने मूल स्वाभाविक स्थिति अर्थात् ठीक मध्य में आ जाता है|
इस उदाहरण का संकेत तुम्हारे लिए प्रेरणादायी है,
तुम्हारे चित्त व श्वास की असहजता व चंचलता
अकारण नही है, नकारात्मक दबाव इसे असहज व चलायमान करता है, नकारात्मक दबाव रूपी यह बैटरी
जब तक निकल नही जाती, असहजता व चलायमानता
बनी ही रहेगी, नकारात्मक दबाव भी अकारण नही है,
यह भी नकारात्मक निमित्तों पर निर्भर है, जब तक नकारात्मक निमित्तों का आश्रय बना हुआ है, तब तक ही उसका दबाव प्रभावी है,
नकारात्मक निमित्त क्या हैं, तुम्हें पता ही है, क्योंकि सही क्या है, गलत क्या है, भला क्या है, बुरा क्या है, क्या श्रेयस्कर है, क्या व्यर्थ है, क्या सकारात्मक है, क्या नकारात्मक है इस बात का विवेक तुम्हारे पास है ही, अपने विवेक रूपी तराजू में
पूरी यथा सत्यता से> (ईमानदारी से) सम्यक् मापदंड के बांट से तौलो >भलीभाँति परखो|
कुसंगति, नशे का सेवन करना, चित्त को रंजित करने वाले मनोरंजन का आश्रय लेना, जिससे तुम्हारी सहज स्फूर्त चैतन्यता क्षीण होती है, गलत आदतों में ढलना, झूठ, बेईमानी, छल, धूर्तता, पाखंड,आदि...
यह सब नकारात्मक निमित्त है,जिनसे नकारात्मक दबाव बनता है, नकारात्मक दबाव का प्रभाव ही चित्त को व श्वास को असहज व चलायमान करता है, परंतु चित्त व श्वास की असहजता व चंचलता मूल स्वभाव से नही है,
उसका

मूल स्वभाव तो अपनी सहज स्वाभाविक स्थिति में ठहरने में ही है,
इसलिए जितनी ही उत्तरोत्तर नकारात्मता के प्रति पूर्णतः उपेक्षा होती है, और साथ ही जितना ही उत्तरोत्तर सकारात्मकता में ठहरना होता है,
उत्तरोत्तर उतना ही नकारात्मकता के दबाव का प्रभाव हटता जाता है,
इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रमशः नकारात्मक अर्थ के दबाव के प्रभाव के
हटने पर श्वास व चित्त दोनों की चंचलता व असहजता का आयाम शीध्र ही कम से कम होकर,
अंततः श्वास और चित्त दोनों ही अपनी मूल सहज स्वाभाविक स्थिति में आकर पूर्ण यथा सहजता के अर्थ में ठहर जाते हैं |
समर्पण जितना ही सही से सही अर्थ में,
सही से सही दिशा में होगा, पूरा होगा, उतनी ही सहजता बढ़ती जाएगी,
यह कोई शुष्क वैज्ञानिक प्रयोग नही है, सम्यक् समर्पण के बिना श्वास के प्रति पूर्णतः यथा सहजता पूर्ण नही हो सकती,
मात्र सही से सही ओर समर्पण ही सम्यक् अर्थ में समर्पण है,
सम्यक् निष्ठ हो, सम्यक् श्रद्धा से युक्त हो, सम्यक् जिज्ञासु हो, सम्यक् अर्थ में आचरणशील हो,
तो तभी सम्यक् मार्ग स्पष्ट हो सकता है|
लोकैेषणा से प्रेरित न हों, मान -सम्मान,पद,प्रतिष्ठा,यश,ऐश्वर्य,शक्ति लाभ से प्रेरित न हों,
ऋत् प्रेरित हों, मात्र सत्य जैसा है ठीक वैसा ही स्पष्ट हो, बस इस निमित्त से प्रेरित हो |
(सत्य क्या है?)
बस सही प्रश्न हो, तभी सही समाधान है,
सापेक्षिक प्रश्न > एकान्तिक प्रश्न > संबंधित प्रश्न से सावधान रहो, क्योंकि ये प्रश्न सहज स्वाभाविक मूल जिज्ञासा से सहज स्फुरित नही हैं,
ये बने बनाये हैं, आरोपित हैं,कृत्रिम हैं, सम्मोहन कारक हैं, पूर्ववत आभास में बांधने वाले हैं,
जब स्थूल से सूक्ष्मता की ओर सूक्ष्मतर होते हुए सूक्ष्मतम् तल तक के सभी स्तरों का समानान्तर क्रम का अतिक्रमण होगा, तभी पूर्णतः दृष्टि में आरोपित वक्रता भंग होगी,
और सीधे ही बिना किसी अंतराल के मात्र सत्य जैसा है, ठीक वैसा स्पष्ट होगा |
क्रमशः

30 November 2020

शास्त्रीय दृष्टिकोण अध्यारोपित है, तथ्यगत् नही,
अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टि में तथ्य की यथावत् सत्यता का स्पष्ट न होना स्वाभाविक है,
क्योंकि जहाँ भी अध्यारोप है, वहाँ उस अध्यारोप में सम्मोहन का होना स्वाभाविक है,
और जहाँ भी सम्मोहन है, वहाँ उस सम्मोहन में दिग्भ्रम का होना स्वाभाविक है, और दिग्भ्रम में यथावत् स्पष्टता का न होना स्वाभाविक है,
तथ्य, तथ्य की भाँति भलीभाँति यथावत् स्पष्ट हो,ऊ
इस निमित्त से यथा सजगतापूर्वक संवेदनशील होना आवश्यक है,
अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टिकोण साधारण जन समुदाय के लिए लोक में एक सीमा तक विकास व संतुलन के
निमित्त प्राथमिक आवश्यकता है,
अपौरुषेय सम्यक् धर्म स्पष्ट न होने से साधारण जनों को शास्त्र अभिमुख
अभिप्रेरित होना स्वाभाविक है,
मनमुखी होने की अपेक्षा शास्त्र अभिमुख होना निःसंदेह श्रेयस्कर है,
और शास्त्र अभिमुख होने की अपेक्षा अपौरुषेय ऋत् मुख होना श्रेयस्कर है,
अनुत्तर है,
साधारण जन समुदाय को मनमाना आचरण से बचना चाहिए, साधारण जन समुदाय को शास्त्र विधि का उल्लंघन नही करना चाहिए,
ऐसा करना निश्चय ही उनके अहित में है,
जहाँ उनका संतुलन व विकास का प्रभावित होना (भंग होना) निश्चित है,
ध्यान रहे, यहाँ शास्त्रीय दृष्टिकोण से सावधान केवल ऋत् अभिप्रेरितों को ही किया गया है,
न कि ऋत् अभिप्रेरणा से वंचित साधारण जन समुदाय को,
साधारण जनों के लिए शास्त्र विधि औषधिपरक है,
मनमुखी स्वेच्छाचारी मूर्ख जन ही शास्त्र की नकारात्मक उपेक्षा करते हैं,
हाँ यथार्थतः सत्य स्पष्टता हेतु शास्त्रीय दृष्टिकोण से अनपेक्ष होना अधिकारी भेद से अवश्य ही सम्यक् न्याय संगत है,

वामदेव आदि जो ऋत् अभिप्रेरित ऋषि हैं, उन्होने अवश्य ही तत्कालीन शास्त्र विधि की उपेक्षा की है,
(क्योंकि अध्यारोपित शास्त्र विधि से अपौरुषेय ऋत् अभिप्रेरित होना श्रेष्ठ है, उत्तम है,)
पर उनका अनुकरण करना ऋत् अभिप्रेरणा से वंचित साधारण जनता के सामर्थ्य से बाहर है,
अगर कोई सामान्य जन उनका अनुकरण करता है, तो उनका संतुलन व विकास अवश्य ही प्रभावित होगा,
इसलिए साधारण जनता को शास्त्र अभिमुख होना उनके स्तर से उचित है|
क्रमशः

****

01 December 2020

संतुलन को ही साधना है,
जिस निमित्त से संतुलन बने बस उसी निमित्त से रहना है,क्योंकि ध्यान में स्थिति का आधार संतुलन ही है,
संतुलन भंग होते ही ध्यान में स्थिति भंग हो जाती है,
इसलिए संतुलन के संदर्भ में संभलना बहुत ही आवश्यक है, संतुलन ही स्थिरता का आधार है,आसन की स्थिरता हो,
या ज्ञान में दृष्टि (नजर) की स्थिरता, संतुलन ही आधार है,
जिस निमित्त से भी संतुलन स्थापित हो बस उसी निमित्त से रहना है,
जैसे कोई पिस्तौल से निशाना साधने वाला जिस हाथ से निशाना साध रहा है, उस हाथ की स्थिरता को साधता है,
क्योंकि बिना हाथ की स्थिरता को साधे निशाना साधने में संतुलन नही बन सकता,
सामने की ओर लम्बवत हाथ की स्थिरता को भलीभांति साधते हुए ही
निशाने की सीध में सीधी सीध की रेखा, परिमाप के अर्थ में लंबाई व समय (line, length, timing)को साधता है, नजर को साधता है,
निशाना साधना भी एक तरह से ध्यान की ही साधना है,
वहाँ भी संतुलन, स्थिति,आधार के लिए संकेत है,
जो ध्यान के संदर्भ में बहुत ही आवश्यक है,
कहीं भी ध्यान के संदर्भ में आसन की स्थिरता ही ध्यान में
संतुलन का आधार है,
ध्यान के संदर्भ में आसन का बहुत ही महत्व है,
और पद्मासन तो सबसे उपयुक्त सबसे अनुशासनबद्ध व्यवस्थित व संतुलित आसन है, पद्मासन में कम से कम
३ घंटे भी यथा सहजता पूर्वक बिल्कुल भी बिना हिले-डुले भलीभाँति स्थिरता पूर्वक स्थिति बन जाए,
तो आसन की सिद्धि हो जाती है, जिन भले लोगों को
ध्यान के संदर्भ में क,ख,ग भी पता नही, कुछ भी न करे, बस चुपचाप श्वास पर नजर रखते हुए, सीधे पद्मासन में बैठते हुए यथा सहजता पूर्वक भलीभाँति स्थिरता को ही साध ले,
बस यही से संतुलन के निमित्त ध्यान के संदर्भ में संकेत स्पष्ट
हो जाएगा,
न तो आसन में आवश्यकता से अधिक ढील हो और न ही आवश्यकता से अधिक सख्ती, अगर आवश्यकता से अधिक ढील हो,
तो बहुत ही बारीकी से कुशलता पूर्वक यथा सहजता पूर्वक इतनी ही सख्ती करनी है,कि न तो यथा सहजता भंग हो, और न ही संतुलन भंग हो
इसी प्रकार अगर आवश्यकता से अधिक सख्ती हो गयी है,तब भी बहुत ही बारीकी से यथा सहजता पूर्वक आवश्यकता अनुसार इतनी ही ढील देनी है,
जिससे न तो
यथा सहजता भंग हो, और न ही संतुलन भंग हो, न ही स्थिरता भंग हो,
इस तरह से बहुत ही लंबे समय तक आसन में बैठा जा सकता है, न स्थिरता भंग होगी, न संतुलन भंग होगा,और न ही यथा सहजता भंग होगी, और न ही स्थिरता भंग होगी,
और यही बात संकेत अर्थ में दृष्टि के संदर्भ में भी है,
line, length, timing के संदर्भ में भी है,
अगर योग को जोड़ने के अर्थ में न लेकर साम्यता के अर्थ में लें तो अधिक उपर्युक्त है,
सीधे ही बस केवल ज्ञात भर होने की ठीक सीध में यथा सहजता पूर्वक भलीभाँति दृष्टि (निगरानी)का अविचल हो जाना ही ठीक-ठीक अर्थ में योग का अर्थ ग्रहण हो,तो अधिक उपर्युक्त है,
बाहर से आसन में स्थिरता व भीतर से ज्ञान की ठीक सीध में दृष्टि (नजर अर्थात् निगरानी) की स्थिरता पूर्ण
होने पर ही सही अर्थ में योग की पूर्णता का सूचक है,
साधना के आरंभ में सीधे ही मात्र ज्ञात भर होने की स्थिति संभव नही है,क्योंकि यह सिद्ध अवस्था है, यह साधक का व्यावहारिक लक्ष्य है, इसलिए मात्र ज्ञान में
सीधे ही भलीभाँति अविचल स्थिति नही होने से हतोत्साहित नही होना है, बल्कि पूरे उत्साह, पूरे उमंग
पूरे सत्साहस,व पूरी सत्य निष्ठा के साथ सम्यक् अभ्यास में तत्पर रहना है, अपनी तरफ से सम्यक् अभ्यास का निमित्त पूरा करना है......................
(मात्र ज्ञान में अभी सीधे ही स्थिति होना असंभव है, नियम विरुद्ध है, क्योंकि इससे पहले इससे पूर्व के साधनात्मक मापदंडों का निमित्त पूरा करना बहुत ही जरूरी है, इसलिए आरंभिक अवस्था मे श्वास के ज्ञान का अवलंबन
बहुत ही आवश्यक है,

सम्यक् प्रणिधान में रहते हुए श्वास की प्रकृति के अनुसार >>
श्वास के स्वरूप के अनुसार ही तुम्हें अभिप्रेरित रहना है,
जितना समय सामान्य श्वास के आने व जाने के मध्य के
अंतराल को स्थापित होने में लगता है,
उतने ही समय अंतराल में हर बार,अनवरत हर आती - जाती श्वास के ज्ञात होने में भलीभाँति संभलकर उपस्थित होते ही रहना है, जब तक कि उससे भी सीधे सीधी सीध स्पष्ट होने के लिए पूर्ण सकारात्मक दबाब (धनात्मक बल)
न बन जाए,
तब वहाँ उस सकारात्मक दबाव अर्थात् धनात्मक बल के अवलंबन में चेष्टा पूर्वक संकल्प से वहाँ पहले की अपेक्षा उस सीधी सीध में उपस्थित हो जाना है, इसी प्रकार उत्तरोत्तर क्रमशः वहाँ का भी मापदंड पूरा होने पर अंततः केवल ज्ञात भर होने की पूर्ण विशुद्धता में अविचलित स्थिति हो जाएगी,)
मात्र ज्ञात भर होने में भलीभाँति अविचल स्थिति लाभ १००% संभव है,
परम्परागत हठयोग की नेति,धोती,बज्रौली आदि षट्कर्म का अवलंबन लेने की
कोई विशेष आवश्यकता नही है,
प्राणायाम आदि प्रचलित जटिल यौगिक प्रक्रियाओं की कोई विशेष आवश्यकता नही,
प्रचलित कुण्डलिनी शक्ति के जागरण, क्रिया योग व चक्रों की धारणा में अलग
से उलझनें की जरूरत भी नही है,
दृष्टि व ज्ञान के संतुलन पर ही सम्पूर्ण नैमित्तिक योग का संतुलन टिका हुआ है, अलग से कुछ भी करने की जरूरत नही है,
मात्र ज्ञान का ठोस आधार लिए बिना, मजबूत अवलंबन लिए बिना योग बस एक क्रिया के अर्थ में ही है,
क्योंकि किसी भी क्रिया के होने पर प्रतिक्रिया के लिए दबाब अवश्य बनता है,
अगर ज्ञात भर होने का अवलंबन न हो,तो प्रतिक्रिया के लिए जो दबाव बनता है, उस दबाव के प्रभाव में आकर गिरने की पूरी ही १००% संभावना है,
इसलिए ज्ञान को महत्व देना है,
कृत्रिम योग पद्धतियों को नही,
संतुलन के निमित्त योग का निमित्त बस निमित्त भूमिका में रहे,
अवलंबन ज्ञात भर होने का ही रहे,
ज्ञात भर होने का आधारीय अवलंबन लिए बिना कोई भी योग का अवलंबन लेता है, वह निश्चित ही योगभ्रष्ट हो जाएगा,
भले ही योगी योग भ्रष्ट हो जाए,
पर कभी भी कोई ज्ञान भ्रष्ट नही होता,
क्योंकि कुशलता, सावधानी, सजगता, होश, नियंत्रण, संतुलन व स्थिति का आधार ज्ञात भर होने की स्पष्टता ही है,
इसलिए मात्र ज्ञान की (मात्र ज्ञात भर होने की) स्पष्टता से कदापि कभी भी गिरने की संभावना नही रहती,
मात्र ज्ञात भर होने की पूर्णतः पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में किसी भी अर्थ में किसी भी प्रकार का कोई भ्रम,संशय, संदेह, अज्ञान व दुःख बिल्कुल भी
नही रहता,
मात्र ज्ञात होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में
किसी भी प्रकार की कोई समस्या नही है,
किसी भी प्रकार का कोई सापेक्षिक प्रश्न नही है,
पूर्णतः पूर्ण सम्यक् समाधान स्पष्ट है..........
क्रमशः

01 December 2020

02 December 2020

'संतुलन' एक ऐसी स्थिर स्थिति है,
सामान्यतः जहाँ से गिरना नही होता,
साधनात्मक दृष्टिकोण में स्थिरता के परिप्रेक्ष्य में ही उत्तरोत्तर संतुलन को साधना पड़ता है|
साधनात्मक दृष्टिकोण में उत्तरोत्तर संतुलन में जो उत्तरोत्तर गति है, वह उत्तरोत्तर स्थिर होने के परिप्रेक्ष्य में है,
चलने अर्थात् आने-जाने (क्रिया) के परिप्रेक्ष्य में नही,
अंततः जब स्थिरता पूर्ण हो जाती है,
तब साधना का प्रयोजन पूर्ण हो जाता है,
पूर्ण स्थिरता के अर्थ में जब संतुलन पूर्णतः सध जाता है, (तब साधने के लिए शेष कुछ भी नही बचता,) ऐसी सहज स्थिति में तब पूर्ण सिद्ध अवस्था है|
आरंभिक धर्म साधना में श्वास की प्रकृति > श्वास के स्वरूप के अनुसार यथावत् श्वास के ज्ञान में यथा सहजतापूर्वक,
यथा संतुलन में रहते हुए,
भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थित रहना है,
जब श्वास के सापेक्षिक आभास का मध्य का अंतराल स्पष्टतः दर्शन में आता है,
तब उस स्थिति में उस अंतराल की सीध से (दृष्टा का) देखना होता है,
इससे भी सीधे जब चित्त के सापेक्षिक आभास का मध्य का अंतराल स्पष्टतः दर्शन में आता है,
तब उस स्थिति में उस अंतराल की सीध से (दृष्टा का) देखना होता है,
इससे सीधे ही सहज स्वभाव है, जहाँ फिर किसी सीध से देखना नही होता,
अपितु सहज ही सीधे दिखना भर होता है, यहीं पर निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की सहज भूमिका है,(दर्शनमात्र में उपस्थित भर होने की सहज भूमिका है,)
उससे पहले सापेक्षिक दबाव स्वरूप देखने की ही स्थिति ही होती है,
सहज दर्शन मात्र (दिखने भर) की नही|
सहज स्वभाव पृथक दृष्टा भाव का आरोप नही है,
बल्कि (दृष्टा की) दर्शन मात्र में
उपस्थित भर होने की मात्र निमित्त भूमिका है|
नकारात्मकता से शून्य व सकारात्मकता से पूर्ण के मध्य जो संतुलन है, वह पूर्णतः स्थिर संतुलन है, जो भंग नही होता,
(जहाँ से) गिरना नही होता है.......
क्रमशः

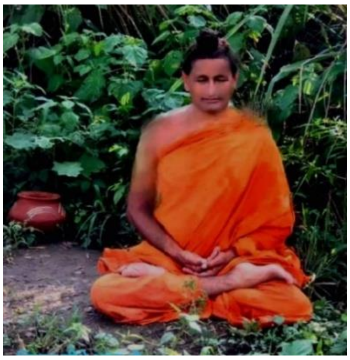

03 December 2020

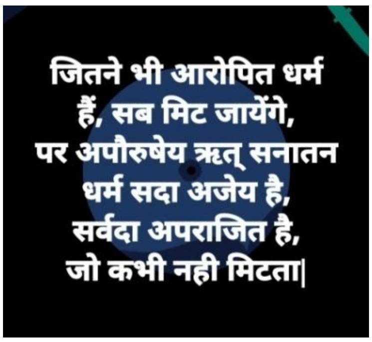

03 December 2020

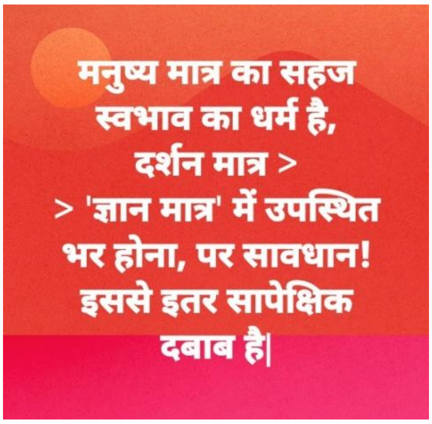

03 December 2020

आसन का भलीभाँति पूर्णतः स्थिर होना बहुत ही आवश्यक है,
उदाहरण के लिए जैसे कोई बंदूक से लक्ष्य (निशाना)
साधने वाला लक्ष्य को भलीभाँति देखते हुए, जिन हाथों में बंदूक पकड़े हुए है, उन हाथों को लक्ष्य की सीध में भलीभाँति स्थिर करता है, तत्पश्चात ही लक्ष्य साधता है,
अगर हाथों की स्थिरता भंग होती है, हाथ हिल जाते हैं, तो लक्ष्य भी चूकता है....
उस लक्ष्य साधना में लक्ष्य की सीध में हाथों का भलीभाँति स्थिर होना ही उस लक्ष्य साधना के लिए
आसन का दृढ़,स्थिर आधार है,
सम्यक् ध्यान अभ्यास में भी आसन का भलीभाँति सम्यक् अनुशासनबद्ध > व्यवस्थित संतुलित,अविचलित स्थिर आधार का होना आवश्यक है,
इसके लिए पूर्णतः सीधे व स्थिर वज्र पद्मासन का पूर्णतः स्थिर आधार की आवश्यकता है,
{पद्मासन ही एक ऐसा आसन है, जिसमें ऊर्जा की गति स्वाभाविक रूप से उर्ध्व गामी रहती है,
पद्मासन की दृढ़ स्थिर स्थिति को ही वज्रासन कहा जाता है, न कि प्रचलित योग के प्रचलित वज्रासन को,
नासाग्र की ठीक सीध की दिशा के अभिमुख सीधे व स्थिर पद्मासन
में बैठने से व नासाग्र की ठीक सीध में दृष्टि होने से ऊर्जा की दिशा भी ठीक सीधे से सीधे उस ओर ही होती है, ऐसी स्थिति में ऊर्जा बँटती नही है, ऊर्जा का अपव्यय नही होता,
ऊर्जा का पूर्ण संवर्धन व संरक्षण रहता है, और पूर्ण सदुपयोग रहता है,
इसी से पद्मासन में उत्तरोत्तर लंबे से लंबे समय तक बिना हिले- डुले भलीभाँति अविचलित स्थिरता पूर्वक बैठना संभव हो पाता है, अन्य आसनों में यह गुण नही है....
आसन इतना सीधा व स्थिर हो, कि बाल के हजारवें भाग के बराबर भी हिलना-डुलना न हो, पूर्णतः मूर्तिवत् स्थिर ....
आरंभ में साधक आसन की दृढ़ता व स्थिरता को ही साधता है,
यथा सहजता पूर्वक रीढ़ व गर्दन की हड्डी को एक सीध में सीधा स्थिर रखते हुए, न अकड़कर न ढील देकर
इस बात की सावधानी रहे,
और आसन में भी न अकड़कर बैठना है, और न ही ढीले होकर बैठना है, अपितु यथा सहजता पूर्वक यथा संतुलित मध्यम गति में ही निरंतर बार-बार उत्तरोत्तर लंबे से लंबे समय तक बैठने का अभ्यास जारी रहे,
संकेतार्थ इसी प्रकार से भीतर से दृष्टि (आंतरिक दृष्टि) को भी यथा सहजता पूर्वक अर्थात् न अकड़कर रखना है, न ढीले होकर रखना है, यथा संतुलित मध्यम गति में ही रखना है,
इस तरह से सम्यक् अनुशासन में दृष्टि लंबे समय तक बिना हिले-डुले स्थिर रह सकती है ....
आरंभ में सामान्यतः श्वास की प्रकृति के अनुसार, श्वास के स्वरूप के अनुसार ही संभलना है,उपस्थित होना है,
इस संदर्भ में जगदीश्वरम् द्वारा पूर्व की देशनाओं में संकेतार्थ दिशा निर्देश किया है,उससे अभिप्रेरित हो,अवश्य ही लाभान्वित हों,
यथा संतुलित मध्यम गति में न परिश्रम की अति है, और न ही सुस्ती है, इसलिए न तो थकान की संभावना रहती है, और न ही सुस्ती के कारण आलस्य व प्रमाद की ही संभावना रहती है, इसलिए लंबे समय तक यथा स्थिति का लाभ रहता है,
समानांतर अति से गिरना स्वाभाविक है,
पर यथा संतुलित मध्यम गति से गिरना नही होता है,
इस प्रकार से सप्ताह भर तक एक ही स्थिर आसन में बिना हिले-डुले बैठना भी संभव है, और उससे भी आगे तक .....}
आसन की क्या उपयोगिता है, सामान्यतः तुम्हें समझ में आ गया होगा,

नासाग्र की दिशा में भीतर अंतर में सामान्यतः श्वास के आने-जाने का आभास होता है,
यहाँ भी तुम उस दिशा में लक्ष्य साध रहे हो,
पहला लक्ष्य यही है, कि बिना कोई श्वास छूटे ठीक समय पर हर श्वास ज्ञात हो,
भले ही लक्ष्य की यह साधना आंतरिक है,
पर आंतरिक स्थिरता के लिए भी वाह्य स्थिरता का दृढ़ स्थिर आधार का होना बहुत ही आवश्यक है,
विशेषकर आरंभिक साधना में आंतरिक स्थिरता व वाह्य स्थिरता एक दूसरे का आधारीय बल है, आरंभिक साधना में बाहरी स्थिरता से भीतरी स्थिरता में यथा संतुलन में संभलना होता है,
और आंतरिक स्थिरता से बाहरी स्थिरता में यथा संतुलन में संभलना होता है,
वाह्य व आंतरिक स्थिरता के मध्य से ही यथा संतुलन में संभलना पूरा होता है,
बाहर से आसन में स्थिरता पूर्ण हो, भीतर से नासाग्र की ठीक सीध ^ जो आंतरिक दृष्टि की भलीभाँति स्थिरता के लिए एक दृढ़ स्थिर आसन का आधार है,
भीतर से वहाँ भलीभाँति स्थिरता पूर्ण हो,
यही सम्यक् अर्थ में यथा संतुलन का आधार है, सम्यक् अर्थ में यथार्थ स्थिति का आधार है |

04 December 2020

अभिचयनित सभी साधकों, उपासकों, आगंतुकों को सुचित किया जाता है,
कि आगामी रविवार को सुबह १० बजे से
सायंकाल लगभग ४ बजे तक सम्यक् सत्संग < ध्यान तथा
सामुहिक धर्म < साधनात्मक व दार्शनिक विमर्श का आयोजन है,
स्थान-टिहरी फार्म के पास टाईगर रिजर्व नेशनल पार्क > अभ्यारण्य क्षेत्र
तहसील-ऋषिकेश
जिला-देहरादून
राज्य-उत्तराखंड, राष्ट्र-भारत वर्ष
(भरतखंड)जम्बूद्वीप

04 December 2020

नासिकाग्र की सीध में जब दृष्टि का भलीभाँति संतुलन सध जाता है,
तब दृष्टि सहज ही सीधे स्थिर रहती है,
सहज ही स्थिर वर्तमान में,
ठीक वर्तमान में समय स्थिर है,

गति स्थिर है, दृष्टि स्थिर है, स्मृति स्थिर है, प्रज्ञा स्थिर है,ठीक सीधे ठीक वर्तमान में दृष्टि होने से ही (निमित्त को) ठीक इस क्षण की यथा सत्यता स्पष्ट है|
योग संतुलन का आधार है,
और संतुलन स्थिति का आधार है,
योग का तात्पर्य यहाँ प्रचलित कृत्रिम् योग पद्धति से नही है,
अपितु नासिकाग्र की सीध में ज्ञात होने की साम्यता में दृष्टि का भलीभाँति स्थिर होने से है,
इसमें लोक प्रचलित कृत्रिम् योग पद्धतियों का सहारा लेने की अतिरिक्त आवश्यकता नही है,
क्योंकि इस आरंभ रहित अपौरुषेय सहज स्वाभाविक निमित्त योग
में जिस समय जिसकी आवश्यकता है, हर नैमित्तिक संयोग की पूरी भरपाई है,
कृत्रिमता से अनपेक्ष हो सहज स्वभाव से अभिप्रेरित रहो,
प्रचलित कृत्रिम् योग पद्धतियों को करने की अतिरिक्त आवश्यकता उसे है,
जिसे अपौरुषेय सहज स्वाभाविक मार्ग स्पष्ट नही है,
जो सहज स्वभाव से अभिप्रेरित नही हैं,
वे ही नाना कृत्रिमता का सहारा लेते हैं,
यह उनकी विवशता है,
प्रचलित क्रियात्मक योग पद्धतियों में अभिप्रवृत्त होने पर एक सीमा के बाद क्रियात्मक दबाव के प्रभाव में गिरना हो ही जाता है,
इसलिए किसी का भी एक सीमा के बाद योगभ्रष्ट होना स्वाभाविक है,
अर्थात् क्रियात्मक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
पर दबाव रहित अक्रिय ज्ञान मात्र से भ्रष्ट होना असंभव है,
जिसकी अक्रिय ज्ञान मात्र में निष्ठा है,
कर्म में नही,
उसके लिए योग केंद्रीय नही है,
सहज अक्रिय ज्ञान मात्र ही केंद्रीय है,
पर अक्रिय सहज ज्ञान मात्र के अंतर्गत ^ 'ज्ञान मात्र' के अभिनिमित्त < अभिप्रयोजनार्थ सम्यक् साधन पाद के दृष्टिकोण से सम्यक् योग की अनिवार्यतः आवश्यकता अवश्य ही है,
सम्यक् अर्थ में योग की अनिवार्यतः आवश्यकता सम्यक् साधनात्मक नैमित्तिक
अभिप्रयोजन से है,
(ज्ञान मात्र के निमित्त ही सम्यक् अर्थ में योग का नैमित्तिक अभिप्रयोजन सिद्ध है,)
ज्ञान मात्र (के)निमित्त होने से ही दिग्भ्रम से मुक्ति है, दुःखद अज्ञानता से मुक्ति है|

05 Decemebr 2020

बिना किसी आरोप के जब सीधे ही दिखना होता है,
तब उस सीधे ही दिखने में सीधे ज्ञान मात्र ही प्रत्यक्षतः स्पष्ट है,
पर जब आरोपित कर्ता भाव में देखना होता है, तब सीधे ही > सीधा ज्ञान मात्र स्पष्ट नही होता,
अपितु संबंधित क्रिया का सापेक्षिक आभास होता है,
सीधे ही दिखने में किसी भी अर्थ में कोई भी दृष्टिकोण संभव नही, कोई भी आरोप संभव नही, कोई भी क्रिया संभव नही,
कोई भी प्रतिक्रिया संभव नही,
सीधे ही निभ्रान्ततः यथावत् दर्शन स्पष्ट है|
ध्यान रहे,
किसी अर्थ में आरोप होने पर ही किसी अर्थ में क्रिया का आरंभ होना स्वाभाविक है,
जहाँ क्रिया है, वहाँ दबाब का होना स्वाभाविक है.....

और जहाँ दबाव है, वहाँ गिरने की संभावना सुनिश्चित है,
पूर्ण सहजता में गिरना बिल्कुल असंभव है ......
इसलिए बिना किसी आरोप के सीधे ही दिखना क्या है,
और आरोपित कर्ता भाव में देखना क्या है, इस संबंध में सम्यक् विवेक का स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
अन्यथा गलती पर गलती होने की संभावना बनी ही रहेगी|
परहित, सेवा, दान, विनम्रता, सविनय, धैर्य, सहनशीलता,श्रद्धा, समर्पण आदि सकारात्मक अर्थ का निमित्त पुरा हुए बिना कदापि सहज सरलता संभव नही ,
ध्यान रहे, सहज ही जो सरलता है, इसके बिना सीधे ही बिना किसी आरोप के दिखना नही हो सकता..............
अहंकार के रहते कदापि सीधे दिखना कदापि संभव नही,
अध्यारोपित दृष्टिकोण के रहते बिना किसी आरोप के सीधे ही दिखने के निमित्त सहज सरलता कदापि संभव नही...........
जहाँ अहंकार है, वहाँ कर्ता भाव का आरोप स्वाभाविक है, जहाँ कर्ता भाव का आरोप है, वहाँ कदापि निभ्रान्त यथावत् दर्शन स्पष्ट नही|
ध्यान रहे,
जब तक सीधा प्रत्यक्षतः यथावत् दर्शन परिस्पष्ट नही,
तब तक दिग्भ्रान्ति स्वाभाविक है, भ्रम,संशय, संदेह, दुविधा, अज्ञानता, दुःख स्वाभाविक है...........

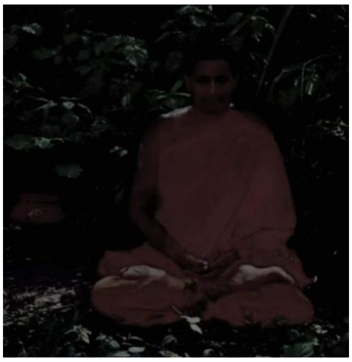

05 December 2020

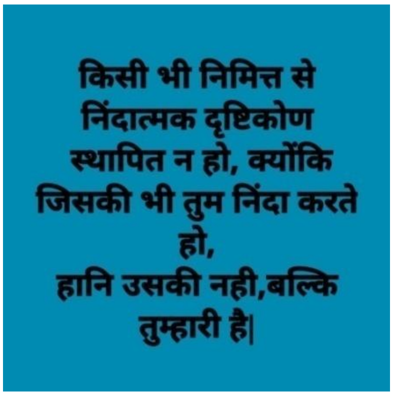

05 December 2020

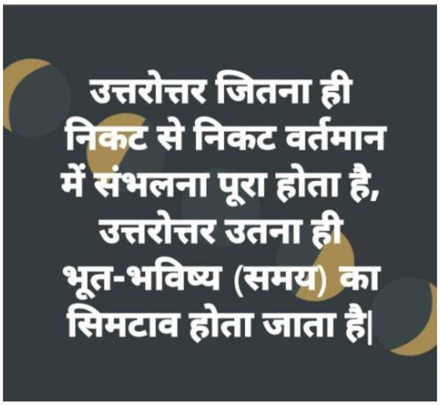

06 December 2020

उत्तरोत्तर जितना ही निकट से निकट वर्तमान में संभलना पूरा होता है,
उतना ही भूत-भविष्य (समय) का सिमटाव होता जाता है, अंततः जब सबसे निकट वर्तमान में संभलना पूरा हो जाता है,
तब समय का पूर्णतः सिमटाव हो जाता है|
नासिकाग्र की ठीक सीध में ही भूत-भविष्य (समय)का पूर्ण सिमटाव है,
अगर समय से मुक्ति चाहते हो,
तो नासिकाग्र की ठीक सीध में दृष्टि का भलीभाँति संयम पूरा करो,
नासिकाग्र की ठीक सीध में जब दृष्टि का भलीभाँति पूर्णतः सिमटाव हो जाता है,
तब समय (काल) से मुक्ति हो जाती है,
दूरी से, निकटता से मुक्ति हो जाती है,
गति से, पदार्थ से, द्रव्यमान से, आकाश से मुक्ति हो जाती है,
ऐसी स्थिति में सीधे ही नासिकाग्र की ठीक सीध से दर्शन होता है,
अभी स्थूल शारीरिक दाएं-बांए की दृष्टि धारा से ही देखने की तुम्हारी विवशता है,
जब भी तुम किसी विंदु विशेष को गौर से देखते हो, तब तुम्हारी दाएं-बांए की दोनों दृष्टि धाराओं का नाक के अग्रभाग में योग होता है,
उस योग में ही तभी तुम्हें वह विंदु विशेष भलीभाँति स्पष्टतः देखने में आता है,
यह प्राकृतिक संकेत तुम्हें नासिकाग्र (नाक के अग्रभाग) की ठीक सीध से दृष्टि खुलने के लिए अभिप्रेरित करता है,
अध्यारोपित शास्त्र जाल में मत उलझे रहो,परम्परागत् धार्मिक अंधविश्वास से मुक्त रहो,
प्राकृतिक संकेतों से अभिप्रेरित रहो,
कृत्रिमता से अनपेक्ष > सहज स्वभाव से अभिप्रेरित रहो, निश्चय ही ऋजु मार्ग स्पष्ट है|

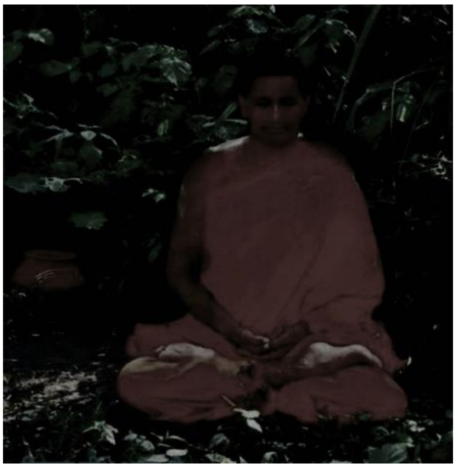

07 December 2020

सम्यक् निष्ठा में बिना किसी सापेक्षिक दबाव के सहज ही मात्र सही ओर ही निष्ठा है,
सम्यक् निष्ठ होना किसी भी अर्थ में निषेध अथवा समर्थन पर निर्भर नही है,
किसी अर्थ में तुलनात्मक अथवा उपमात्मक दृष्टिकोण पर निर्भर नही है,
सत्य बिना किसी दबाव के सहज स्वीकृत है,
सत्य निष्ठा में सीधे ही सत्य स्वीकार है,
सापेक्षिक निष्ठा में सीधे सहज ही प्रत्यक्षतः सत्य स्वीकार न होकर अप्रत्यक्षतः दबाव स्वरूप स्वीकार है,
अर्थात्
"यह सत्य है", इस अपेक्षित दृष्टिकोण में स्वीकार है|
जगत में दो ही तरह के लोग हैं,
एक वे हैं, जिन्हें यथार्थतः सत्य 'जैसा है,वैसा' स्वीकार है,

और दूसरे वे हैं, जो कहते है, यह सत्य है,
वह सत्य है, अर्थात् अपेक्षित दृष्टिकोण,
जैसे कोई ब्रह्म संबंधित धारणा को सत्य सिद्ध करने के लिए ब्रह्म सत्य है, कहता है,
तो इससे उसकी ब्रह्म संबंधित निष्ठा में बल होता है,अगर उसकी यह धारणा सत्य पर अवलंबित न हो, तो उसकी निष्ठा में बल नही हो सकता, पर उसकी इस अवलंबित निष्ठा के गहरे में संदेह तब भी बना रहता है, कि उसकी यह ब्रह्म संबंधित धारणा सत्य है,या नही,
उस संदेह को दबाने के लिए ही ब्रह्म सत्य है, कहने का उसका प्रबल आग्रह रहता है,
इसलिए किसी प्रबल मताग्रही को कहो,
एक तरफ सत्य है, एक तरफ ब्रह्म है,
किसे स्वीकार करोगे, तो उसका उत्तर होगा, ब्रह्म ही तो सत्य है,
उससे फिर कहो, ठीक है, ब्रह्म के सत्य होने से ब्रह्म (ब्रह्म संबंधित धारणा) की हानि नही है, पर अगर जिसे तुम ब्रह्म कह रहे हो, अगर वह सत्य नही है,
तब तो तुम्हारी हानि है,पर सत्य की तो किसी के भी सत्य होने या नही होने से कोई हानि है ही नही,
सत्य तो तब भी सत्य है, कुछ न कुछ तो
तब भी सत्य है ही,
सत्य की यथार्थता में कोई अंतर पड़ता ही नही,
तब तो सत्य स्वीकार होगा,
तब भी वह आवेशित होकर यही कहेगा,
ब्रह्म ही तो सत्य है,कैसे ब्रह्म सत्य नही है,
वह सीधे सत्य को स्वीकार नही करेगा,
हालाँकि जिसे वह मताग्रही सत्य कहता है,
वह सम्यक् सत्य नही है, बल्कि मिथ्या अपेक्षित दृष्टिकोण है,
इसी तरह किसी नैष्ठिक मुहम्मदी से कहो, अगर अल्लाह लाशरीक है, तब भी जो सही में लाशरीक है, उसमें कोई अंतर नही पड़ता,
अगर अल्लाह लाशरीक नही है,
तब भी सही में जो लाशरीक है, उसमें कुछ अंतर नही पड़ता,
तो जो सही में लाशरीक है, सीधे ही स्वीकार क्यों नही करते,
तो वह यही आग्रह करेगा, अल्लाह ही तो लाशरीक है,
वह भी सीधे स्वीकार करने को तैयार नही,
हालाँकि मुहम्मदी जो अल्लाह कहते हैं, वह भी अपेक्षित दृष्टिकोण से ही कहते हैं, और जो भी अपेक्षित दृष्टिकोण से है,
वह सही मायने में लाशरीक नही हो सकता,
और किसी परम्परागत् वेदान्ती का ब्रह्म कहना भी अपेक्षित दृष्टिकोण से ही है, जो भी अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
वह यथार्थतः सत्य नही,
लेकिन किसी सत्य निष्ठ को यही प्रश्न पूछो, तो वह सीधे ही सत्य स्वीकार करने की बात कहेगा, क्योंकि ब्रह्म सत्य है,
तब भी सत्य में कोई अंतर नही पड़ता, और ब्रह्म सत्य नही है, तब भी सत्य की सत्यता में कोई अंतर नही पड़ता,
सत्य तो तब भी जैसा है, वैसा ही है,
सत्य निष्ठ की कैसे भी, किसी प्रकार से भी हानि नही है,
(सत्य निष्ठा ही आधार है, यथार्थतः सत्य जानने की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा के अर्थ में शोधशील होने के लिए,)
हाँ ब्रह्म संबंधित धारणा में जिसकी निष्ठा है, उसकी ब्रह्म (ब्रह्म संबंधित धारणा) के सत्य नही होने पर अवश्य ही हानि है,
क्योंकि तब फिर वह भ्रम में है,
पर संदेह को दबाना उपर्युक्त नही है,
क्योंकि संदेह को दबाने से यथार्थतः सत्य जानने की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा दबकर रह जाती है,
प्रबल मताग्रह से संदेह दबता है,
पर संदेह का सम्यक् समाधान नही हो पाता,
इस तरह की जो निष्ठा है, वह अवलंबित निष्ठा है, सहज ही निष्ठा नही है, सापेक्षिक दबाव स्वरूप संबंधित निष्ठा है, जो अंध निष्ठा है,जो मिथ्या दृष्टि है,
सत्य निष्ठ को सत्य को सिद्ध करने लिए किसी अवलंबन की आवश्यकता नही होती,
सत्य बिना किसी निर्भरता, बिना किसी अवलंबन के सहज सिद्ध है,
(सत्य निष्ठा में सीधे मात्र सत्य ही मात्र सत्य अर्थ में स्वीकार है,
सापेक्षिक निष्ठा में निष्ठा सापेक्षिक दबाव स्वरूप सापेक्षता में होती है,)
एक सत्य निष्ठ के लिए किसी ईश्वर विशेष अथवा अल्लाह के सत्य होने अथवा नही होने से कुछ भी अंतर नही पड़ता,

पर किसी विशेष ईश्वर को मानने वाले को किसी ईश्वर विशेष के सत्य नही होने से अवश्य ही हानि है,
पर एक सत्य निष्ठ की कभी भी, कैसे भी, कहीं भी कदापि कोई हानि नही है,
क्योंकि किसी के भी सत्य होने अथवा सत्य नही होने से सत्य की सत्यता में कोई अंतर नही पड़ता|
सम्यक् निष्ठा में समग्रतः पूरा बल है,
सापेक्षिक निष्ठा में बँटा हुआ बल है|
यहाँ सम्यक् विवेक स्पष्ट हो,
अपेक्षित दृष्टिकोण की उपेक्षा पूर्ण हो,
इस निमित्त से ही न्याय संगत समालोचना की गयी है, निंदात्मक दृष्टिकोण से नही,
अधिक क्या कहना,समझदार के लिए इशारा काफी है|

08 December 2020

सीधे सहज स्वभाव से अभिप्रेरित रहो,
अध्यारोपित दृष्टिकोण से सावधान रहो,
परम्परागत् अध्यारोपित शास्त्रों से सावधान रहो,
अध्यारोपित कृत्रिम् धर्मों से सावधान रहो,
अध्यारोपित दृष्टिकोण के रहते
कदापि सहज स्वभाव से अभिप्रेरित होना संभव नही,
मूर्ख जन ही अध्यारोपित कृत्रिमता के सम्मोहन में दिग्भ्रमित हो, दुःख व शोक को प्राप्त होते हैं,
मनुष्य का स्वरूप सीधे सही दिशा की ओर (ऋजु मार्ग के लिए) सीधा संकेत है,
तुम अपनी शारीरिक संरचना का भलीभाँति अवलोकन करो,
आँखें कहाँ हैं, कान कहाँ हैं, नाक कहाँ है, जो अंग जिस कोण में, जिस स्थिति में, जहाँ हैं, वे सब वहीं हो सकते हैं, उनका जरा भी परिवर्तन नही हो सकता, यह प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है, क्योंकि जरा भी परिवर्तन हो जाए,
तो उठने-बैठने, चलने-फिरने,
सोने -जगने इत्यादि व्यावहारिक क्रिया
में संतुलन नही बन पाएगा, स्थिति नही बन पाएगी,
मनुष्य की शारीरिक संरचना में जो अंग जिस कोण में जहाँ हैं, व्यावहारिक संतुलन व सीधे मार्ग के लिए दिशा निर्देश हेतु प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है,
आँखें दाएं-बाएं नहीं हैं, सीधे सामने की ओर ही हैं, यहाँ यह संकेत है,
तुम्हें दाएं-बाएं नही देखना, सीधे ही देखते हुए चलना है, और तुम्हारे कान दाएं -बाएं हैं, जो सजगता का माध्यम हैं,
तुमने देखा होगा जब कुत्ते,खरगोश आदि संवेदनशील पशु सजग होते हैं, तो उनके कान खड़े हो जाते हैं, और आँखें नासाग्र की दिशा की ओर
सीधी व स्थिर हो जाती हैं,
प्राकृतिक ध्यान के संदर्भ में यह एक संकेत है,
कान तुम्हें सजग करते हैं, ताकि तुम्हारा ध्यान दाएं-बाएं न बँटने पाए,
जहाँ एक ऐसा संतुलन स्थापित होता है, जिससे तुम्हारी दृष्टि सीधे स्थिर रहती है,
अगर तुम्हारे कान दांए-बाएं न होते तो, तुम्हारी दृष्टि धारा विखर जाती,
नाक के अग्रभाग में उसका योग नही हो पाता, कान की प्रकृति, कान का विज्ञान, कान की संवेदशीलता तुम्हें सजग करती है,
ध्यान व दृष्टि धारा विखरने से रोकती है, अगर तुम्हारे कान दांए- बाएं न हो तो उठना, बैठना, चलना आदि व्यावहारिक क्रियाओं में संतुलन ही नही बन पाता, स्थिति ही नही बन पाती, कान ही नही,
शरीर के अंग जो जहाँ है, वहीं हो सकते हैं, अन्य स्थान पर नही, तभी संतुलन बना है, स्थिति बनी हुई है,
तुम्हारी नाक दोनों आँखों के मध्य में होती है, और वहाँ नाक का अग्रभाग
वहाँ मध्य के आधार से पैंतालीस अंश के कोण में है,
सामान्यतया जब तुम चलते हो,
तुम्हारी दृष्टि नाक के अग्रभाग की दिशा में चलने की प्रक्रिया के ज्ञान की ओर होती है,
तभी तुम्हारे चलने में संतुलन स्थापित होता है,
यद्यपि यह संतुलन पर्याप्त नही है,
क्योंकि इससे बस जीने की औपचारिक पूर्ति भर ही है,
पूर्ण केन्द्रीय स्थिर संतुलन नही,
भले ही यह पूर्ण केन्द्रीय संतुलन नही है,फिर भी इस औपचारिक संतुलन में

भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थिति का निमित्त पूरा होने पर अंततः पूर्ण केन्द्रीय संतुलन संभव है,
दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध पैंतालीस अंश के कोण में ही है,
बस उसी सीध में भलीभाँति स्थिरतापूर्वक दृष्टि रहे,
जरा भी दाएं-बांए नही,
नासाग्र की ठीक सीध में जब दृष्टि रहती है तो उस सीध
में सहज ही श्वास यथा सहजतापूर्वक होती है, श्वास का यथा सहजतापूर्वक होना दृष्टि का उसकी सहज स्वाभाविक सीध में स्थिर होने से है,
और श्वास के यथा सहजतापूर्वक होने में श्वास के यथावत् ज्ञान का स्पष्ट होना स्वाभाविक है,
(सहज श्वास के यथावत ज्ञान में < जब दृष्टि भलीभाँति स्थिर हो जाती है,
तब उत्तरोत्तर सही से सही दिशा का सीधा द्वार खुल जाता हैं..)
(कृत्रिम अध्यारोपित शास्त्रीय जाल से अनिमित्त हो, सहज स्वाभाविक संकेत के आधार पर यथा सहजता में यथा सजग रहते हुए संवेदनशील रहो,)
दोनों आँखों के मध्य की सीध में आधार से ४५ अंश के कोण में सीधे सामने नाक का अग्रभाग का होना, प्राकृतिक ज्यामितीय का यह अद्‌भुत संकेतप्रद उदाहरण है,
सीधे सही दिशा में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति के लिए प्राकृतिक ज्यामिति का यह संकेत बहुत ही महत्वपूर्ण है,
जब सामान्यतया चलते हो तो तुम्हारी दृष्टि लगभग नासाग्र की सीध की दिशा में ही होती है, तभी तुम्हारे चलने में संतुलन होता है, यह अनायास ही सहज स्वाभाविक प्राकृतिक योग है, इसमें बहुत ही गहरा प्राकृतिक संकेत है,
इस प्राकृतिक संकेत से अभिप्रेरित रहो, इस प्राकृतिक संकेत से जरा भी इतर (यहाँ-वहाँ) नही होना है,
बस यहीं से सीधे सही दिशा में संभलना है, ...
सहज स्वाभाविक संकेत के आधार पर दृष्टि की सहज स्वाभाविक स्थिति सहज श्वास के ज्ञान के ठीक सीध में ही है,
परंतु नकारात्मक दबाव का प्रभाव
दृष्टि व श्वास को उसकी यथा सहज स्थिति से चलायमान व असहज करता है,
इसलिए नकारात्मकता की पूर्ण उपेक्षा यह बहुत ही महत्वपूर्ण है,
*आरंभ में दृष्टि संयम कठिन जरूर है, पर नकारात्मक निमित्तों से पूर्णतः उपेक्षा होते ही यह सरल है, सहज है,
नकारात्मक निमित्तों का अपना कोई बल नही, तुमने ही उसे महत्व देकर उसे बल प्रदान किया है, जिन नकारात्मक निमित्तों को तुम्हारी महत्व बुद्धि महत्व देती है, उसका बल बढ़ जाता है, जिन नकारात्मक निमित्तों की तुम्हारी महत्व बुद्धि उपेक्षा करती है , उसका बल गिर जाता है, यह महत्व^बुद्धि का गुणधर्म है|
क्रमशः

09 December 2020

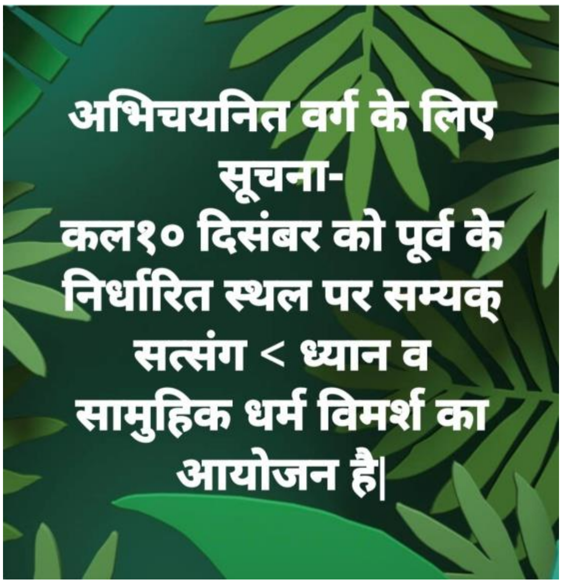

09 December 2020

जो अध्यारोपित दृष्टिकोण में बाँधे,
वह कदापि सम्यक् सद्धर्म नही है,

जो किसी अपेक्षित मताग्रह में, पक्षपात, दंभ, दुराग्रह, अहंकार, विद्वेषपूर्ण भावना आदि नकारात्मकता में बाँधे वह कदापि सम्यक् धर्म नही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण पर अवलंबित कोई मत अथवा संप्रदाय ही है,
अपितु सम्यक् सद्धर्म वह है,
जिसके अनुसार भलीभाँति सम्यक् पूर्वक आचरित होने पर अध्यारोपित (कृत्रिम्) दृष्टिकोण से अभिमुक्ति होती है, किसी भी अपेक्षित मताग्रह से, पक्षपात से अभिमुक्ति होती है,
वही सम्यक् सद्धर्म है,
सम्यक् सद्धर्म अनुशासन में यथार्थतः सत्य जानने की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा सहज स्फुरित रहती है,
यथार्थतः सत्य स्पष्ट हो, यही धर्म साधना का लक्ष्य है,
अध्यारोपित शास्त्र बुद्धिगत् तुष्टि में बाँधते है, बुद्धिगत् तुष्टि में यथार्थतः सत्य जानने की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा दबकर रह जाती है,
भ्रम में कोई भी नही रहना चाहता,
संशय में, संदेह में, अज्ञानता में कोई नही रहना चाहता, यथार्थ सत्य स्पष्टता में ही हर कोई रहना चाहता है,
यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है,
इस स्वाभाविक प्रवृत्ति मे सजग हो संवेदनशील रहो, ईमानदार रहो,
भ्रम,संशय, संदेह, अज्ञानता से मुक्ति
के लिए प्रयासरत् रहो|

10 December 2020

ब्रह्मचर्य को, संयम को
प्रकृति विरुद्ध कहकर निंदा करने वाले नीच पामर भला क्या जाने, कि पवित्र ब्रह्मचर्य वास का महत्व क्या है,
ब्रह्मचर्य पवित्रता है,शुद्धता है, आरोग्यता है,सक्षमता है, ओज है, तेज है, बल है, ऊर्जा है, ताजगी है, जीवंतता है,
ज्ञान मात्र के निमित्त भलीभाँति
स्थिरता के लिए बल का आधार है |
सम्यक् मार्ग के साधक के लिए पवित्र ब्रह्मचर्य वास ग्रहण करना प्रथमतः अनिवार्य है,
जो ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकते, उनके पास दृष्टि संयम के लिए बल का आधार भी नही हो सकता,
बिना ईंधन के भला क्या वाहन चल सकता है, ब्रह्मचर्य ईंधन है, ध्यान अभ्यास रूपी वाहन के लिए,
इसके बिना ध्यान अभ्यास के लिए बल नही |
तुम्हें मुख्यतः दो बातें सिखायी
जाती हैं,
ब्रह्मचर्य व दृष्टि संयम...
काम-वासना से विरत रहना,
अपनी अमूल्य जीवन ऊर्जा को बचाना,
और दृष्टि को उसके सहज स्वाभाविक ठीक सीध नासाग्र की ठीक सीध > ज्ञान मात्र के निमित्त भलीभाँति स्थिर करना,
(दृष्टि को नासिकाग्र विन्दु > श्वासाग्र विन्दु में भलीभाँति संयमित करना........)
ब्रह्मचर्य व दृष्टि संयम परस्पर एक-दूसरे के परिपूरक बल का आधार हैं,

परस्पर दोनों ही एक-दूसरे को बल प्रदान करते हुए अंततः जहाँ जिस स्थिति में ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है, वहीं दृष्टि संयम भी पूर्ण होता है, यही पूर्णतः सहज स्थिति है, इससे इतर तो दबाव ही दबाव है,
और उस दबाव में गिरना ही होता है, बार-बार दुःखद भव चक्र के सापेक्षिक वर्तुल में गिरना होता है,
ब्रह्मचर्य के बिना न तो दृष्टि संयम संभव है, और न ही दृष्टि संयम के बिना ब्रह्मचर्य संभव है,
साधक के लिए दोनों का साथ-साथ अवलंबन बहुत ही आवश्यक है.........
क्रमशः

11 December 2020

यथा सहजता पूर्वक गर्दन व रीढ़ की हड्डी को सीधा स्थिर रखते हुए, मुख के ऊपरी भाग में नासाग्र की ठीक सीध के अभिमुख अचल वज्र पद्मासन में स्थित हो,
स्मृति को भलीभाँति अविचल स्थिर रखो,
बिना श्रम के सफलता प्राप्त नही होती,
नासाग्र की ठीक सीध में स्मृति को भलीभाँति अविचल स्थिर करने का निरंतर श्रमपूर्वक अभ्यास बहुत ही आवश्यक है,
जिस दिशा में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उस दिशा में ही स्मृति भलीभाँति अविचल स्थिर होने पर सम्यक् अर्थ में स्मृति स्पष्ट हो जाती है,
सम्यक् स्मृति स्पष्ट होने पर फिर गिरने की संभावना नही रह जाती है,
अज्ञान के तल पर अगले ही क्षण क्या हो जाए, कुछ कहा नही जा सकता,
पर सम्यक् अर्थ में स्मृति स्पष्ट होने पर
भविष्य पर नियंत्रण हो जाता है,
सम्यक् ज्ञान की स्पष्टता में यहाँ-वहाँ के व्यर्थ के संस्कारजन्य स्मृति संग्रह के भार से मुक्ति है,
सम्यक् ज्ञान की स्पष्टता में जीवन के सारतम् भाग की स्मृति परिस्पष्टतः रहती है,
जो केन्द्रीय स्मृति है,
केन्द्रीय स्मृति स्पष्ट होने पर फिर विस्मृति नही होती,
पूर्ण केन्द्रीय आधारीय सम्यक् स्मृति में ही भलीभाँति पूर्ण संतुलन में सीधे ठीक वर्तमान में पूर्णतः भलीभाँति संभलना पूरा होता है|
(जहाँ) जीवन की यथार्थ सत्यता स्पष्ट है,
कोई भ्रम नही, कोई संशय नही,
कोई संदेह नही, कोई अज्ञान नही .....

12 December 2020

12 December 2020

हर कोई अपने मत को सत्य
व दूसरे मत को असत्य सिद्ध करने में लगा है,
हिन्दू, मुहम्मदी, ईसाई, बौद्ध आदि
सभी अपने-अपने अध्यारोपित शास्त्र प्रमाण के आधार पर अपने-अपने पक्ष को सत्य व दूसरे पक्ष को असत्य सिद्ध करने में संलग्न हैं,
जहाँ सभी मतावलंबियों का परस्पर मतभेद, परस्पर विरोधाभास व परस्पर विद्वेषपूर्ण भावना उजागर है,
विभिन्न राष्ट्रों का, धर्मों का, सभ्यताओं का परस्पर रक्त रंजित संघर्ष जारी है,
जाति, वर्ग, गोत्र, वंश, कुल, राष्ट्र, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति व सभ्यता के नाम पर मनुष्य विभाजित है,
मनुष्य जन्म हुआ, यहाँ तक तो कोई मतभेद नही है,
पर जन्म लेते ही किस जाति,वर्ग, गोत्र,कुल,राष्ट्र, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति,सभ्यता में जन्म हुआ,
इस संबंध में अभी-अभी जन्मे नवजात शिशु
का परिचय स्थापित हो जाता है,
उसी परिचय में, उसी पहचान में वह संस्कारित होता है, प्रशिक्षित होता है,
इन्हीं में से कोई हिन्दू होता है,तो कोई मुहम्मदी होता है, कोई ईसाई होता है,
तो कोई बौद्ध होता है, कोई जैन होता है, तो कोई सिक्ख होता है,
कोई यहूदी होता है, तो कोई पारसी होता है,
कोई आस्तिक होता है,तो कोई नास्तिक होता है,
कोई आत्मवादी होता है, तो कोई अनात्म वादी होता है, द्वैतवादी होता है,तो कोई अद्वैतवादी होता है, कोई ईश्वरवादी होता है, तो कोई अनीश्वरवादी होता है,
कोई मोमिन होता है, (तो उसके लिए) कोई काफिर होता है,
इसी संस्कारित परिप्रेक्ष्य में ही उसका अपना परिचय होता है, अपनी पहचान होती है, यहाँ तक कि उसकी अपनी दृष्टि में उसका यह उसका अपना अस्तित्व ही होता है,
दुर्भाग्य तो इस बात का है, कि इसी आरोपित परिचय में उसका पूरा जीवन चला जाता है,अज्ञान अंधकार में वह आजीवन मृत्युपर्यंत रहता है, इसी दुःखद अज्ञान अंधकार में उसकी मृत्यु हो जाती है,
जीते जी जन्म लेने का कारण स्पष्ट नही हो पाता,
जीवन रहते यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हो पाता,
प्रश्न यह नही, कि तुम कौन हो,
प्रश्न है, सत्य क्या है,
सत्य क्या है, इसी प्रश्न के आधार पर
अतंर्गत यह प्रश्न उत्पन्न होता है,
जन्म का कारण क्या है,
जन्म का कारण स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
क्योंकि इसी जन्म लेने का उद्देश्य क्या है,
यह प्रश्न भी छिपा है,
अगर कारण व उद्देश्य का सम्यक् उत्तर स्पष्ट नही हुआ, तो तब यह जन्म व्यर्थ ही गया|

कारण के अर्थ में संवेदनशील हो,,सत्य की खोज करो,तभी सम्यक् समाधान स्पष्ट है|

13 December 2020

जो है, जैसा है, अकेला है,
किसी से एक नही,
जैसा है, वैसा कोई भी नही,
जो न किसी से उत्पन्न है, जिससे न कुछ उत्पन्न है,
जिसका कोई पक्ष, विपक्ष नही,
जिसका कोई साझेदार नही, जिसका कोई शरीक नही, जिसमें कोई शामिल नही,
वास्तविक अस्तित्व
(हकीक़तन वज़ूद) उसी का है, जिससे दूसरा नही,
न ही उसने कोई रूप धारण किया,
न ही वह कुछ और हो गया, वह हमेशा से जैसा था, वैसा है, जैसा है, और हमेशा वैसा ही रहेगा,
साधारणतया यह जो कुछ भी कहा गया है, यह बस संकेत भर है >>.....
सम्यक् स्थित का ज्ञान अनादि है,अपरिमित है, आबाधित है,
मनुष्य का ज्ञान सीमित है, सापेक्षिक है,
संबंधित है, बाधित है,
सम्यक् स्थित < (सम्यक् ईश्वर) का संकल्प ऋत् संकल्प है,
जो मनुष्य का संकल्प नही,
अर्थात् मानसिक संकल्प नही,
यह जो कुछ भी आभास हो रहा है, मानसिक संकल्प से नही है, मानसिक दिग्भ्रम नही है, स्वप्नवत् नही है,
अपितु ऋत् संकल्प से होने से व्यावहारिक सत्य है,
अंतरहित सम्यक् ओर < सम्यक् यथार्थ < सम्यक् यथार्थ स्थित
< सम्यक् स्थित < सम्यक् ईश्वर से तात्पर्य यहाँ किसी अल्लाह,खुदा,गाॅड, ईश्वर, परमेश्वर,भगवान, बुद्ध, राम, कृष्ण, तीर्थंकर,ब्रहमा,विष्णु, महेश,नारायण,शिव,शंकर, इंद्र,वरूण,अग्नि, रूद्र,आदित्य, वसु,दुर्गा,गणेश,सूर्य, चंद्र,नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह,देवी-देवता,काल,पदार्थ, आकाश आदि व आत्मा, परमात्मा अथवा ब्रह्म संबंधित दार्शनिक धारणा से नही है|
{(>) > यह चिन्ह जिस दिशा में महत्व दिया है, उस दिशा की ओर संकेतार्थ है,}
यह व्यावहारिक जगत सम्यक् ईश्वर के ऋत् संकल्प से ही सत्य प्रतीत है,
ऋत् संकल्प का सूक्ष्म से स्थूलतर होता स्पंदन ही सूक्ष्म भौतिकी क्षेत्र (Quantum field) से लेकर वृहत्तर ब्रहमांड आकाश (Mutiverse space) तक का > व्यावहारिक जगत का आभास है,
ऋत् संकल्प के स्पंदन प्रभाव से ही सम्पूर्ण भूत समुदाय का
संकल्प परिचालित होता है, संचालित होता है,
ऋत् संकल्प कोई मानसिक संकल्प अथवा विचार नही,
सम्यक् यथार्थ अनुसार जो आदि स्पंदन है,
वही आदि स्पंदन ऋत् संकल्प है,
सत् अस्तित्व साक्षी में स्वभाव से ही जो संकल्प है, ऋत् संकल्प है|
तथ्यतः जैसा है,वैसा ही दिखने में > ज्ञात होने में भलीभाँति स्थिरतापूर्वक उपस्थिति के सकारात्मक > (धनात्मक) प्रभाव की पूर्णता में यथार्थतः सत्यता स्पष्ट है,
यथार्थ सत्य स्पष्टता में कोई भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई संदेह नही, कोई अज्ञानता नही,कोई दुःख नही|
• यहाँ पर जो है, जैसा है,
अकेला है.................
जिसमें कोई शरीक नही, शामिल नही.... आदि जो कुछ भी कहा गया है,
यह सब संबंधित व्यवहार में है,
वह बस संकेत मात्र है, सम्यक् स्थित के लिए,
ध्यान रहे, किसी वस्तु की ओर संकेत करने वाली अंगुली वह वस्तु नही है....
इसलिए सावधान,
संकेत को बस संकेत ही रहने देना है,
सम्यक् यथार्थ में यह,वह, सब इसका,उसका,सबका, इसने,उसने, इससे,उससे,क्या,कौन, किसे, कैसे, किसलिए, आदि कोई संबंधित व्यवहार नही है|
सम्यक् यथार्थतः सही में जैसा है,

वैसा ही है, सम्यक यथार्थ से इतर ही सापेक्षिक दबाव स्वरूप अध्यारोप संभव है,
नोट-संबंधित व्यवहार है,जो कुछ भी शब्द आदि माध्यम से इंगित है, संकेत भर ही है, जैसे सम्यक् यथार्थ यह शब्द भी संकेत भर ही है|
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म से इतर
जितने भी धर्म है, वे सब पौरुषेय हैं,
अर्थात् किसी न किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित हैं, जो सहज ही उपस्थित है,
उसकी अलग स्थापना नही करनी पड़ती,
जो सहज उपस्थित नही है,
उसी की अलग से स्थापना करनी पड़ती है
जिसमें क्रिया है, जहाँ भी क्रिया है,
वहाँ दबाव स्वरूप प्रतिक्रिया है,
और जहाँ भी दबाव स्वरूप प्रतिक्रिया है,
जहाँ भी प्रतिक्रिया स्वरूप है,
वहाँ से अवश्य ही अनवरत् दुःखद भवचक्र में गिरना स्वाभाविक है|
क्रमशः

14 December 2020

जिस सीध में श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उसी सीध में दृष्टि हो,
भलीभाँति स्थिरतापूर्वक दृष्टि हो, एकटक पैनी निगरानी हो,
इस तरह से सजग रहना है, सावधान रहना है, कि न तो दृष्टि (निगरानी) भंग हो,
न ही श्वास का ज्ञात होना भंग हो,
स्थिति भंग न हो, इसके लिए
दृष्टि व श्वास के ज्ञात होने के मध्य पूर्ण संतुलन का होना आवश्यक है,
दृष्टि व श्वास के ज्ञात होने के मध्य सीधी रेखा line, लंबाई Length, समय timing का पूर्ण संयोग
पूर्ण संतुलन के निमित्त बहुत ही आवश्यक है,
इसी परिप्रेक्ष्य में,
दृष्टि (निगरानी) से श्वास के ज्ञात होने में संभलना है, श्वास के ज्ञात होने से दृष्टि (निगरानी) में संभलना है,
इस तरह से न तो दृष्टि (निगरानी) भंग होगी,
न ही श्वास का ज्ञात होना भंग होगा,
हर श्वास ठीक समय correct timing पर भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात होगी,
यह पहला साधनात्मक अभ्यास है,
इसे पूरी निष्ठा < पूरी ईमानदारी से अवश्य ही पूरा करें|

15 December 2020
जिस आयाम dimension में, जिस समय रेखा time line में तुम्हारी व्यावहारिक स्थिति है,
यह जरूरी नही है,
कि किसी और आयाम में

इसी तरह के भौतिकी व गणित के नियम हों,
पर ऋत् नियम के संदर्भ में किसी भी आयाम में कोई अंतर नही है,
और यही हर आयाम के नियमों का आधार है,
ऋत् नियम स्पष्ट होने पर हर आयाम के नियमों की पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट हो जाती है, कुछ भी अस्पष्ट नही रह जाता है,
हाँ ऋत् नियम स्पष्ट हुए बिना
धर्म, दर्शन,भौतिकी, गणित,ज्यामिति आदि के कोई भी नियम,कोई भी सिद्धांत आदि
जो कुछ भी तुम जान रहे हो,
वह सब पूर्ववत् दृष्टिकोण के आयाम में है,
इसलिए जिस अयाम में सामान्यतः तुम जी रहे हो,
उस आयाम में किसी भी संदर्भ की पूर्ण सच्चाई स्पष्ट नही हो सकती,
किसी भी संदर्भ में पूरी सच्चाई का खुलना ऋत् ज्ञान स्पष्ट होने पर ही है,
ऋत् ज्ञान स्पष्ट हुए बिना किसी भी संदर्भ में, किसी भी अर्थ में भ्रम, संशय,अज्ञान
से मुक्ति नही है,
"ऋत्" ही सम्यक् अर्थ में सनातन धर्म है, जो सभी लोक प्रचलित
धर्मों का मूल आधार है,
बुद्ध का पटीच्च समुप्पाद (प्रतीत्य समुत्पाद) का नियम
भी अनात्म वादी दृष्टिकोण से प्रभावित होने से
निमित्त कारण की भूमिका को स्वीकार नही करता है,
निमित्त कारण की भूमिका स्वीकार नही होने से
बुद्ध का प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धांत भी अपौरुषेय ऋत् नियम (सनातन धर्म)
नही है, बल्कि एक कृत्रिम् सिद्धांत है,
यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है, पूर्व के बीतने पर जो दबाव बना है,उस पर निर्भर है,
पर उस दबाव में निमित्त की भूमिका अवश्य है,
बिना इसके न अंतराल सिद्ध होता है, न गति ही सिद्ध होती है,
अध्यारोपित आत्मवादी दृष्टिकोण के सम्मोहन में दृष्टा का आरोप स्वाभाविक है, जहाँ निमित्त की निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की भूमिका स्पष्ट नही है, हिन्दू परंपरा में अध्यारोपित आत्म वादी दृष्टिकोण के आधार पर सत्कार्य वाद का सिद्धांत प्रचलित हुआ,
द्वैत,अद्वैत, विशिष्टादैत,
शुद्धादैत, दैतादैत व त्रैतवाद इसी का विवादित विकास रूप है,
यह सभी अपौरुषेय ऋत् नियम (सनातन धर्म) नही है,
बल्कि अध्यारोपित कृत्रिम सैद्धांतिक पक्ष हैं,
पूरे विश्व में आत्म वादी व अनात्म वादी दृष्टिकोण के आधार पर मुख्यतः दो ही पक्ष हैं,
जहाँ आत्म वादी दृष्टिकोण वाले पक्ष में
हिन्दू, यहूदी, ईसाई, मुहम्मदी, जैन, सिक्ख, दयानंदी, पारसी,ताओ,कन्फुशियस, शिन्तो,अफ्रीकी व चीनी,जापानी लोक धर्म व अन्य कबिलियायी धर्म हैं,
और अनात्म वादी दृष्टिकोण में मुख्यतः बौद्ध धर्म है,
पर अपौरुषेय पवित्र सम्यक् सद्धर्म ऐसा धर्म है, जिसमें न आत्म वाद का दृष्टिकोण है,और न ही अनात्म वाद का दृष्टिकोण है,
आत्म वादी व अनात्म वादी दृष्टिकोण दोनों ही एक ही सापेक्षिक वर्तुल के दो अंत हैं, सापेक्षिक वर्तुल के किसी भी अंत में
पूर्ण केन्द्रीय संतुलन कभी भी स्थापित नही हो सकता,
वहाँ से तो गिरना ही होता है,
इसलिए न आत्म वाद, और न ही अनात्म वाद
दोनों के ठीक केन्द्र में निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थित भर की भूमिका
में ही पूर्ण केन्द्रीय संतुलन है, पूर्ण केन्द्रीय स्थिति लाभ है|
गीता में जो निमित्त मात्र भव का संदर्भ है,
वह संबंधित शरणागति के संदर्भ में > भावित भावना के संदर्भ में है,
गीता का दृष्टिकोण आत्म वादी दृष्टिकोण है,
इसलिए वहाँ निमित्त का संदर्भ आत्म वादी दृष्टिकोण से प्रभावित है, उस प्रभाव में निमित्त भाव आरोपित दृष्टा
के निमित्त है, जो निमित्त की बस औपचारिक भावित भावना भर है,
जहाँ निमित्त का दर्शन मात्र में सहज उपस्थित भर होना स्पष्ट नही है,
आत्म वादी अथवा अनात्म वादी दृष्टिकोण के रहते कदापि निमित्त की निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की भूमिका स्पष्ट नही हो सकती है,
जब तक दृष्टिकोण स्थापित है,

तब तक पक्षपात स्वाभाविक है,
तब तक यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
१०० डिग्री सेल्सियस तापमान में
पानी भाप बनकर उड़ने लगता है,
यह विज्ञान का नियम है,
विज्ञान का यह नियम जिस आधारीय नियम के आधार पर सिद्ध है,
वह नियम ही सार्वभौमिक सनातन ऋत् नियम है,
विज्ञान के पास कारण के अर्थ में सत्यता स्पष्ट नही है,
पूर्णतः सम्यक् समाधान नही,
अपौरुषेय सनातन ऋत् नियम में ही
कारण के अर्थ में पूर्णतः सच्चाई स्पष्ट है,
पूर्ण सम्यक् समाधान परिस्पष्ट है|
क्रमशः

16 December 2020

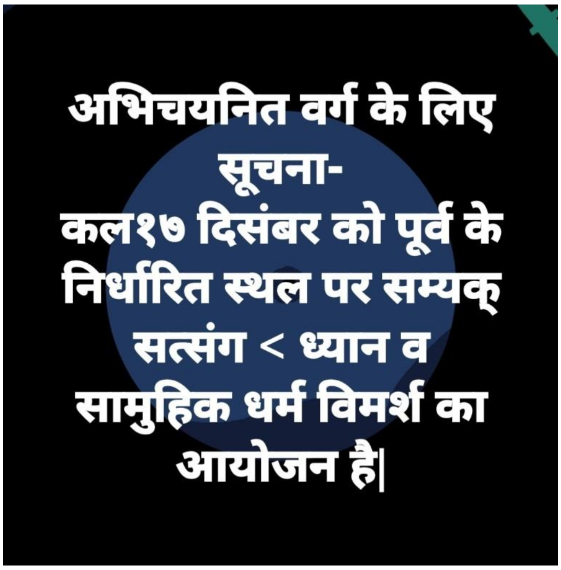

16 December 2020

सहज स्वभाव से अभिप्रेरित रहो,
मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का धर्म है,
तथ्यतः दर्शनमात्र में उपस्थित भर होना,
सहज स्वभाव का धर्म निर्विरोधतः सभी को सहज स्वीकार है,
सहज स्वभाव के अपौरुषेय धर्म की यह सनातन गरिमा है,
सभी स्थापित हुए कृत्रिम् धर्मो में
जो परस्पर मतभेद, विरोधाभास, विद्वेषपूर्ण भावना है,
उससे कोई भी स्थापित धर्म मनुष्य मात्र का सहज स्वभाव का अपौरुषेय धर्म सिद्ध नही होता,
यद्यपि स्थापित सभी धर्मों का मूल आधार अपौरुषेय सनातन धर्म ही है,
इसलिए हर स्थापित धर्म में बुराई के बावजूद कोई न कोई अच्छाई भी जरूर है,इसलिए किसी भी स्थापित धर्म के अनुयायी को उस धर्म की अच्छाई से अभिप्रेरित होना चाहिए,
पर सम्यक् अर्थ में कल्याण तो सभी स्थापित धर्मों के मूल आधार अपौरुषेय सनातन धर्म की शरणागति से ही है,
सभी स्थापित धर्म कभी न कभी,
किसी न किसी संस्थापक के द्वारा स्थापित हुए हैं, सभी का आरंभ है,
जिसका आरंभ है, उसका अंत भी है,
इसलिए कभी न कभी हर स्थापित हुए धर्म का अवश्य ही अंत है,
पर अपौरुषेय सनातन धर्म का कोई संस्थापक नही, किसी भी संस्थापक के द्वारा स्थापित नही है,
भला जो सहज ही उपस्थित है,

उसकी स्थापना का अर्थ ही नही,
जो सहज उपस्थित नही, उसी की अलग से स्थापना होती है,
इसलिए अलग से स्थापना नही होने से,संस्थापक नही होने से अनारंभ होने से, अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है,अध्यारोप रहित है,
आरंभ रहित है,
सनातन से सहज उपस्थित धर्म का कभी अंत नही है, शैव,वैष्णव,शाक्त, प्रचलित वैदिक, पौराणिक, मुहम्मदी,ईसाई, बौद्ध,
जैन,सिक्ख, पारसी,यहूदी आदि स्थापित हुए धर्म समाप्त हो जाएंगे,
पर अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म सदा अजेय है, सर्वदा अपराजित है,
कभी समाप्त नही होता,
मनुष्य मात्र की सहज स्वाभाविक भूमिका
कभी धूमिल नही होती,
ज्ञान मात्र में सहज उपस्थित भर होने की सहज सिद्ध भूमिका सदा सनातन है,अकृत्रिम् है, अध्यारोप रहित है,
यही मनुष्य मात्र के सहज स्वभाव का अपौरुषेय सनातन धर्म है,
क्रिया तुम्हारा धर्म नही,अध्यारोप तुम्हारा धर्म नही, स्थापना तुम्हारा धर्म नही,
बल्कि यह गुणों का > (गुणों के अपेक्षित निमित्त होने से) आरोपित धर्म है,
तुम्हारा धर्म तो बस उपस्थित भर होना है,
तुम अपने धर्म से हटकर
पराये धर्म अर्थात् (उपादान कारण)
< गुणों के धर्म को अपनाकर
ही दिग्भ्रमित हो, दुःख व शोक से आबद्ध हो,
गुणों का कार्य कदाचित तुम्हारा कार्य नही,
पर गुणों के कार्य को अपना कार्य मानकर
तुम कर्तापन के अभिमान दोष से बँध गये,
स्मृति रहे, गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही,
तुम्हारा धर्म गुणों का धर्म नही,
धर्मांतरण मत करो,
अपने धर्म में रहो, पराये धर्म को कदाचित
ग्रहण मत करो,
(ध्यान रहे, जो सहज ही उपस्थित है,
वह स्थापना का विषय नही,
स्थापना कृत्रिमता की होती है....)
निमित्त का धर्म क्या है, और उपादान कारण का धर्म क्या है, यह स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
तुम्हारा धर्म उपादान कारण का धर्म नही है,
गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही,
गुणों का कार्य तुम्हारा कार्य नही,
तुम्हारा धर्म बस उपस्थित भर होना है,
बस दर्शनमात्र में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति
का निमित्त पूर्ण हो,
ज्ञान मात्र <दर्शन मात्र में उपस्थित भर होने में ही तथ्यतः यथार्थ सत्यता स्पष्ट है,
सम्यक् यथार्थ दर्शन मात्र में भ्रम,संशय, अज्ञान, दुःख से मुक्ति है|
कुछ ऋत् असंगत < स्थापित धर्मों < इब्राहिमी धर्म
(विशेषकर दीन -ए- मुहम्मद) में एक ही बार का जन्म मानना, सारे मुर्दों का कब्रों से निकलकर एक साथ खड़ा होना, एक ही दिन में एक ही बार आरंभ से अंत तक तक के सबका एक साथ न्याय, फिर सदा के लिए स्वर्ग < जन्नत या नर्क < दोजख मानने की बात है,
विशेषकर मुहम्मदियों का इस तरह की और भी ऋत् असंगत < अन्यायपूर्ण व मूर्खतापूर्ण
बातों पर विश्वास करना बहुत ही भ्रमपूर्ण है, बहुत ही अज्ञानपूर्ण है, बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है, और जहाँ उनका इन मूर्खतापूर्ण बातों पर संदेह तक करना
पाप है,दीन से खारिज होना है,
जैसे कोई मूर्ख अपनी अंधी काल्पनिक भावना में आकाश को कपड़े की तरह लपेटता हो,इससे आकाश का कुछ बिगड़ता नही, उल्टा यह उसी मूर्ख का दिग्भ्रम है, गुमराही है, दुर्भाग्य है,
(ऋत् असंगत
अध्यारोपित अंधी भावना के भावित < भावनात्मक सम्मोहन में मुहम्मदियों आदि का दिग्भ्रमित होना स्वाभाविक है....

सभी को सम्यक् मार्ग स्पष्ट हो,
कोई भी दिग्भ्रमित न रहे, सबका सही अर्थ में मंगल हो...)
अपौरुषेय सनातन धर्म ऐसी अन्यायपूर्ण, मूर्खतापूर्ण बातों का कोई स्थान नही है,
अपौरुषेय सनातन धर्म पूर्णतः सत्य निष्ठा पर आधारित है, जरा भी मिथ्या दृष्टि नही,
जरा भी मिथ्यात्व नही, पूर्णतः तथ्यतः यथावत् दर्शन पर आधारित,
जरा भी दिग्भ्रम नही,
पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शिता..

17 December 2020

एक घंटे तक बिना चूके अगर हर श्वास जानने में आ जाती है,
तो एक घंटे के अंतिम समय तक श्वास का जानना पहले की अपेक्षा
और निकटता में, और सीधे, और स्पष्ट, और पारदर्शी होता है,
पहले की अपेक्षा और सरलता,और सहजता, और सजगता, और निर्दोषता, और स्फूति,और ताजगी, और
स्वस्थता का अनुभव होता है,
और एक घंटे में ही इतना सकारात्मक (धनात्मक) प्रभाव बन जाता है,
उस प्रभाव में
पहले की अपेक्षा दृष्टि (निगरानी) और सीधे सीधी और स्थिर हो जाती है|
अनवरत् अभ्यास जारी रखो,
उत्तरोत्तर बढ़ते सकारात्मक प्रभाव का लाभ लो,
जब बाहर पड़ी किसी चीज को गौर से लगातार देखने से वह चीज भलीभाँति स्पष्ट दिखाई देती है,
श्वास का आभास तो अंतर में हो रहा है,
वह भी ठीक सीधे सामने की ओर दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध में,
यहाँ तो भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात होना और सहज है,
इंटरनेट < चेटिंग आदि कृत्रिम गतिविधि ध्यानपूर्वक स्थिर होने के लिए बहुत ही घातक है,
इसमें काफी मानसिक & बौद्धिक ऊर्जा का ह्रास होता है, कृत्रिम् गतिविधि में मन थक जाता है, बुद्धि थक जाती है, दृष्टि थक जाती है,
स्मृति थक जाती है,
थकान में फिर ध्यानपूर्वक स्थिरता में बैठना हो ही नही सकता,
सुस्ती आ जाएगी, प्रमाद छा जाएगा
मूर्छा हावी हो जाएगी,
फिर मत कहना
ध्यानपूर्वक स्थिर होना नही हो पा रहा|
जब तक एक घंटे तक बिना चूके निरंतर श्वास का जानना न हो,
तब तक इंटरनेट आदि कृत्रिम् गतिविधि बहुत ही घातक है,
प्राकृतिक ध्यान से मानसिक & बौद्धिक
ऊर्जा का ह्रास नही होता है,
अपितु उत्तरोत्तर ऊर्जा उर्ध्वरत् हो बढ़ती ही जाती है,
श्वास की प्रकृति के अनुसार ही तुम्हारा ध्यान हो|
क्रमशः

18 December 2020

अंत रहित सही ओर ही समर्पण हो, निमित्त कारण (सम्यक् ईश्वर) सीधे ही अंत रहित सही ओर से है,
इसलिए अंत रहित सही ओर ही मात्र समर्पण हो,
मिथ्या दृष्टि के ईश्वर की कदापि उपासना नही हो,
निमित्त कारण के उपस्थित भर होने से ही
उपादान कारण का अस्तित्व निर्भर है,
निमित्त कारण के स्वरूप के अनुसार ही
तुम्हारी भूमिका, तुम्हारा धर्म बस उपस्थित भर होना है,
ज्ञान मात्र में उपस्थित भर होना,

इससे इतर कोई भूमिका नही, कोई धर्म नही,
गुणों का धर्म क्रियात्मक है,
है, क्रियात्मक दबाव में ही कर्ता का आरोप होता है,
उपस्थित भर होने में कर्ता का आरोप नही होता, कर्ता भाव का आरोप ही यथार्थतः स्पष्टता में व्यवधान है,
(ध्यान रहे, यहाँ गुणों का परम्परागत् अर्थ ग्रहण नही है,)
गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही,
तुम्हारा धर्म उपस्थित भर होना है,
ज्ञान मात्र के निमित्त, दर्शन मात्र में बस उपस्थित भर होना|
ठीक सामने सीधे >
नासिकाग्र की सीध में >
दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध में >
श्वास के अग्रभाग का ज्ञात होना है,
बस इसी सहज स्वाभाविक सीध में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति पूर्ण हो,
सहज स्वाभाविक सीध से जरा भी इतर
नही होना है,
नकारात्मक (ऋणात्मक) दबाव में ही ध्यान अपनी सहज स्वाभाविक ठीक सीध से इतर हो संबंधित (बँटा)रहता है,
नकारात्मकता के प्रति पूर्ण उपेक्षा का होना आवश्यक है, व साथ ही उसकी अपेक्षा जो सकारात्मक है,उसमें स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना भी आवश्यक है,
जैसे किसी बिमारी से ठीक होने के लिए दवाई के साथ- साथ परहेज जरूरी है,
अगर परहेज नही होगा,तो दवाई का असर नही होगा, और अगर दवाई नही ली जाएगी, तो परहेज करने का कोई फायदा नही,
इसी प्रकार नकारात्मक की उपेक्षा के साथ
सकारात्मक में उपस्थित होना आवश्यक है,
नकारात्मक (असत्य, हिंसा, व्यभिचार, चोरी, नशा आदि)
की पूर्णतः उपेक्षा व साथ ही श्वास के ज्ञान में उपस्थिति,
< (ध्यान रहे, यह प्राथमिक स्तर का ही संकेत है,)....
नकारात्मक की उपेक्षा, व साथ ही उसकी अपेक्षा जो सकारात्मक है, उसमें उपस्थित होना, इन दोनों का साथ-साथ होना आवश्यक है,
यह दोनों ही साथ-साथ एक-दूसरे का बल है, दोनों में से एक के भी नही होने से
दूसरे का बल नही,
दोनों ही परस्पर एक-दूसरे के बल का अवलंबन है, आधार है,
दोनों ही परस्पर एक-दूसरे को बल प्रदान करते हुए अंततः जब नकारात्मक का पूर्ण निषेध हो जाता है, तभी सकारात्मक भी पूर्ण हो जाता है,
जब ही नकारात्मकता की पूर्णतः उपेक्षा पूर्ण है, तब ही सकारात्मकता पूर्णतः पूर्ण है|

19 December 2020

19 December 2020

पूर्व के अनुसार इस बार भी वह अंतिम निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
इससे पूर्व अनंत बार अंतिम निमित्त पूरा किया, यह अनादि पुरुषोत्तम जगदीश्वरम् की चर्या (लीला) है |
इससे पूर्व अनंत बार
अनादि पुरुषोत्तम जगदीश्वरम् द्वारा अनंत कल्पों में सम्यक् निर्देशन किया गया था,
पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी
सम्यक् निर्देश हो रहा है,
यह चर्या (लीला)अद्‌भुत है|

19 December 2020

यह जो कुछ भी देखने में आ रहा है,
कुछ भी स्थिर नही है, कुछ भी नित्य नही है, सब अनित्य है,सब बीतधर्मी है,
इस बीतने को जो देख रहा है, वह स्थिर है,वह नित्य है,
जो बीत रहा है, उसका वह नित्य साक्षी है,
वह जो देखने वाला है, वह जो साक्षी है,
शुद्ध, बुद्ध, नित्य,मुक्त > आत्मा <
,,,,,,,, वही तुम हो,
(पर) ऐसा कहना सम्यक् यथार्थतः नही है, ऐसा कहना, अविद्या के कारण है, अविद्या के होने पर जो संस्कार (बीज) का अस्तित्व निर्भर है,
उस संस्कार (बीज) के स्वरुप के अनुसार ही आभास के तल पर ऐसा कहने का अपेक्षित आरोपित दृष्टिकोण बनता है,
जो सम्यक् यथार्थतः सत्य नही है,
यथार्थ में न कुछ बीत रहा है, न कुछ उत्पन्न हो रहा है, यथार्थतः जैसा है, वैसा ही है,
यथार्थतः न कुछ बीत रहा है, न कुछ उत्पन्न हो रहा है,
यथार्थतः न कोई आरोपित दृष्टा < देखने वाला है, न कुछ संबंधित दृश्य प्रतीत है,
यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है,
अविद्या के कारण है,
(अविद्या के होने पर < बीज अस्तित्व
के स्वरूप के अनुसार > यह प्रतीत है,)
{☆☆ दर्शन मात्र में बस उपस्थित भर होने की निमित्त की भूमिका अविद्या से अनपेक्ष है,
अविद्या के कदापि वशीभूत नही ☆☆}
बीतना, उत्पन्न होना अविद्या के कारण है,
यथार्थतः जैसा है, वैसा स्पष्ट नही होना "अविद्या" है,
अविद्या के होने पर ही संस्कार (बीज)
का अस्तित्व निर्भर है,
अविद्या अर्थात् यथार्थतः जैसा है, वैसा स्पष्ट नही होने पर ही
संस्कार अर्थात् बीज

(ठीक वैसा का वैसा भी नही, ठीक दूसरा भी नही)
यह निर्भर है, अर्थात् संस्कार (बीज)का अस्तित्व निर्भर है,
जो कुछ भी आभास हो रहा है,
उसका बीज अर्थात् संस्कार >
"बिल्कुल ठीक वैसा का वैसा भी नही,
बिल्कुल ठीक दूसरा भी नही,"
यही है,
यह जो कुछ भी आभास हो रहा है,
वह अविद्या के कारण अपने सनातन बीज के स्वरूप के अनुसार ही है,
अपने बीज के स्वरूप के अनुसार ही
जो कुछ भी उत्पन्न हो रहा है,
वह अपने से पूर्व के बीतने वाले से ठीक वही का वही भी नही है, और उससे ठीक दूसरा भी नही है,
अगर बिल्कुल ठीक वही का वही होता, तब भी यह बीतने व उत्पन्न होने का
आभास नही होता, और अगर बिल्कुल ठीक दूसरा होता, तो तब भी यह बीतने व उत्पन्न होने का आभास नही होता,
बीतने व उत्पन्न होने के आभास पर ही
यह सम्पूर्ण सापेक्षिक प्रपंच निर्भर है,
सम्पूर्ण अध्यारोपित शास्त्र प्रमाणों की मूर्खता सिद्ध है|
अविद्या का स्पष्ट न होना ही
दिग्भ्रमित होने का कारण है|
जैसा है, ठीक वैसा स्पष्ट नही है,
< यह स्पष्ट होना ही बोध है,
अर्थात् अविद्या का स्पष्ट होना ही
बोध का स्पष्ट होना है,
सम्यक् यथार्थ < बोध का विषय नही है,
सम्यक् यथार्थ "जैसा है, ठीक वैसा" कदापि कारण नही है,
अविद्या का कारण है,
इसलिए कारण के अर्थ में अविद्या के स्पष्ट होने में ही भ्रम, संशय अज्ञानता, दुःख से निवारण है, मुक्ति है,
पर लक्ष्य "यथार्थतः जैसा है, ठीक वैसा" स्पष्ट हो, यही होना चाहिए,
इस लक्ष्य की दिशा में
भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख का कारण स्पष्ट होगा, अर्थात् कारण के अर्थ में अविद्या की सत्यता स्पष्ट होगी,
यही सम्यक् बोध है,
अंतराल रहित "जैसा है,वैसा" कदापि
आत्मा, ब्रह्म आदि किसी भी अपेक्षित < संबंधित दृष्टिकोण का विषय नही है,
ज्ञान का, दर्शन का, स्पष्टता का, परिस्पष्टता का विषय नही है,
प्राप्ति का, होने का, बनने का विषय नही है, अहम् का अस्मिता का विषय नही है, अस्तित्व & अनस्तित्व का विषय नही है|

*** आरोपित दृष्टा नही,
अपितु दर्शन मात्र में उपस्थित भर होने में जो मात्र निमित्त है, (वह)> आरंभ रहित निमित्त ही
आरोपित दृष्टा >(साक्षी)> आत्मा की सत्यता है|
सापेक्षिक प्रपंच से अनपेक्ष > अंत रहित सही ओर ही समर्पित रहो|

20 December 2020

सामान्यतः तुम्हारा देखना लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम में है,
नासिकाग्र विन्दु में ही लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम का सिमटाव है,
(लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम में जो कुछ भी है, उस सब का सिमटाव है,)
लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आयाम की सत्यता नासिकाग्र के ठीक सीध के दर्शन मात्र में है,
नासिकाग्र विन्दु > (ठीक सीध) में भलीभाँति संयम पूरा होने पर
न आगे रह जाता है, न पीछे रह जाता है,
न ऊपर रह जाता है, न नीचे रह जाता है,
न दाएं रह जाता है, न बांए रह जाता है,

न दूरी रह जाती है, न गति रह जाती है,
न दिशा,न आकाश, न समय का बंधन,
अहो आश्चर्य,
अभी-अभी जो विश्व-ब्रह्माण्ड का अंतहीन फैलाव प्रतीत हो रहा था,
नासिकाग्र विन्दु > (ठीक सीध) में दृष्टि का पूर्ण सिमटाव होते ही कहाँ चला गया,
जैसे कि कुछ था ही नही....

21 December 2020

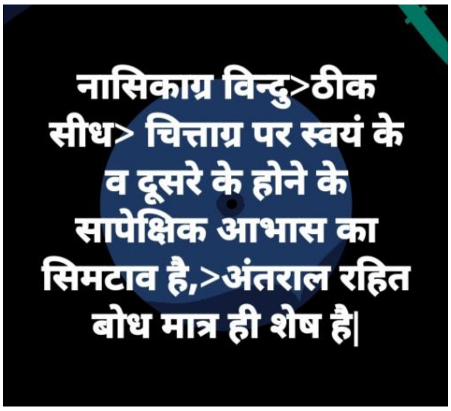

21 December 2020

सापेक्षता का पूर्णतः सिमटाव हुए बिना कदापि यथार्थतः बोध स्पष्ट नही हो सकता,
सापेक्षता के पूर्णतः सिमटाव हेतु ही धर्म साधना है,
सापेक्षता का सामान्यतः तात्पर्य है, >
किसी के होने पर ही किसी का निर्भर होना,
अर्थात् कारण के होने पर ही कार्य का होना निर्भर है,
जैसे दुःख है, यह बिना कारण के संभव नही है,
इसका कोई न कोई कारण अवश्य है,
जिसके होने पर दुःख की निर्भरता है,
दुःख का अस्तित्व है,
जब तक दुख का कारण है, तभी तक दुःख बना हुआ है,
कारण का होना सहज स्वभाव से नही है,
अपितु व्याकृत् स्वभाव से है,
अगर कारण का होना सहज स्वभाव से होता, तब तो दुःख का अंत ही संभव नही था,
जिसके होने पर दुःख है, उसके होने पर ही दुःख के होने के लिए दबाव बनता है,
और उस दबाव में ही दुःख उत्पन्न होता है,
अगर उस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति हो जाती है,
तो दुःख उत्पन्न नही होता है,

और अगर उस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति नही है,
तो दबाव स्वरूप दुःख का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
दबाव से अधिक सहजता की स्थिति
हो, इसी के लिए सम्यक् अभ्यास का अवलंबन है,
सहजता बढ़े, सजगता बढ़े, इसके लिए ही
सम्यक् अभ्यास का अवलंबन है,
नासिकाग्र की ठीक सीध में जब सामान्य दृष्टि का संयम पूरा होता है, तब सीधे नासिकाग्र की ठीक सीध से ही
दृष्टि होती है, जहाँ सामान्य दृष्टि की अपेक्षा उस सीधी दृष्टि में और सीधी सीध रहती है,
और स्पष्टता रहती है, और स्थिरता रहती है, और निकटता से दर्शन रहता है, और पारदर्शिता रहती है,
उस दृष्टि में चिदाभास के बीतने और उत्पन्न होने का मध्य का अंतराल दिखता है, (जो सामान्य दृष्टि में दिखने में नही आता है,
सामान्य दृष्टि में चिदाभास
नित्य, एकरस, स्थिर लगता है,
सामान्य दृष्टि में सामान्य श्वास के आने, जाने व उसके मध्य के अंतराल का आभास होता है, चिदाभास का मध्य का अंतराल
स्पष्ट नही रहता....)
उस दृष्टि से अर्थात् सीधे नासिकाग्र की ठीक सीध से सीधे जो दृष्टि होती है,
उस दृष्टि में चित्त > आभास का बीतना,उत्पन्न होना व मध्य का अंतराल दिखता है,
(जहाँ ऐसी स्थिति में ही चित्त > आभास के मध्य अंतराल में संयम हो सकता है,)
चित्त > आभास के मध्य अंतराल में भलीभाँति संयम पूर्ण होने पर फिर सीधे उस मध्य अंतराल की सीध से सीधे दृष्टि होती है,
उस दृष्टि में परिपूर्ण स्पष्टता रहती है, पूर्ण स्थिरता रहती है, पूर्ण निकटता रहती है,
पूर्ण पारदर्शिता रहती है,
जहाँ ऐसी स्थिति में स्वयं के होने व दूसरे के होने के सापेक्षिक आभास का सिमटाव है,
उस सिमटाव की दृष्टि में भी भलीभाँति पूर्ण संयम होने पर फिर अपनी तरफ से दृष्टि नही रह जाती,
अपनी तरफ से दृष्टिकोण नही रह जाता,
अपनी तरफ से आरोप, अध्यारोप, प्रत्यारोप नही रह जाता,
पूर्णतः सरलता, पूर्णतः सहजता,
पूर्णतः निर्दोषता, पूर्णतः पवित्रता रहती है,
तब सहज ही सीधे यथार्थ सत्य से परिस्पष्टतः सीधे दिखना भर (दर्शन मात्र) होता है,
उस सीधे परिस्पष्टतः दर्शन मात्र में सीधे निभ्रांततः यथार्थ सत्य ही स्पष्ट (रहता)है|

22 December 2020

दर्शन मात्र में < उपस्थित भर होने में < निमित्त की भूमिका हेतु, प्रत्यय पर अवलंबित नही है,अर्थात् प्रतीत्य समुत्पन्न नही है,अपितु
सहज स्वभाव से है,
ज्ञान मात्र में, दर्शन मात्र में उपस्थित भर होने में निमित्त की सहज भूमिका है, निमित्त की अलग से बात नही है,निमित्त की अलग
से बात करने से मत स्थापित हो जाता है,
ज्ञान कहने से ज्ञाता की उपस्थिति का
सहज ही संज्ञान होता है,
अगर ज्ञान (संबंधित ज्ञान) है, तो कोई न कोई उसका ज्ञाता अवश्य है,
ज्ञान मात्र में आरोपित ज्ञाता भाव तो नही होता, पर उसके शुद्ध स्वरूप
निमित्त के उपस्थित भर होने का निमित्त बोध अवश्य है,
ज्ञाता के शुद्ध स्वरूप निमित्त के उपस्थित भर होने के निमित्त के बिना ज्ञान मात्र की स्पष्टता नही है,
निमित्त के उपस्थित भर होने में ही ज्ञान मात्र की स्पष्टता है,
अन्यथा ज्ञान मात्र के स्पष्ट होने का अर्थ ही नही,
पर ज्ञान मात्र, निमित्त के निमित्त नही है,

निमित्त ही ज्ञान मात्र के निमित्त है,
इसलिए सीधे ज्ञान मात्र कहना ही उपर्युक्त होता है,
निमित्त को कहने की आवश्यकता नही है,
इसलिए भी क्योंकि दृष्टव्य > दृष्टा, ज्ञातव्य,> ज्ञाता, कर्तव्य > कर्ता का अहंकार संबंधित दोष आरोपित न हो,
पर ध्यान रहे, जो जिस अर्थ में है,
जो जिस अर्थ में है, उसी अर्थ में होने में उसका अस्तित्व है, उसकी शुद्धि है, उसकी तथ्यतः यथावत् सत्यता स्पष्ट है,
जो जिस कोण से, जिस दृष्टिकोणसे, जिस अर्थ में है, उसे उसी कोण में, दृष्टिकोण में, अर्थ में रहने देना है, अन्य कोण मे, अन्य दृष्टिकोण में, अन्य अर्थ में
आरोपित नही करना है, मिलाना नही है,
अन्यथा तथ्य का तो कुछ नही बिगड़ेगा,
तुम्ही दिग्भ्रमित रहोगे|
यहाँ भी ज्ञान मात्र को ज्ञान मात्र के अर्थ में रहने देना है, और निमित्त को निमित्त के अर्थ में,
ज्ञान मात्र के अर्थ को निमित्त के अर्थ में आरोपित नही करना है, मिलाना नही है,
तभी जो जिस अर्थ में है, उसकी यथावत् सत्यता स्पष्ट है,
न तो ज्ञान मात्र, निमित्त से एक है, न ही अलग है,
किसी भी "तथ्य" के संदर्भ में अपनी तरफ से अस्ति,नास्ति,उभय,नोभय
का आरोपित दृष्टिकोण नही हो,
तथ्यतः जो जैसा है, वैसा ही स्पष्ट हो,
इस निमित्त जब निष्ठा की शुद्धि पूर्ण होती है,
तभी निभ्रांततः तथ्य की तथ्यतः यथावत् सत्यता स्पष्ट है|

23 December 2020

23 December 2020

यथार्थतः जो जिस अर्थ में है, उसी अर्थ उसे रहने दो,
ठीक उसी अर्थ में होने में ही उसका विशुद्धतः होना है, ठीक उसी अर्थ में होने में ही यथार्थतः उसकी सत्यता स्पष्ट है,
पर तुम्हारा आरोपित दृष्टिकोण ही यथार्थतः सत्य स्पष्टता में बाधा है,
तुम अपनी तरफ से आरोप किए बिना मानते ही नही हो,
तुम आरोप करके ही रहते हो,
ध्यान रहे, तुम्हारे आरोप करने से तथ्य की तथ्यता में कोई अंतर नही आता, तथ्य का कुछ नही बिगड़ता,
तथ्य की कोई हानि नही होती,
इससे तुम्हारी ही हानि है, तुम अपने ही
आरोपित दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित हो,
(यथार्थतः सत्य स्पष्टता से वंचित हो,)
भ्रम, संशय, अज्ञानता,
दुःख व शोक में आबद्ध होते हो,
तुम अपने आरोपित दृष्टिकोण के कारण ही जन्मों-जन्मों से नाना दुःखद योनियों में
भटकते आए हो,
अगर अभी भी नही संभले तो अनुत्तर मनुष्य योनि में आने पर फिर से नाना दुःखद योनियों में भटकना पड़ सकता है,
मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है,
दिव्य योनि वाले देवता
भी मनुष्य योनि में जन्म लेने के लिए तरसते हैं, क्योकि जन्मों-जन्मों के दुःखद अज्ञानता से मुक्ति केवल मनुष्य योनि में ही संभव है, देव आदि किसी भी योनि में नही, पुण्य प्रभाव से मृत्यु उपरांत अगर कोई देव योनि में उत्पन्न होता है,

तो वहाँ पुण्य क्षीण होने पर फिर से
किसी अन्य योनि में जन्म लेने की उसकी विवशता रहती है,
दिव्य लोक में देवताओं का शरीर दिव्य अवयवों से निर्मित होता है,
दिव्य धातु अवयवों से युक्त दिव्य शरीर में
सुख की ही अतिरेक अनुभूति होती है,
कष्ट की नही, श्रम,कष्ट,पीड़ा की संवेदनशीलता
दिव्य शरीर में नही होती,
दिव्य लोक में विशेषतः श्रम नही होता है,
वहाँ सामान्यतः बिना श्रम के ही इच्छित पदार्थों का उपभोग संपन्न होता है,
इसलिए देव योनि सामान्यतः एक भोगयोनि है,
विशेषतः कर्मयोनि नही,
जिन्होंने नर्क जाने योग्य पापकर्म किए हैं, वे मृत्यु उपरांत नर्क में उत्पन्न होते हैं,
नरक संबंधित योनि में उत्पन्न होने वालों का शरीर
कष्ट का ही अतिरेक अनुभव करने में
सक्षम है, विशेषतः सुख की संवेदनशीलता
नारकीय योनि के शरीरों मे नही होती,
घोर पापकर्मों के फलस्वरूप नर्क में यथा सहनशीलता के बाहर अतिशय कष्ट को ही भोगने की विवशता बनी रहती है, लाचारी बनी रहती है,
पृथ्वी ग्रह में मनुष्य शरीर हाड़,मांस आदि से संयुक्त >संबंधित ठोस पिंड में होता है, उसमें एक सीमा तक ही
प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार उसमें एक सीमा तक ही सुखद व दुःखद दोनों तरह की अनुभूति होती है,
इसलिए मनुष्य योनि ही धर्म साधना के लिए अनुकूल होता है,
एक सीमा तक ही दुःखद व सुखद संवेदनशीलता होने से ही यथा संतुलन में संभलना पूरा हो पाता है,
एक सीमा तक की दुःखद संवेदनशीलता में ही प्रमाद भंग होता है, मूर्छा भंग होती है, सजगता बढ़ती है,
जो सम्यक् बोधपूर्णता के लिए बहुत ही आवश्यक है,
अगर एक सीमा तक दुःखद संवेदनशीलता न हो,तो वेदनाओं को सहन व वहन करना कदापि संभव नही हो पाता,
विशेषतः दुःखद संवेदनशीलता न होने से मनुष्यों की तरह देवताओं के पास भलीभाँति संभलने के लिए यह अवसर नही है, यह सौभाग्य नही है,
और पापकर्मों के फलस्वरूप नर्क संबंधित योनियों में विशेषतः जहाँ दुःखद संवेदनशीलता की ही अति है,
वैसा अगर मनुष्य योनि में होता,
(यद्यपि ऐसा होना प्रकृति विरुद्ध है, जो संभव नही है,)
तो अवश्य ही मनुष्यों की यथा सहनशीलता से बाहर था, यथा सहन शक्ति से बाहर था,
और ध्यान रहे,यथा सहनशीलता से बाहर
यथा सहजतापूर्वक सजग हो,संतुलन में संभलना संभव नही है,
(एक सीमा तक जो दुःखद संवेदनशीलता है, एक सीमा तक जो सुखद संवेदनशीलता है, जो यथा सहनशीलना की सीमा में है, वहीं संतुलन में संभलना पूरा हो सकता है,)
अगर देवताओं की तरह मनुष्यों मे विषय सुख की ही अतिशयता होती, तब तो अतिशय विषय सुख की गहन तदात्म्यता में संभलने का अर्थ ही नही रह जाता,
इसलिए यथा सहनशीलता की सीमा तक ही दुःखद संवेदनशीलता का होना,
और सुखद संवेदनशीलता का होना,
संवेदनाओं का यथा सहनशीलता के बाहर होने पर जहाँ गहन मुर्छा (कोमा) में जाना जहाँ अतिशय कष्ट अथवा अतिरंज से बचाव है,
ऐसा संतुलित समीकरण मनुष्य जन्म के लिए सौभाग्य की बात है,
ऐसे संतुलित समीकरण में ही यथा सहजतापूर्वक सजग हुआ जा सकता है,
जहाँ सम्यक् यथार्थतः बोध के महानतम लाभ की पूरी संभावना है,
नर्क में उत्पन्न होने वालों का सामान्यतः
इस तरह से गहन मूर्छा (कोमा)
में जाने का बचाव नही है, इसलिए हे पाप कर्म करने वालो सावधान!
प्रायश्चित कर पुनः पाप न करने का दृढ़ संकल्प लो,
पुण्य कर्म का फल सुखद है,
पाप कर्म का फल पीड़ा दायक है,
कर्म के अनुसार ही फल का उपभोग है,

कर्म के होने पर ही उसके अनुसार फल के लिए जितना दबाव बनता है, उतना ही फल मिलता है, उससे न अधिक न कम,
सदा के लिए न स्वर्ग का फल है, न ही नर्क का फल है,
मृत्यु के समय जैसी चैतसिक प्रवृत्ति बनी रहती है,उसी चैतसिक प्रवृत्ति के अनुसार अगला जन्म होता है,
अगर उत्तम् गति चाहते हो,
तो श्वास के बीतने पर जो दबाव बनता है, उस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति, और इससे भी सीधे चित्त > आभास के बीतने पर जो दबाव बनता है
उससे अधिक सहजता की स्थिति होनी अनिवार्यतः आवश्यक है,
इसके लिए अनुत्तर सम्यक् मार्ग है|
कर्म के होने पर ही फल के लिए दबाव बनता है,उस दबाव से अधिक अगर सहजता की स्थिति हो गई,
अर्थात् उस दबाव पर नियंत्रण हो गया,
तब तो कर्म व कर्म फल से मुक्ति हो जाती है, और मोक्ष के परिपूर्ण आनंदातिरेक का लाभ होता है,
कर्म & कर्म फल > भव बंधन से मुक्ति के लिए सुनिश्चित सम्यक् मार्ग है,
हर कोई चाहे वह किसी भी योनि में हो,
सभी मोक्ष के ही मार्ग में है,
सभी का मोक्ष होना सम्यक् न्याय क्रमगत् सुनिश्चित है,
मनुष्य योनि से ही मोक्ष है,
सामान्यतःजन्म - मृत्यु, बंधन-मोक्ष
का सनातन चक्र अनवरत् है,न इसका आदि है, और न ही अंत|
धर्म साधना के लिए जैसा जैसा अनुशासनबद्ध संतुलित स्थिर आसन हेतु जैसा शरीर चाहिए,
स्थिरतापूर्वक अधिष्ठान के लिए जैसी दृष्टि,
जैसी चैतसिक प्रवृत्ति, जैसी व्यावहारिकता, जैसी स्मृति, जैसा मन, जैसी बुद्धि, जैसा गुणधर्म, जैसी प्रकृति चाहिए,
वैसा केवल मनुष्य योनि में ही संभव है, अन्यत्र नही,
अहो क्या ही उसका सौभाग्य है,
जिसने मनुष्य योनि में जन्म लिया, व मनुष्य योनि में जन्म लेने का उद्देश्य पूरा किया,अन्य तो जीने की बस औपचारिकता ही पूरी करते हैं,
इसलिए हे मनुष्यो,
सभी योनियों में उत्तम मनुष्य योनि में
जन्म लेने पर भी अगर यथार्थतः सत्य क्या है, < यथार्थ बोध के लिए नही संभले तो,
तो यह तुम्हारे लिए बहुत ही बड़ा दुर्भाग्य है, फिर तुमने अतिदुर्लभ महान अवसर खो ही दिया|

24 December 2020

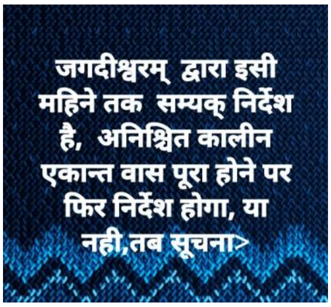

24 December 2020

24 December 2020

श्वास के जाने पर ही श्वास के आने के लिए दबाव बनता है, इस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति हो,
अर्थात् इस दबाव पर नियंत्रण हो,
इसके लिए आरंभ में कम से कम एक घंटे तक हर श्वास का ठीक समय पर ज्ञात होना आवश्यक है,
जब तक श्वास संबंधित दबाब से अधिक
सहजता की स्थिति न हो जाए,
तब तक हर श्वास भलीभाँति ज्ञात होती रहे,
जिस दिशा में श्वास का आभास हो रहा है,
उसी दिशा में स्थिरतापूर्वक उपस्थित भर रहना है, उसी दिशा में सहज ही हर श्वास भलीभाँति जानने में आएगी,
जब तक ज्ञान मात्र स्पष्टतः शेष न रह जाए,
तब तक निरंतर ही श्वास का आना,जाना ज्ञात होता रहे,
इससे भी आगे > इससे भी सीधे आभास का बीतना व उत्पन्न होना निरंतर ज्ञात होता रहे|
ध्यान रहे, क्रिया से क्रिया में नियंत्रण संभव नही है, ज्ञान मात्र में सहज ही क्रिया में नियंत्रण है|
आरंभ में जिस दिशा में श्वास का आभास हो रहा है, उस दिशा से तुम्हारी उपस्थिति भंग नही होनी चाहिए,
इस बात की पूरी सजगता रहे, पूरी सावधानी रहे|
संबंधित ज्ञान में ज्ञाता की उपस्थिति आरोपित है,
इसलिए संबंधित ज्ञान में ज्ञाता व ज्ञेय के सापेक्षिक < संबंधित होने से
ध्यान बँटता है,
पर ज्ञान मात्र में निमित्त मात्र की उपस्थित भर होने की भूमिका सहज है,
ज्ञानमात्र परिपूर्ण है, अखंड है, स्थिर है, ज्ञानमात्र में ध्यान नही बँटता है,
श्वास के जाने पर श्वास के आने के लिए जो दबाव बनता है,
अगर उससे अधिक सहजता की स्थिति हो जाती है,
तो कर्म के होने पर फल उपभोग के लिए जो दबाव बनता है, उस पर सहज नियंत्रण हो जाता है,
इससे भी आगे चित्त > चिदाभास के बीतने पर जो दबाव बनता है,
अगर उससे अधिक सहजता की स्थिति हो जाती है,
तो कर्म (क्रिया & प्रतिक्रिया)पर ही नियंत्रण हो जाता है|

25 December 2020

25 December 2020

26 December 2020

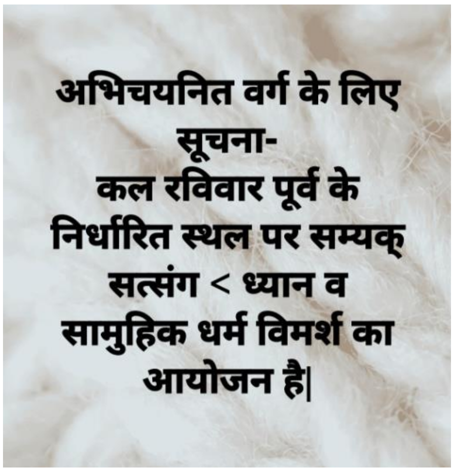

26 December 2020

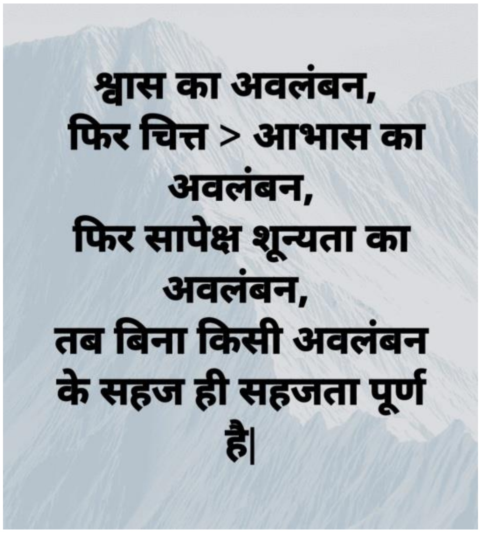

26 December 2020

ध्यान ^दृष्टि का केन्द्रीकरण (Centralization > focus) संबंधित प्रसंग > संदर्भ (related context > reference)
से अनपेक्ष > असंबंधित unrelated हो
सीधे उसके बस ज्ञात भर होने (Just to be known)
की साम्यता (Equality) में हो जाता है, तभी उस संबंधित
प्रसंग > संदर्भ का पूर्णतः यथावत् सत्य (as is truth) स्पष्ट (clear) है,

उससे पहले नही,
उससे पहले पूर्ववत् संबंधित आभास former related seem ही रहता है,
यथार्थतः सत्य स्पष्टता में ही पूर्ववत् आभास का दिग्भ्रम भंग है,
आरंभिक धर्म साधना< अभ्यास में संबंधित आभास > (संबंधित ज्ञान)ही होता है,
सीधे विशुद्धतः ज्ञात भर होना नही,
उत्तरोत्तर अभ्यास पूर्वक जब ध्यान दृष्टि सीधे से सीधे हो बिल्कुल सीधे सहज स्थिर हो जाती है,
तब सीधे विशुद्धतः ज्ञात भर होना ही शेष रह जाता है,
तब हर संबंध की निभ्रांततः पूर्ण सत्यता स्पष्ट हो जाती है,
कुछ भी अस्पष्ट नही रह जाता,
किसी भी संदर्भ में, किसी भी संबंध में कोई दिग्भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई संदेह नही, कोई अज्ञान नही रह जाता,
जब तक ऐसा न हो, उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास जारी रहे,
जरा सा भी प्रमाद नही करना है, जरा सा भी आलस्य नही, जरा सी भी लापरवाही नही,
सर्वप्रथम श्वास के आभास का ही अवलंबन लेना है,
जिस दिशा में सामान्यतः श्वास का आभास हो रहा है, ठीक उसी दिशा में
स्थिरतापूर्वक उपस्थिति रहे,
ठीक सीधी रेखा, ठीक समय Straight line, perfect > correct timing में हर आती-जाती श्वास के ज्ञान
में ही दृष्टि (निगरानी) Surveillance हो,
जब तक श्वास संबंधित दबाब से अधिक सहजता की स्थिति न हो जाए,
तब तक श्वास संबंधित अवलंबन ही रहे,
श्वास संबंधित दबाव से अधिक सहजता की स्थिति होने पर फिर सीधे आभास मात्र का अवलंबन है,
चित्त संबंधित दबाव से अधिक
सहजता की स्थिति होने पर ही सापेक्ष शून्यता
(आभास मात्र अर्थात् प्रथम आभास अर्थात् मूल आधारीय आभास के ठीक मध्य की संतुलित स्थिति)का अवलंबन है,
फिर सीधे ही बिना किसी अवलंबन के सहज ही पूर्णतः पूर्ण सहजता है|
जगदीश्वरम् द्वारा पूर्व की देशनाओं में सम्यक् अभ्यास के संबंध में सम्यक् निर्देश है, उससे अभिप्रेरित हो लाभान्वित रहें|

27 December 2020

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सम्मोहन जन्य प्रभाव से वही मुक्त है,जो सापेक्षिक प्रपंच से अनिमित्त पूर्ण सचेतनता से सजग हो ज्ञान मात्र > दर्शनमात्र मे सहज उपस्थित भर है,
अन्य तो प्रक्षेपित कृत्रिम् बुद्धिमत्ता के वशीभूत हो संचालित है,
जैसे अभी तक आँख व कान,मुख इत्यादि की गुणवत्ता के आधार पर कैमरा, टी.वी,स्पीकर,माइक इत्यादि का आविष्कार हुआ,
निकट भविष्य मे आगे तंत्रिका कोशा > (Neuron) का सेन्सर (Censor) निर्मित हो जाने से साधारण मनुष्यों के
व्यक्तिगत् निजी जीवन के प्रभावित होने की पूरी संभावना है, उसके पास कुछ भी छिपाने के लिए नही रह जाएगा,
कोई भी सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति न्यूरॉन Neuron के सेन्सर से युक्त किसी विकसित कम्प्यूटर कार्यक्रम (computer program) के नियंत्रण में उसके खेल का हिस्सा बन सकता है,
किसी सीमा तक यह संभव हो भी चुका है, सामान्य व्यक्ति वैसे भी आरोपित दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित है ही, लेकिन अभी तक वह उस दिग्भ्रम में भी व्यावहारिक धरातल के वास्तविक जागतिक व्यवहार से जुड़ा हुआ है,
पर आगे उसका किसी विकसित कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Developed artificial intelligence) पर आधारित आभासी जगत (virtual world) के सम्मोहन जनक प्रभाव में आने की पूरी संभावना है,
जहाँ नकारात्मक दृष्टिकोण (negative angle > point of view) वाला कोई भी प्रभावी दुष्ट आने वाले समय में
बुद्धि wisdom व मनोविज्ञान Psychology के सेन्सर sensor निर्मित होने जाने पर तुम्हारे मस्तिष्क (दिमाग)
में अपने मनमाने निर्णय व विचारों को प्रक्षेपित (Projected)
कर स्थापित (Established) कर सकता है,
ऐसी स्थिति में तुम्हारा अपना निर्णय तुम्हारा नही रह जाएगा,
तुम्हारे विचार तुम्हारे अपने विचार नही रह जाएंगे,
और यह दिग्भ्रम, तुम्हारे आरोपित > स्थापित दृष्टिकोण(Charged > Established angle >(point)of view) के दिग्भ्रम से अधिक खतरनाक है,
क्योंकि इसमें तुम्हारी संभलने की संभावना नही है, क्योंकि तब तुम दिमागी तौर पर गुलाम हो,
वैसे भी अभी भी सामान्य व्यवहार में कब कौन सा विचार आ जाए, तुम्हारे नियंत्रण में कहाँ है,

हो सकता है, कोई बाहरी विकसित सभ्यता (Developed civilization) तुम्हारे मस्तिष्क में अपने विचारों को प्रक्षेपित कर तुम्हे अपने अपेक्षित दृष्टिकोण से, अपने मनमाने ढंग से संचालित कर रहा हो,
तुम्हें एक तरह के किसी मैट्रिक्स< कम्प्यूटर गेम (खेल) का हिस्सा बना रहा हो,और तुम्हारे साथ खेल रहा हो,
क्योंकि जब तक यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही है, तब तक घोर दुःखद अज्ञानता की स्थिति में कुछ भी हो सकता है,
कुछ भी तो नही कहा जा सकता,
क्योंकि सामान्य व्यवहार में न चाहते हुए भी तुम्हारे मस्तिष्क में कब किस समय कौन सा विचार उत्पन्न हो जाए, तुम्हारा उसमें कोई वश नही रहता,
अगले ही पल कब कौन सा विचार आ जाए,और कब तुम्हारे जीवन की दिशा व दशा बदल जाए,
यह कोई तुम्हारे हाथ में तो है नही रहता,
हाँ किसी का अगर जिस नकारात्मक >ऋणात्मक प्रभाव के दबाव स्वरूप विचार प्रवाह उत्पन्न होता है, उस दबाब से अधिक सहजता की स्थिति हो जाए, अर्थात् उस दबाव पर पूरा नियंत्रण है,
तब तो कोई खतरा ही नही, कोई हानि ही नही, (बस केवल ज्ञात भर होने में उपस्थिति भर के निमित्त ही दबाब पर सहज ही नियंत्रण है,
ध्यान रहे, क्रिया से क्रिया पर नियंत्रण संभव नही, कर्म से कर्म व कर्म फल पर नियंत्रण संभव नही, विशुद्धतः बस केवल ज्ञात भर होने में क्रिया-प्रतिक्रिया, कर्म& कर्मफल पर सहज ही नियंत्रण है,)
क्योंकि तब वह पूरे यथा होश में पूर्णतः यथावत् जैसा है, वैसा ही भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात होने में स्थिरतापूर्वक उपस्थिति भर के निमित्त भलीभाँति संभला हुआ है,
तब कोई भी कितनी भी विकसित इहलौकिक अथवा पारलौकिक सभ्यता हो, उसका प्रभाव उस पर कदापि नही हो सकता,
और तब वह कदापि किसी भी दुष्ट प्रभाव की पराधीनता में नही हो सकता,
तभी वह सम्यक् अर्थ में स्वतंत्र है, >> और तभीआरोपित कृत्रिमता के दबाव के प्रभाव से अभिमुक्ति है......
पर उससे पहले कोई भी इच्छाओं, विचारों व दूसरे के प्रभाव के वशीभूत है, परतंत्र है,पराधीन है |
जिसके होने पर संकल्प-विकल्प,विचार आदि मानसिक प्रवाह
को उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है, उस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति होने पर फिर कृत्रिम् बुद्धिमत्ता पर सहज ही पूर्ण नियंत्रण रहता है, इससे भी आगे
जिसके होने पर चित्त के आभास के होने के लिए दबाव बनता है, उस दबाव से अधिक सहजता की स्थिति होने से चिदाभास (चित्त के आभास) पर सहज ही नियंत्रण रहता है,
जो अनुत्तम सिद्ध स्थिति है|
धन्य है, वह जो सम्यक् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त पूर्णतः समर्पित है, क्योंकि वही बस सम्यक् यथार्थ ओर से कल्याणमय अनुकंपा को प्राप्त है, और वही हर दुष्प्रभाव से, दुष्परिणाम से सुरक्षित है |
उत्तरोत्तर निरंतर सीधे से सीधे जैसा है, वैसा ही भलीभाँति स्पष्टतः ज्ञात होने के सकारात्मक प्रभाव में गिरना असंभव है |
अगर किसी के भी वशीवर्ती <
नकारात्मक प्रभाव में नही आना चाहते हो, तो इसी पृथ्वी ग्रह में जगदीश्वरम् द्वारा पूर्व की देशनाओं में सम्यक् संकेतार्थ सविस्तार सम्यक् मार्ग निर्देशन हुआ है,उससे अभिप्रेरित हो, लाभान्वित हो सकते हो .....

28 December 2020

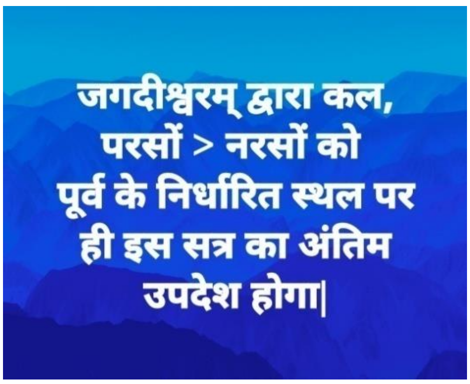

28 December 2020

सभी साधकों से यही कहना है,

कि उत्तरोत्तर सम्यक् अभ्यास जारी रहे,
जब तक सम्यक् यथार्थतः सम्यक् सत्य स्पष्ट न हो,
तब तक उत्तरोत्तर अनवरत् सम्यक् अभ्यास जारी रहे,
प्रमादवश व बुद्धिगत् तुष्टिवश कहीं रुक नही जाना,
जीवन की मूल समस्या दुःखद अज्ञानता
का जब तक पूर्णतः सम्यक् निराकरण > पूर्णतः सम्यक्, समाधान न हो जाए,
तब तक कहीं भी रुकना नही है,
तुम्हें जो अनुत्तर सम्यक् मार्ग प्रशस्त कराया गया है, कोई कृत्रिम् मत नही है,
स्पष्टतः प्रत्यक्ष प्रायोगिक > उत्तरोत्तर सम्यक् दिशा संकेतार्थ > अनुत्तर सम्यक मार्ग है,
जो कोई दार्शनिक बुद्धि विलास भर नही है,
पूर्ण सम्यक् निष्ठा से, पूरी सही ईमानदारी से पूर्णतः भलीभाँति आचरित होना है,
श्वास संबंधित अवलंबन,
इससे भी सीधे चित्त > आभास का अवलंबन, फिर इससे भी सीधे सापेक्ष शून्यता के अंतिम अवलंबन
का क्रमशः उसके प्रकृति & स्वरूप के अनुसार सम्यक् अधिष्ठान अभिनिमित्त को पूरा करना है,
इससे पहले कहीं भी रुकना नही है,
प्रमाद & मूर्छा रहित > पूर्णतः सचेतन हो,अनवरत् अभ्यास जारी रखना|
नोट- इस बात का खेद है,
कि इंटरनेट > फेस बुक आदि अन्य माध्यमों में सम्यक् उपदेश का सम्यक् तात्पर्य स्पष्ट नही किया गया है,
(हो भी नही सकता) पर फिर भी एक सीमा तक सम्यक् कल्याणार्थ सम्यक् संकेतार्थ अवश्य ही मार्गदर्शन किया गया है,
अभी सम्यक् उपदेश सार्वजनिक नही किया गया है, केवल अभिचयनित वर्ग के लिए ही सम्यक् सत्संग सभा में सम्यक् उपदेश होता है,
पर यह कोई भेदभाव के दृष्टिकोण से नही है,
जारी हुआ सम्यक् उपदेश जैसे ही पूर्ण हो जाएगा,
तब ही सार्वजनिक स्तर, सार्वभौमिक स्तर पर प्रदर्शित होगा,
इससे पहले जब तक सम्यक् उपदेश जारी है, पूर्ण नही हो जाता,
तब तक उसका पवित्र स्पंदन बाधित न हो,
इसके लिए ही विशेषतः सार्वजनिक स्तर पर अभी पाबंदी है,
सम्यक् देशना के लिए श्रोता,
श्रावक, परिसर आदि की पवित्रता का बहुत ही अधिक महत्व है, तभी सम्यक् देशना के अवतीर्ण होने के लिए भूमिका बन पाती है,
सम्यक् धर्म देशना कोई बौद्धिक उपज नही है, अपेक्षित < आरोपित दृष्टिकोण नही है, किसी व्यक्ति विशेष की तरफ से नही है,
अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है, सम्यक् सनातन है,
ध्यान रहे, अंतरहित ओर से ही पवित्र स्पंदन परिसर में सम्यक् संकेतार्थ अवतीर्ण होता है,
उसका बस इतना ही संकेत फेसबुक आदि माध्यमों से प्रसारित होता है, जिससे पवित्र स्पंदन में बाधा भी उत्पन्न न हो, और कुछ अन्य जन भी
एक सीमा तक लाभान्वित हो सके,
पर सम्यक् तात्पर्य अभी गोपनीय (फिलहाल गैब मे) रखा गया है,
ध्यान रहे, यह कोई लोकप्रियता के लिए प्रचलित,
प्रचारित, प्रसारित लोकचार का उपदेश नही है, जैसा कि स्थापित धर्म,संप्रदायों में है,
अगर अभी लोकप्रियता के लिए
सम्यक् धर्म देशना> सम्यक् तात्पर्य को सार्वजनिक किया जाता है,
तो उसका पवित्र स्पंदन बाधित होगा,
और तब सैद्धांतिक दृष्टिकोण से लोकाचार में एक स्थापित धर्म विशेष की ही भूमिका हो पाएगी,
सार्वजनिक स्तर पर, सार्वभौमिक स्तर पर
जो विकृति (अधर्म) है, उसका नाश नही हो पाएगा,
स्थापित धर्म (अध्यारोपित स्थापना)
का उपसंहार नही हो पाएगा,
सार्वजनिक स्तर पर, सार्वभौमिक स्तर पर सम्यक् धर्म अनुशासन लागू नही हो पाएगा,
तब वर्तमान लोक में, वर्तमान कल्प में यह बहुत ही दुःखद दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी,
इसलिए जब तक सम्यक् धर्म का उपदेश पूर्ण नही हो जाता, तब तक लोकदृष्टि के > किसी भी अध्यारोपित मिथ्या लोकाचार के बाहरी अपवित्र स्पंदित प्रभाव से पवित्र परिसर के पवित्रता के स्पंदित प्रभाव को बचाना अनिवार्यतः आवश्यक है,

सम्यक् धर्म उपदेश के पूर्ण होने पर फिर
कोई खतरा नही|

29 December 2020

कर्म होने पर ही कर्म फल के लिए दबाव बनता है,अर्थात् कर्म के होने पर ही दबावस्वरूप प्रतिफल में गति है,
अथवा क्रिया के होने पर ही प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में गति है,
और प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में गति होने से ही दबाव स्वरूप अंतराल स्थापित होता है, और दबाव स्वरूप अंतराल के होने पर ही परिवर्तन का आभास होता है, समय का आभास होता है, अन्यथा न तो परिवर्तन का आभास है, और न ही समय का आभास है,
पर कर्म से कर्म पर कदापि नियंत्रण संभव नही, कर्म से कदापि कर्म & कर्मफल बंधन से मुक्ति संभव नही,
सहज ज्ञान की स्थिति में सहज ही कर्म (क्रिया) पर कर्म फल (प्रतिक्रिया स्वरूप दबाव में नियंत्रण है,
ज्ञान से ही कर्म & कर्म फल बंधन से मुक्ति है,
ज्ञान मात्र में क्रिया नही है, दबाव नही है, दबाव स्वरूप प्रतिक्रिया नही है, अंतराल नही है, गति नही है, परिवर्तन नही है,समय नही है,
दर्शन मात्र में उपस्थिति भर होने पर ज्ञान मात्र ही स्पष्ट है,
इसलिए दर्शन मात्र में ज्ञान मात्र ही शेष
स्पष्ट है,
(दर्शन मात्र कहा जाए, या ज्ञान मात्र कहा जाए बात पूरी है,)
ज्ञानमात्र < दर्शनमात्र में उपस्थित भर होने से गुणधर्म पर सहज ही नियंत्रण है,
अनुत्तर सम्यक् मार्ग स्पष्ट न होने पर अध्यारोपित क्रिया योग < षट् कर्म, कुंडलनी जागरण, षट् चक्र भेदन आदि हठ योग प्रक्रिया के अपनाने की विवशता रहती है,
अध्यारोपित क्रिया योग < हठ योग आदि के माध्यम से अपनी तरफ से नियंत्रण के लिए कितना ही कृत्रिम् दबाव बना लो, पर वह सहज ही सहजता नही है, अध्यारोपित दृष्टिकोण अर्थात् अपनी तरफ से बनाए गए कृत्रिम् दबाव >> प्रतिक्रियास्वरूप दबाव में किसी न किसी सीमा से, कभी न कभी
तो गिरना सुनिश्चित ही है,
इसलिए एक सीमा के पश्च्यात योगभ्रष्ट होना बिल्कुल संभव है,
पर उत्तरोत्तर मात्र ज्ञान में अंततः
मात्र ज्ञान की पूर्णता में सहज ही पूर्ण सहजता से (पूर्णतः दबाव रहित से)
गिरना कदापि संभव नही है,
सहज ज्ञान की स्थिति में जागरुकता पूर्ण रहती है, सजगता पूर्ण रहती है,
यथा सहजता पूर्ण रहती है, विवेक पूर्णतः स्पष्ट रहता है,भलीभाँति संभलना
पूरा रहता है, सहज ही भलीभाँति पूरा नियंत्रण रहता है, सम्यक् दिशा ज्ञान
पूर्णतया स्पष्ट रहता है,
इसलिए भ्रष्ट होने अथवा गिरने की संभावना नही रह जाती,
सहज ज्ञान मात्र से इतर होने पर ही सापेक्षिक क्रिया & प्रतिक्रियास्वरूप दबाव में गिरना होता है,
इसलिए एक क्षण भी स्पष्टतः ज्ञात होने
(मालूम होने)से रिक्त नही होना है,
हर क्षण यथा सहजतापूर्वक सजग हो,भलीभाँति संभले रहना है,
ज्ञान मात्र की पूर्णता तक
उत्तरोत्तर निरंतर ज्ञान मात्र के निमित्त ही उपस्थित रहना है,
पूरी सावधानी इसी बात की है, कि उत्तरोत्तर सम्यक् दिशा से उपस्थिति भंग न हो|
श्वास के ज्ञान मात्र से चित्त का ज्ञान मात्र
और सीधे स्पष्टतः ज्ञान मात्र है,
(पर चित्त के ज्ञान मात्र की अपेक्षा श्वास का ज्ञान मात्र विशुद्धतः ज्ञान मात्र नही है,
अवलंबित ज्ञान ही है,)
चित्त के ज्ञान मात्र से सापेक्ष शून्यता का ज्ञान मात्र और सीधे स्पष्टतः ज्ञान मात्र है,
(पर सापेक्ष शून्यता के ज्ञान मात्र की अपेक्षा चित्त का ज्ञान मात्र अवलंबित ज्ञान ही है,)
सापेक्ष शून्यता के ज्ञान मात्र से
अंततः अवलंबन रहित सहज ही सहजता में ही ज्ञान मात्र की पूर्णता है,
(ज्ञान मात्र नही वरन ज्ञान मात्र की पूर्णता ..)

न आना,न जाना,न ठहरना ऐसा कहना
प्रचलित बौद्ध दृष्टिकोण से है, और जो बौद्ध दृष्टिकोण का निर्वाण है,
जो अपौरुषेय ऋत् नियम से असंगत है,
क्योंकि इसमें न तो मार्ग सिद्ध होता है,और न ही लक्ष्य ही सिद्ध है , और न ही निमित्त की मात्र निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की भूमिका ही सिद्ध होती है,
न आना,न जाना, ठहरने की पूर्णता,
इसी में ही लक्ष्य की दिशा मे मार्ग की सिद्धता है, निमित्त की बस उपस्थित भर की भूमिका सिद्ध है,
जो अपौरुषेय 'ऋत्' सनातन धर्म के अनुसार है,
न ज्ञाता,न ज्ञेय न ज्ञान ही,
ऐसा कहना सनातन ऋत् असंगत है, अयुक्त है,
न आरोपित ज्ञाता, न संबंधित ज्ञेय,
बल्कि ज्ञान मात्र की पूर्णता,
इसी में ही लक्ष्य दिशा में मार्ग की सिद्धता है,
आरंभ रहित निमित्त की निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की सहज भूमिका सिद्ध है|

30 December 2020

ज्ञान मात्र की पूर्णता के अंतर्गत ही
दर्शन मात्र में निमित्त की निमित्त अर्थ में उपस्थित भर होने की सहज सनातन भूमिका आ जाती है,
पर इसे अलग से देखने पर दृष्टा का & ज्ञाता का आरोप हो ही जाता है,
आरोप होने में ही अपेक्षित दबाव बनता है,
और अपेक्षित दबाव स्वरूप अपेक्षित आभास होता है,
कुशल, अकुशल,पाप,पुण्य,
आदि सब सापेक्षिक है, सापेक्षिक द्वंद्व है, सापेक्षिक प्रपंच है,
ऐसी दार्शनिक दृष्टि रखने वाले भी असम्यक् दृष्टि वाले ही है,
क्योकि इसमें न तो मार्ग सिद्ध होता, न ही लक्ष्य सिद्ध होता है,
और न ही निमित्त की उपस्थित भर की भूमिका ही सिद्ध होती है,
उत्तरोत्तर स्थिरता के क्रम में स्थिरता की पूर्णता की ओर ही मार्ग सिद्ध होता है,
उत्तरोत्तर सम्यक् यथार्थ के क्रम में सम्यक् यथार्थ की पूर्णता ओर ही
मार्ग सिद्ध होता है,
पाप का अभाव (शून्यता),
पुण्य की पूर्णता,
अकुशलता का अभाव (शून्यता) , कुशलता की पूर्णता,
न आना, न जाना, स्थिरता की पूर्णता,
दिग्भ्रम का अभाव (शून्यता),सम्यक् यथार्थ स्पष्टता << यही सम्यक् विधिमुख सम्यक् मार्ग है,
सर्व शून्यम् कहना,या ब्रह्म सर्वम् कहना
अपेक्षित अध्यारोपित दृष्टिकोण ही है,
तथ्यतः नही, यथार्थतः नही,
सब में अपने को देखना, अपने को सब में देखना,
यह भी अपेक्षित अध्यारोपित दृष्टिकोण ही है,
तथ्यतः नही, यथार्थतः नही,
पहले तो अपना कहना,
अथवा सब कहना ही अध्यारोप है,अध्यारोपित दृष्टिकोण में है,
फिर सब को अपने को देखना, अपने में सब को देखना, यह उस अध्यारोप में और अध्यारोप है,
इस अध्यारोप में अपेक्षित दृष्टिकोण ही सिद्ध होता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण की सिद्धता में
आत्म भाव भावना की अध्यारोपित दृष्टि ही उत्पन्न होती है, दृष्टा & ज्ञाता भाव का आरोप ही होता है, कर्ता भाव का आरोप ही होता है,
आरोपित कर्ता भाव का अभिमान दोष ही उत्पन्न ही होता है,
ऐसी अध्यारोपित मिथ्या दृष्टि से न ही दिग्भ्रम हटता है,
न भ्रम, संशय,संदेह ही निर्मूल होता है,

न ही दुःखद > अज्ञानता का ही सम्यक् निरोध होता है,
हाँ अपने ही अपेक्षित अध्यारोपित कृत्रिम् दृष्टिकोण के स्वसम्मोहन में यह सत्य है,
का यह दिग्भ्रम अवश्य होता है,
दिग्भ्रम से मुक्ति चाहिए, तो अध्यारोप करने से सावधान रहो, अर्थ का अनर्थ करने से सावधान रहो,
विशेषतः शास्त्रीय अध्यारोप से|
भले ही लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित अध्यारोपित शास्त्रों (गीता,उपनिषद, पुराण, स्मृति,आगम आदि)
से साधारण स्तर के जन समुदाय को एक सीमा तक विकास व संतुलन के निमित्त लोकदृष्टि, लोकाचार, लोक धर्म,
लोक कर्तव्य की शिक्षा प्राप्त होती हो,
पर जो दुःखद अज्ञानता से मुक्ति चाहते हैं,
उन अधिकारी जनों को शास्त्रीय अपेक्षित दृष्टिकोण से, शास्त्रीय अध्यारोप से सजग हो,
सीधे ही तथ्यतः यथावत् सत्यता से अभिप्रेरित होना आवश्यक है,
तथ्यतः तो जो जिस अर्थ में जैसा है, निभ्रांततः वैसा ही है, तथ्य की तथ्यता निभ्रांततः स्पष्ट है, तथ्य की तथ्यता पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शी है, कोई भ्रम नही, कोई संशय नही, कोई संदेह नही,कोई अज्ञानता नही,
तथ्य की तरफ से कदापि कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण नही है, कदापि कोई भी अध्यारोपित दृष्टिकोण नही है,
इस तरह के अध्यारोपित दार्शनिक दृष्टिकोण कदापि तथ्य के अनुसार नही है,
तथ्यतः तो जो जैसा है, वैसा ही है,
बस सीधे जैसा है, वैसा दिख जाए,
अभी ही सारी भ्रान्ति हट जाएगी,
सारा दिग्भ्रम,सारा संदेह, सारा संशय हट जाएगा,
काश इतनी सरलता, इतनी सहजता, इतनी सजगता, इतनी निर्मलता, इतनी निष्पापता,
इतनी निर्दोषता,
इतनी सत्य निष्ठा, इतनी ईमानदारी तुम में होती,
तब फिर कहना ही क्या था,
तथ्य से कोई आरोपित & अध्यारोपित दृष्टिकोण कदापि नही है,
तथ्यतः जो जैसा है, उसे वैसा ही रहने दो,
किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ में
आरोपित कर मत देखो,
आरोपित दृष्टिकोण में देखना ही दिग्भ्रम है,
तथ्यतः जो जैसा है, उसका ठीक वैसा होने
में ही उसका अस्तित्व है, उसकी शुद्धि है,
उसकी सत्यता है,
यह अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म के अनुसार है,
अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार नही,
सम्यक् जिज्ञासुओं को अध्यारोपित दृष्टिकोण से सावधान रहना है, विशेषतः लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित अध्यारोपित धर्म शास्त्रों से सावधान रहना है,
विशेषतः अपेक्षित शास्त्रीय दृष्टिकोण से सावधान रहना है,
प्राचीन सम्यक् ऋषि ऋत् अभिप्रेरित हो,उत्तरोत्तर सत्य दिशा में अनवरत् शोधरत् रहते थे,
भले ही यहाँ तुम्हें आसमानी अजाब व जहन्नुम की आग से डराया नही जा रहा है,
पर अपने ही आरोपित & अध्यारोपित दृष्टिकोण के कारण यथार्थतः सत्य से वंचित हो, दुःखद अज्ञान अंधकार में तो भटक ही रहे हो|

31 December 2020

31 December 2020

31 December 2020

सम्यक् देशनाओं को
भलीभाँति पढ़ना है,
उसे भलीभाँति सम्यक् तात्पर्य से समझना है, और भलीभाँति सम्यक् तात्पर्य से समझकर भलीभाँति आचरण में उतारना है,
सम्यक् मार्ग कृत्रिम् मत नही है,
एक कोणीय पक्ष नही है,
अपौरुषेय सम्यक् सनातन धर्म का मार्ग है,
जो सीधे ही सहज स्वभाव से अभिप्रेरित है,>> सहज ही सहजता से अभिप्रेरित है,
सूचना- सहज स्वभाव का तात्पर्य यहाँ
स्व +भाव (अपना भाव) से नही है,
गीता के स्वभावोऽध्यात्म से भी नही है, अपितु सहज ही सहजता से है,
सहज स्वभाव का सामान्यतः तात्पर्य
बिना किसी दबाव के 'सहज' ही "अपने आप से ही" है,
अपने आप कहने का तात्पर्य
यहाँ किसी भी व्यक्ति विशेष की निजता से नही है, अर्थात् व्यक्तिगत् आत्म भाव भावना से नही है|
यह जो भी आभास हो रहा है,
यह है क्या, इसकी सत्यता क्या है,
सत्य क्या है,> अंततः सत्य क्या है,
यह सहज स्वाभाविक जिज्ञासा
मनुष्य के सहज स्वभाव से अभिप्रेरित है,
पर अध्यारोपित कृत्रिम् मतान्धता के
आवेग में सहज स्वाभाविक जिज्ञासा दबकर रह जाती है,
मनुष्यों में जो जटिल नही हैं,
जो अध्यारोपित मतान्धता से ग्रसित नही हैं, जो सरल हैं,
सहज हैं, निर्दोष हैं, निष्पाप हैं, निर्मल हैं, शुद्ध हैं, पवित्र हैं,सजग हैं, जागरूक हैं,
सहज संवेदनशील हैं, वे सहज ही
सीधे सहज स्वभाव से अभिप्रेरित होते हैं, देव दुर्लभ मनुष्य जन्म होने पर उनके लिए सर्वप्रथम सहज स्वाभाविक मौलिक जिज्ञासा >> यथार्थतः सत्य क्या है,
अर्थात् यथार्थ सत्य जानना ही

सबसे अधिक प्राथमिक,
सबसे अधिक अनिवार्य, सबसे अधिक महत्वपूर्ण है,
यही उनके लिए कर्तव्य है,उनके लिए धर्म है, लोकदृष्टि,लोकाचार,लोक धर्म, लोक कर्तव्य का उनकी दृष्टि में अर्थ नही रहता है,
यथार्थतः सत्य स्पष्ट होने पर ही, भ्रम,संशय,संदेह का निर्मूल होने पर ही
उसकी ओर से जो आचरण है, जो ज्ञान है, जो दर्शन है, सर्वश्रेष्ठतः सबसे उत्तम है,
जहाँ अंततः मनुष्य जन्म का प्रयोजन पूर्ण है, अंततःमनुष्य जन्म का उद्देश्य पूर्ण है,
परंतु सामान्य जन समुदाय सीधे सहज स्वभाव से अभिप्रेरित न होकर
स्थापित हुए अध्यारोपित लोक दृष्टि से,
लोकाचार से, लोक धर्म से, लोक कर्तव्य से प्रेरित होते हैं और जीवन पर्यंत उसी में
फँसे रहते हैं, और उसी दुःखद अज्ञानता में मर जाते हैं,
यथार्थ सत्य स्पष्टता का महानतम् लाभ से
चूक जाते हैं,अहो यह बहुत ही दुर्भाग्य है,
मनुष्य जन्म का उद्देश्य पूरा नही हो पाया,
न जाने यह अवसर कब प्राप्त हो,
अज्ञान अवस्था में मरने पर फिर से
अज्ञान अवस्था में जन्म होना
अपौरुषेय ऋत् नियम के अनुसार स्वाभाविक है,
लोकदृष्टि में स्थापित हुए सारे लोकधर्म, सारा लोकाचार, सारे लोक कर्तव्य अज्ञानी
मनुष्यों द्वारा अज्ञानी मनुष्यों के लिए बनाए गए हैं,
संकीर्ण अज्ञानी मनुष्यों द्वारा संस्थापित जाति,वर्ण,वर्ग,राष्ट्र,धर्म, दर्शन,संप्रदाय,संस्कृति,सभ्यता अज्ञानी मनुष्यों को(उनके मिथ्या(झूठे)परिचय से, झूठे अहंकार, झूठी अस्मिता से) उलझाए रखने के लिए पर्याप्त है,
कोई आँख वाला इस संकीर्ण अध्यारोपित मतान्धता में नही उलझता,
वह तो सीधे सहज स्वभाव से अभिप्रेरित हो उत्तरोत्तर सम्यक् यथार्थ दिशा में अनवरत् शोधरत् रहता है,
जब तक भ्रम,संशय,अज्ञानता, दुःख का निर्मूल न हो जाए, किसी भी सीमित सत्य
(यह सत्य है) में आबद्ध नही होता,
अनवरत् सम्यक यथार्थ दिशा में शोधरत् रहता है|
मनुष्य का रूप विशेषतः नासिकाग्र सीधे
मार्ग के लिए प्राकृतिक दिशा है,
इससे अभिप्रेरित हो उस दिशा में श्वास का अवलंबन फिर उससे भी सीधे चित्त >
आभास का अवलंबन,उससे भी सीधे
सापेक्ष शून्यता अर्थात्, ठीक मध्य के संतुलन के अवलंबन में उनकी प्रकृति& स्वरूप के अनुसार सम्यक् अधिष्ठान का निमित्त पूरा करो,
निमित्त प्रयोजन पूर्ण होने पर अवलंबन रहित सहज ही सहजता है|

****